अवस्था

अवस्था

यू० आर० अनन्तमूर्ति

अनुवादक
भालचन्द्र जयशेट्टी

पुनरीक्षक
सौमित्र मोहन



राधाकृष्ण

समर्पण
अपने प्रिय मित्रो
जे० एच० पटेल और एस० वेंकटराम को

भाग एक

उम्र लगभग पचास की होगी। इस समय विस्तर पर मरणासन्न पड़ा है। मौत से जूझते हुए वह जिन घटनाओं का बयान कर रहा है, उनसे उसकी मानसिक स्थिति की कल्पना की जा सकती है।

लड़कपन में कृष्णप्पा बहुत अच्छा तैराक था। भरी हुई नदी के एक किनारे पर गोता लगाकर झट दूसरे किनारे पहुँच जाता था। एक बार की बात है कि इसी तरह तैरते हुए कृष्णप्पा नदी का लगभग आधा पाट पार कर चुका था कि उसे लगा, उसके हाथ-पैर सुन्न पड गये हैं। अपने से दो हाथ पीछे तैर रहे साथी से कहा, "यार, मैं डूब रहा हूँ। तू लौट जा!" वह बड़ी मुश्किल से इतनी ही बात कह पाया और गोता खा गया। तब हनुमनायक ने बडी मेहनत से उसे बचाया था।

उस दिन की घटना को याद करके लकवाग्रस्त कृष्णप्पा की दोनों बड़ी-बडी आँखों में आँसू उमड़ पड़ते हैं। उस एक पल में जब यकीन हो गया कि वह मर ही जायेगा, तब वह कैसा निर्विकार बन गया था!

हमेशा नाक पर चढ़े रहने वाले कृष्णप्पा के गुस्से की कहानी कुछ अलग है। उन दिनों वह हाईस्कूल में पढ़ता था। एक बार अपने मित्र की घड़ी लाने के लिए घड़ीसाज के यहाँ पहुँचा। घड़ीसाज कृष्णप्पा को जानता था और उसके साथ खासी अन्तरंगता भी थी। किंतु कँगले कृष्णप्पा की ठसक को लेकर उसके मन में जलन थी। "तुम पर भरोसा करके घड़ी कैसे दी जा सकती है?" एक आँख पर दूरबीन चढ़ाए व टेढ़ी नजर से देखते हुए घड़ीसाज ने कहा। तब कृष्णप्पा ने जवाब दिया था, "देखो,

फिर कभी ऐसा कुछ कहा तो यह दूरबीन चकनाचूर हो जायेगी। समझे ?" इस पर घड़ीसाज़ ने चिमटी से कुछ बिखेरते हुए कहा था, "दलिदर का गुस्सा दाढ़ पर बला।" बात मुँह से निकली ही थी कि कृष्णप्पा मरम्मत के औज़ार और खुले पुर्ज़ों वाली घड़ियों के शीशे के बक्से को धड़ाम से ज़मीन पर पटककर चल दिया था। उसके गुस्से से कैसे-कैसे लोग थर्रा जाते थे !

ऐसे दुर्वासा मुनि को बिस्तर पर अपाहिज पड़े देखकर कलेजा मुँह को आता है। अब उसे गुस्सा आता है तो सिर्फ़ उसके होंठ फड़कते हैं, नथुने फूलते हैं, आँखों में पानी भर आता है, बस ! या फिर बिस्तर से ही लाठी उठाकर अपनी पत्नी को डराने की कोशिश करता है।

इधर बीमार पति की सुश्रूषा और उधर बैंक में मुंशीगिरी। इसके अलावा ज़िद में आँसू बहाती हुई तथा कोने में बैठी हुई पाँच वर्ष की बेटी। इन सभी के कारण पत्नी बौखला जाती है। उसके बाल बिखरे रहते हैं। पति से 'तुम्हारी झूठी शान में आग लगे' कहते हुए उसने अपनी बेटी के मुँह को इस क़दर दबा दिया था कि होंठों से खून बह निकला। ऐसी स्थिति में कृष्णप्पा का मन निरासक्त हो जाता है। जीवनी लिखने के लिए हर रोज़ आने वाले भोले-भाले नागेश को वह आपबीती सुनाने लगता है। अपनी वर्तमान स्थिति को स्पष्ट करने के लिए वह जो कुछ कहता है, युवा नागेश उसे कितनी गहराई से समझ पाता है, इस बात की कृष्णप्पा को शायद परवाह नहीं रहती।

कृष्णप्पा लड़कपन में चरवाहा था। कन्धे पर कम्बल और हाथों में लाठी तथा बाँसुरी लिये अपने गाँव के मवेशियों को चराने की बात वह इस ढंग से कहता मानो उसमें केवल उसी की समझ में आने वाला कोई अर्थ छिपा है। कहा नहीं जा सकता कि मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए इस आदमी को अपनी पिछली ज़िन्दगी में कभी-कभी दिव्यत्व में प्रवेश करने की बात के लिए क्या महसूस होता होगा या इस पर विश्वास कर लेना उसकी मौजूदा हीन दशा पर विजय पाने के लिए आवश्यक था ! कृष्णप्पा निरीश्वरवादी था। इसके अलावा वह कबीर, अल्लम, नानक, मीरा, परमहंस जैसे दैवी-पागलों की किसी आत्मीय की तरह प्रशंसा करता,

हँसी उड़ाता और उनके बारे में टिप्पणियाँ करता रहता। इसलिए उसका मूल धरातल क्या था, बता पाना कठिन है।

लड़कपन में वह बड़े सवेरे मवेशियों को घरों में खुलवा कर नदी के किनारे के पहाड़ी मैदानों में चरने के लिए छोड़ देता और शाम के समय उन्हें हाँक कर वापिस घरों में छोड़ आता। चरते हुए मवेशियों को पेड़ के नीचे बैठकर अलसायी आँखों से देखते हुए, बाँसुरी पर अपने मन की धुन बजाते हुए उन दिनों वह क्या सोचा करता था—इस बात को याद करने पर आँखों के सामने एक घटना घूम जाती है। उस घटना को बताने से पहले कृष्णप्पा हँसता, "यह न समझना कि मैं उन दिनों सुखी था। बागों में हरियाली दिखी तो समझो मेरी दुर्गत हुई। ढोर-मवेशी पागल बनकर बागों में घुस जाते थे। मैं अकेला ही सिरफिरे की भाँति उन्हें हाँक कर बाहर निकालता और फिर हार कर बैठ जाता। घुआँधार बरसात होती रहती। ऐसा लगता कि मुझे साँप सूँघ गया हो। तब पीठ की ऐसी मरम्मत होती थी, भैया...।" फिर वह उन दिनों की दहला देने वाली पिटाई का दर्द आँखों में नकल करके बताता। इस बात की याद के साथ ही उसे महेश्वरय्या की याद हो आती है जिन्होंने उसे चरवाहे की ज़िन्दगी से मुक्ति दिलवायी थी।

महेश्वरय्या कौन और कहाँ के रहने वाले थे, इसका कुछ पता नहीं। यही समझ लीजिए कि किसी गाँव में आ पहुँचे तो वहीं घर-बार जोड़ लिया। रहते तो अकेले ही थे, फिर भी रसोइया साथ रखते थे। केवल अपने कपड़े खुद धोते थे। उनकी जबानी कालिदास की संस्कृत सुननी चाहिए। हिन्दुस्तानी संगीत सुनना चाहिए। बड़े रसिक आदमी पान से लाल रँगे रहने वाले होंठों पर नीचे झुकी मूँछें, कानों में चमकती हुई हीरे की बुंदकियाँ, बन्द गले का कोट, सफ़ेद किनारीदार धोती, हाथ में चाँदी की मूठ वाला बेंत, आँखों में प्रशांत भाव आदि बातों का ब्योरा देते हुए कृष्णप्पा बताता है कि वे एक महान वैरागी थे। उन्होंने साफ़-साफ़ बताया तो नहीं था, पर कृष्णप्पा का अनुमान है कि अपनी पत्नी का किसी से याराना होने की भनक मिली तो महेश्वरय्या ने घर छोड़ दिया था। लखपति आदमी। पत्नी के लिए कुछ मिल्कियत छोड़ बाकी पूँजी बैंक में

रखकर वह निरासक्त की तरह गाँव-गाँव भटकते रहते थे। हमेशा पढ़ते रहते थे। कृष्णप्पा को उनके त्रिकालज्ञानी होने का विश्वास था। महेश्वरय्या किसी के यहाँ आकर बैठ गये तो सहसा 'भोऽ' कह दिया करते थे। उस समय उनके चेहरे पर एक प्रकार की विचित्रता दिखायी देती थी। उन्हें निमंत्रित करने वाले चाहे लाख अनुरोध करें, कभी मुंह नहीं खोलेंगे। आगामी अनर्थ का उन्हें पता चल जाता था। बाद में ऐसी बातें वे कृष्णप्पा के कान में कहने लगे। उनसे भेंट होने पर लोग डर जाते कि कहीं वे 'भोऽ' न कह दें। उनके मुंह से 'भोऽ' निकले बिना रहता भी नहीं। इसलिए जब कोई उन्हें बुलाता तो वे कह देते, "पता नहीं, उस सज्जन के लिए कैसा अनर्थ ताक में बैठा है ! मैं उसके घर नहीं जाता।"

भावी अनर्थ को देखकर 'भोऽ' कहने वाले महेश्वरय्या की दिक्कत यह थी कि उन्हें भविष्य में भलाई दिखती ही बहुत कम थी। एकमात्र कृष्णप्पा के लिए उन्होंने भलाई देखी थी। वह सन्दर्भ इस प्रकार है।

मैली चड्डी और गंजी पहने नदी-किनारे के पीपल के नीचे कृष्णप्पा बैठा था। कटाई ख़त्म हो चुकने के कारण मवेशियों का खेतों में घुसने का डर अब नहीं रहा था। नदी का कलकल निनाद और मवेशियों के गले की घंटियों की आवाज़ जब कानों में पड़ी तो शायद कृष्णप्पा हर्षित हुआ होगा। हर रोज़ से भी अधिक हर्षित हुआ होगा। बाँसुरी बजाने के बदले उसका मन 'कुमारव्यास भारत' के छंद गाने को हुआ। चार वर्षों तक स्कूल जाकर भी कृष्णप्पा ने 'महाभारत' खुद पढ़ कर नहीं सीखा था, बल्कि अपने मास्टर जोयिस जी को कभी-कभार पाठ करते सुन कर सीखा था। वह भावविभोर होकर गाने लगा। उसकी बस्ती के पास वाले किसी गाँव में महेश्वरय्या जी ने अड्डा जमाया हुआ था। इस समय वह नदी में अपना कोट धोने आये थे। ताज्जुब है कि वे उसी जगह क्यों आये ? उस दिन सवेरे जब वे बाज़ार से गुज़र रहे थे तो एक नीम-पागल अवकाशप्राप्त स्कूल-मास्टर ने रोककर उनसे कोट माँगा था। "दूँगा। किन्तु पहना हुआ है न ? धोकर दूँगा।" उन्होंने यह जवाब देकर साबुन ख़रीदा और सीधे नदी के इस घाट पर आ गये। कम-से-कम दो मील का फ़ासला तो होगा ही—बाज़ार और इस नदी के बीच।

गाने वाले लड़के के सामने पहुँचकर महेश्वरय्या ने 'भोऽ' कहा। कृष्णप्पा ने मारे शर्म के गाना रोक दिया। कहीं दूर नजर गड़ाये और हाथ में गीला कोट पकड़े महेश्वरय्या ने कहा, "बच्चे ! मवेशियों को गोठ में पहुँचाकर शाम को मेरी यहीं प्रतीक्षा करना।" इसके बाद उन्होंने कोट को निचोड़ा और वहाँ से चले गये। उस समय वह पीपल के नीचे बैठा था। सामने वाले अमरूद के पेड़ पर दो पचरंगी मुर्गों के रहने की बात कृष्णप्पा याद कर लेता है। वह कहा करता है कि उस पेड़ पर मैंने अजनबी रंगों वाले एक पक्षी को देखा था।

शाम के समय कृष्णप्पा उनकी प्रतीक्षा में बैठा था। बेंत घुमाते हुए महेश्वरय्या ने कहा, "अरे भोंदू बच्चे ! क्या आज तक तुझे पता ही नहीं चला कि तू कौन है ? चल मेरे साथ।" यह कह कर वे सीधे कृष्णप्पा के घर गये। कृष्णप्पा के पिता नहीं थे। माँ अपने भाई के घर भाभी के ताने सुनती हुई, रोज के कष्ट उठाती हुई, मवेशियों के लिए सानी करती हुई और घूड़े के लिए फूस ढो-ढो कर जो रही थी। उँगलियों में अँगूठियाँ, हीरे की बुँदकी, चाँदी की मूठ वाला बेंत—इन्हें देखकर ही कृष्णप्पा का मामा भौंचक्क रह गया। महेश्वरय्या ने उसे आड़े हाथों लिया, "कैसे हेकड़ लोग हो तुम ! घर का हीरा तुम्हें दीख ही नहीं पड़ा।" यह बात कह कर उन्हें पैसा दिया और कृष्णप्पा को दस मील दूर गाँव के एक स्कूल के होस्टल में भर्ती कराया। इस प्रकार बी० ए० तक कृष्णप्पा की पढ़ाई हुई। कृष्णप्पा पिछली बात फिर याद करता है। आत्मीयता बढ़ने के बाद भी महेश्वरय्या अजीब व्यक्ति बने रहे थे। "जब कभी मुझ पर मुसीबत आती, वे स्वयं प्रकट हो जाते थे। मैं यदि जेल गया तो वे हाज़िर। इसी तरह ज्वर-ताप भी चढ़ जाये तो हाज़िर। जिस तरह वे किसी गाँव में आकर डेरा डालते, उसी भाँति उस गाँव को छोड़ कर चले भी जाते। घर के बर्तन-भाँडों सहित सभी कुछ किसी-न-किसी को देकर। बड़े अजीब आदमी। मुझे आज तक पता नहीं चला कि वे किस जाति के थे, उनका गोत्र क्या था। शायद वे ब्राह्मण या लिंगायत हों, क्योंकि मेरा मांस खाना छोड़ देने से उन्हें सन्तोष हुआ था। मेरा तो यही अनुमान है। कुलीन स्त्रियों के प्रति ऐसा गौरव-भाव था कि उनकी तरफ आँख उठाकर भी नहीं

देखते थे। किन्तु तवायफ़ों के लिए बड़ी ललक थी। संस्कृत का कोई ऐसा छिछोरा श्लोक नहीं था, जो उन्हें याद न हो। महाभाग, उन्हें राजनीति में तनिक भी रुचि नहीं थी।"

उन्होंने कहा था, "तुझे हर मुसीबत झेल कर भी अपने ही गांव में बढ़ना होगा।" कृष्णप्पा अपने गांव के पास वाले शहर में बढ़ा भी। महेश्वरय्या द्वारा भेजी जाने वाली रक़म से गांव में होने वाली अवहेलना समाप्त नहीं हुई। ग़रीब घराने का लड़का जो ठहरा! जब वह हाईस्कूल में पढ़ता था, तब होस्टल का वार्डन—जो एक बड़ा ज़मींदार था—कृष्णप्पा को बड़ी नफ़रत से देखा करता था। कृष्णप्पा की चाल-ढाल हर किसी की आँखों को किरकिराने वाली थी। कृष्णप्पा कई प्रसंगों का उल्लेख करके बताता कि जब वर्तमान अवस्था और वांछित अवस्था में अन्तर होता है, तब मुखौटे को असली चेहरे में बदलने से पहले कैसे-कैसे संकट झेलने पड़ते हैं! अब मरते समय भी वह ऐसे संकट से मुक्त नहीं था। उसकी निरीह पत्नी डाँट खाने के बाद चौके में सिर के बाल बिखराकर कह रही थी, "बड़े आये नेतागिरी दिखाने वाले! कहते हैं, क्रांति करेंगे। बीवी को पीटना तो पहले छोड़ दें।" इस तरह वह कुढ़ने लगती है तो कृष्णप्पा खिन्न हो जाता है। अपने अहंकार को संयम में रखने के लिए महेश्वरय्या ने जो हास्य-प्रवृत्ति सिखायी थी, क्या वह इस कांतिहीन देह को छोड़कर चली गयी है? इसी बात को सोचकर वह हैरान होता रहता है।

होस्टल के वार्डन ने एक बार कृष्णप्पा की साधारण-सी ग़लती के लिए उसे पीटने की जुर्रत की थी। हाथ में बेंत लेकर होंठ चबाता हुआ लड़कों के सामने वह रौद्रावतार बना हुआ था। लगता था कि वह उसे जान से ही मार डालेगा। उभरे गाल, धँसी आँखें, चेचक के दाग़ों से भरे चेहरे, ठिगने क़द का वार्डन स्वभावतः बड़ा डरपोक था। उसकी कर्कश गर्जना सुनकर उसे घिन हुई। कृष्णप्पा को अपना लीडर मानने वाले सभी लड़के हैरान खड़े थे। तब उसने वार्डन की ओर अपनी पीठ घुमायी तथा चड्डी खोल दी। चूतड़ के पके लाल गोल फोड़े को उँगली से दिखा उसने गरदन को घुमाकर कहा, "साब, इस फोड़े को छोड़ कर जहाँ चाहे मारिये।" और फिर वह पीठ के बल झुक गया था। सभी छात्र खिलखिला कर हँस पड़े।

गुस्से से कांपता हुआ वार्डन तिरस्कार के डर से चला गया था। अमीरी और पद की चालों को कृष्णप्पा ने इस प्रकार कई बार मात दी है।

महेश्वरय्या कहा करते थे, "तुझमें एक बबर है, रे!" वह दुर्गा के परम भक्त थे। कभी-कभी सहसा ऐसी जगह की तलाश करके—जहां उन्हें कोई पहचान न सके—दुर्गा की आराधना में बैठ जाते। दिन-रात निरन्तर चलने वाली इस आराधना ने महीनों तक उन्हें एक ही जगह बांध भी रखा था। ऐसी एक आराधना कृष्णप्पा के सम्मुख भी हुई थी। महेश्वरय्या ने कृष्णप्पा को आत्मीयता से कहा था, "शेर की सवारी करना रे!" लाल रेशमी धोती पहने, माथे पर सिन्दूर का बड़ा टीका लगाये और गीले लम्बे बालों को कंधे पर बिखराये हुए इस देवी के उपासक की चमकती आंखों को कृष्णप्पा ने संशय की नजर से देखा था। उससे किसी भी देवता की पूजा संभव नहीं थी। उसके मुखौटे को असली चेहरे में बदलने वाले महेश्वरय्या का विश्वास भी उसे चाहिए था। इसलिए एक दिव्यत्व को अपने में आत्मसात करने के लिए वह संशय से मुक्त होकर तथा तन्मयता से उनकी बातें सुना करता था। कृष्णप्पा की प्रगति की खातिर महेश्वरय्या उसे छेड़ने से भी बाज नहीं आते थे। सदा आईने के सामने खड़े होकर कंघी करने या मुंहासे फोड़ते रहने वाले कृष्णप्पा की आत्मरति को उन्होंने इसी प्रकार फटकार कर छुड़वाया था।

हंसते या गरजते हुए कृष्णप्पा का भीतरी शेर छलांगें भरता था। दुष्कर्मियों को कीड़े-मकोड़े होने का अहसास कराने लायक शक्ति कृष्णप्पा ने धीरे-धीरे हासिल की थी। राज्य में विपक्ष का वह नामी लीडर जो था। उसका मुंह बन्द करने के लिए कमीने और पाजी लोग कैसी पैंतरेबाजी करते थे! यही कारण है कि कृष्णप्पा को होंठ काट कर ही जीना पड़ा था।

शायद इसीलिए समाज के सामने अपने-आपको मुखरित न करने वाले महेश्वरय्या जैसे आत्माराम कृष्णप्पा के मनभावन बने रहे। गबन ही जिसका स्वभाव हो, ऐसे नित्य जीवन में परिपूर्ण शुद्धि को ढूंढना ही बेढंगापन है—इस प्रश्न ने भी उसे सताया है। बजट, नौकरी, रिश्वत, तरक्की, तबादला, ठेका इत्यादि में डुबोने वाली राजनीति से ऊपर उठने के लिए कृष्णप्पा सदा प्रयत्न करता रहा है। क्रांति का सपना देखता रहा है। किन्तु

उसका क्रांतिकारित्व धीरे-धीरे पैवन्द लगाने जैसा हो गया है। अपने को इन सबसे मुक्त रखने वाले महेश्वरय्या का भी इधर बहुत कम आना हुआ है। या तो झगड़ालू और अहंकारी बनना होगा, या समाज से मुंह फेरा हुआ आत्माराम। लोभियों के साथ बेदरकार बातें करके कृष्णप्पा खुश होता है। इस प्रकार खुश होने की अपनी आदत से वह दहल भी जाता है। अपने गुस्से से इर्द-गिर्द के वातावरण में जब तनिक भी परिवर्तन नहीं हो पाता तो दिल को यह तसल्ली दे लेता है कि गुस्से को एक आदत बनाये बिना कोई चारा नहीं। क्रोध, क्षोभ, प्रेम की तीव्रता की अभिव्यक्ति के लिए कबीर, अल्लम जैसे नीम-पागलों की कविताएँ राजनीति से अधिक उत्तम माध्यम लगती हैं।

किन्तु कृष्णप्पा साहित्यिक बनने के चक्कर में हारा हुआ है। एक बार सफ़ेद काग़ज़ पर गोल-मटोल अक्षरों में अधूरा वाक्य लिखकर उसे पूरा नहीं कर पाया था—"कटाई के दिनों में सुबह के समय करिया नामक एक मेहतर सिर पर गू की बाल्टी रखकर जब निकला..." यह वाक्य पूर्ण-विराम न पाकर अधूरा रह गया था। क्या उसे पूरा कर पाना संभव था ? इस एक वाक्य से ही उसके दिल में दुनिया की गन्दगी को जला डालने वाला भभकते अंगारे जैसा गुस्सा समा गया था। इस प्रकार लिख पाना तभी संभव था, जब उसके जीवन में ऐसे गुस्से की कोई मिसाल मौजूद हो, या ऐसे गुस्से को सच बनाने की वाक्सिद्धि हो। वह कवियों की निन्दा किया करता था। जिनसे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, वे ही लोग ऐसी बातों में अपनी चुल मिटाते हैं। कृष्णप्पा में इस जलन को देखकर महेश्वरय्या ने कहा था, "जलाने की ताक़त है तो जला दे, यार ! वाग्देवी की निन्दा मत कर।" महेश्वरय्या की राय में जहाँ-तहाँ गुस्सा उगलने के बदले बातों के द्वारा अन्तर की अग्नि-जिह्वा बनाकर उसे जलाना ही श्रेष्ठ है। किन्तु कृष्णप्पा जानता था कि उसकी बातें घमंड से चिपकी रह जाती हैं। पूरी देह से अर्बुद की भाँति बाहर निकलती हैं।



केंचुल छोड़ते समय जैसी वेदना होती है, उसी तरह की वेदना में कृष्णप्पा कभी-कभी पगला जाता रहा है। उन दिनों वह इंटरमीडिएट कॉलिज में पढ़ता था। होस्टल में उसके खाने और आवास का मुफ्त प्रबन्ध था। उम्र शायद पच्चीस रही होगी। उसकी जन्मतिथि का भला ठीक-ठीक पता किसको था? पूछने पर अनपढ़ माँ बताती कि जिस वर्ष बाढ़ आयी, उस वर्ष कृष्णप्पा पैदा हुआ था। फ्री-बोर्डर होने पर भी होस्टल के सभी धनी लड़कों का वही लीडर था। चाहे और किसी के पास अलग कमरा न हो, किन्तु उसके लिए एक अलग कमरा सभी लड़कों ने मिल कर छोड़ दिया था। एक बार कृष्णप्पा को तेज़ ज्वर चढ़ गया। गुरुप्पा नामक एक धनी लड़का उसका अनुयायी था। जब वह कृष्णप्पा की सुश्रूषा में लगा था, तब बड़े तेज़ ज्वर में कृष्णप्पा ने कहा, "मुझे एक गद्दा बनवा कर दे।" कृष्णप्पा जानता था कि गुरुप्पा कुछ कंजूस स्वभाव का है। गद्दा कैसा हो, इसका विवरण दिया, "अरे ओ गुरुप्पा! कंजूसी मत कर। गद्दे के चारों ओर अलग कपड़ा लगवा कर किनारा बँधवाना। गद्दा बक्से जैसा हो। समझा?" गुरुप्पा ने "हूँ" कहा और बाद में गद्दा बनवा लाया। कृष्णप्पा को अभी ज्वर था। अंट-संट बड़बड़ाते हुए भी उसने नये गद्दे के किनारों को टटोल कर देखा था। "साँप के फन की तरह नोकदार है न, यार? बक्से जैसा होना चाहिए, बक्से जैसा।" पलकें खोल न पाने पर भी गुरुप्पा का चेहरा देखने के लिए उसने उठने की कोशिश की थी। जब गुरुप्पा ने बताया कि उसका मनपसन्द गद्दा ही बनवाया गया है तो उसे बड़ा गुस्सा आया। वह 'गद्दा नहीं चाहिए' कहकर ज़मीन पर ही सोता रहा। गुरुप्पा ने बहुत मिन्नतें कीं कि ठंड लग जायेगी, किन्तु वह टस से मस नहीं हुआ। कुछ माह

पहले इसी भाँति गुरप्पा को भी ज्वर चढ़ा था। तब कृष्णप्पा उसके माथे पर गीली पट्टी रखते हुए बगल में ही बैठा रहता था। उसकी क़ै को धो-पोंछ देता था। यही वजह है कि गुरप्पा के मन में कृष्णप्पा की पूजा करने लायक़ भक्ति उत्पन्न हुई थी। फिर भी कंजूस गुरप्पा को अच्छा गद्दा बनवाना नाहक़ फ़िज़ूलख़र्ची लगा होगा। सरसाम में पड़े व्यक्ति की बातों को क्यों व्यर्थ का महत्व दे, यह विचार मन में आने पर धोखा देने की जुर्रत भी की होगी। इस ओछेपन ने कृष्णप्पा को भी बहुत दुखाया होगा। बाद में गुरप्पा ने बड़ी दीनता से गद्दा बनवा कर लाख याचना की, किन्तु कृष्णप्पा उस पर सोया नहीं। अपने पुराने बिस्तर पर भी नहीं सोया। ताड़ की बोरी पर सोता रहा। मुँह लटकाये गुरप्पा उसकी बग़ल में ही बैठा रहा। फिर भी उससे बातें करने की उसकी हिम्मत नहीं हुई।

ज्वर कम हो जाने पर वह अपने ममेरे भाई के गाँव सुश्रूषा के लिए चल दिया। उस गाँव के लिए पहले रेलगाड़ी पकड़नी पड़ती थी। तीस मील के सफ़र के बाद बस पकड़नी पड़ती थी। एक ही बस थी। उसका कोई निश्चित समय नहीं था। कृष्णप्पा स्टेशन पर उतरकर बस की प्रतीक्षा में एक होटल के सामने वाली बेंच पर सो गया।

अभी मामूली-सा ज्वर था। होटल के मालिक ने बेंच पर लेटे कृष्णप्पा को तम्बाकू के रस से भरे मुँह को ऊपर उठाकर तथा दाढ़ी खुजाते हुए उठने के लिए इशारा किया। तिरस्कार को जीतने के लहजे में कृष्णप्पा ने उसे घूरकर देखा। मालिक की खोपड़ी गरम हो गयी। तम्बाकू थूक कर कहा, "चल, उठ बे ! वरना घसीटवा दूँगा।" कृष्णप्पा ने पहले की भाँति घूरते हुए लेकिन नरम आवाज़ में कहा, "मुझे ज्वर है। बाहर धूप में सो नहीं सकता। बस आने तक मुझे यहाँ सोने की इजाज़त दें।" बातों की शिष्टता उसकी आँखों में नहीं थी। "इसे घसीटकर बाहर निकाल दो। लावारिस हरामज़ादों के सोने के लिए नहीं है यह होटल।" उसने कहा। एक नौकर ने कृष्णप्पा के सिरहाने का ट्रंक खींचा। मालिक ने जब उसे बाहर फेंका तो ट्रंक का सामान दोपहर की धूप में छितरा गया। वे लोग कृष्णप्पा को घसीटने के लिए जब आगे बढ़े तो उसने कहा, "ख़बरदार, जो मुझे हाथ लगाया।" इसके बाद वह लड़खड़ाता हुआ बाहर आ गया।

अचकन की बाँहों को ऊपर चढ़ाकर बिखरा हुआ सामान ट्रंक में भर लिया। चिलचिलाती धूप में ट्रंक पर बैठ प्राचीनकाल के उग्र मुनिकुमार की भाँति होटल की इमारत को घूरते हुए शांति के साथ कहा, "यह इमारत आग से राख हो जाये। महीने-भर में ही।" यह सुनकर मालिक ने थूक दिया। कृष्णप्पा दया भाव से हँस पड़ा।

ऐसी बातें करने की शक्ति आज भी उसमें है। भले ही वह चल-फिर नहीं सकता। किसी की ओर भी देखे बिना उसने असेम्बली में कहा, "अब मैं नमीहा की तरह बोल रहा हूँ। चाहे तो सुनिये, चाहे तो न सुनिये। मुझे इस बात से मतलब नहीं। गरीब जनता भड़क उठेगी। तुम्हारे घरों में आग लगायेगी।" दैनिक समाचारपत्रों के हास्यप्रिय सम्पादकों ने इसे कॉलम बनाकर प्रकाशित किया। उसके चेहरे, उसकी आवाज, उसके गम्भीर लहजे से परिचित किसी व्यक्ति ने ये बातें सुनी होतीं तो उसे वह मसखरा लगता ही नहीं। किन्तु रोजमर्रा के दुखों से भरे समाचारपत्रों में जब कृष्णप्पा की बातें दिखायी पड़ती हैं तो हास्यास्पद लगती हैं, एक दम्भी की बकझक जैसी लगती हैं। कृष्णप्पा इस बात को जानता है। यही कारण है कि वह गरीबों को भड़काने वाले द्वेष और नफरत के पैनेपन को बचाये रखने की कोशिश इस ढलती देह से भी करता है।

कृष्णप्पा का ममेरा भाई रंगप्पा छोटी-मोटी रिश्वत के लिए हाथ पसारकर जीने वाला एक मामूली-सा मुंशी था। छोटे-छोटे आठ बच्चे। सिर्फ दो कमरों के टूटे खपरैल वाले घर की मालकिन थी सावित्रम्मा। वह छींक आने के कारण अपनी बहती नाक को दीवार से पोंछती हुई सदा बड़बड़ाती रहती। परोसते समय बिना किसी हिचक के पति को गाढ़ा मट्ठा और कृष्णप्पा को पतली छाछ देने वाली औरत थी वह। कृष्णप्पा इस औरत को अपनी घूरती रहने वाली क्रुद्ध आँखों से भी जीत नहीं सका था। वह इस शहर में इलाज के लिए आया था, वरना माँ के पास जा सकता था। बच्चों के कमरे में ही अपने रू-ब-रू पड़े रहने वाले कृष्णप्पा की निरुपयुक्तता—बीमारी के कारण सभी की भाँति 'मुद्दे' न खाकर चावल खाते रहने के बारे में, अपनी गरीबी के बारे में, अपने-आप कुढ़ती हुई रसोई के पीतल के बर्तन पटकते हुए—उसके घमंड को और भी उत्तेजित

करती।

अपने चारों ओर की क्षुद्रता पर विजय पाने का कोई दूसरा रास्ता न देखकर कृष्णप्पा ने गहरी चुप्पी साध ली। बच्चों का मल-मूत्र, पति का खाऊपन, सदा बिखरा रहने वाला कूड़ा-कर्कट। सभी सामान्य स्त्रियों की भांति आये दिन जूझते रहने वाली मामूली स्त्री मानकर पहले की भांति उसे घूरकर देखना और उसके मुंह लगना भी छोड़ दिया। 'उसका घटिया-पन मेरे दुर्बल शरीर और मन को कहीं हड़प न लें', यह सोच कर वह रहमदिल बन गया था। इस तरह रहते हुए एक ही दिन दो ऐसी घटनाएं घटीं कि कृष्णप्पा में आश्चर्यजनक परिवर्तन आया।

कृष्णप्पा की डायरी की एक मिसिल थी। सावित्रम्मा इस पुस्तक में सुन्दर अक्षरों में कुछ लिखते हुए प्रसन्नचित्त कृष्णप्पा को कुढ़कर घूरती रहती। कृष्णप्पा को तन्मय बना देने वाली यह व्यस्तता अनपढ़ सावित्रम्मा को कोई टोने-टोटके जैसी लगती थी। एक दिन कृष्णप्पा अभी सोया हुआ ही था कि सावित्रम्मा ने उस किताब से पानी गर्म करने के लिए चूल्हा सुलगा लिया। उसने मन में सोचा कि पूछने पर कह देंगे कि चूल्हा सुलगाने के लिए कंडे नहीं थे।

कृष्णप्पा ने जागने के बाद आम की दातून की और मांझ-घर में आकर पूछा, "मेरी पुस्तक कहां है?" शक होने पर हमाम में जाकर देखा। किताब के पुट्ठे का अधजला टुकड़ा देख लेने के बाद वह सावित्रम्मा के सामने आकर बिन बोले उसे घूरने लगा। सावित्रम्मा ने निष्पाप भाव से कहा, "कंडे नहीं थे।" कृष्णप्पा निश्चल खड़ा रहा। मन में आया कि उस औरत को जान से मार दे। साथ ही उसकी आंखों में पानी भर आया। उस पानी को देखकर शायद सावित्रम्मा इसके लिए पछताएगी, इस विचार से वह बिस्तर पर जाकर सो गया। आंखें बन्द कीं। समझ में न आने वाली बातें उसके मन में उठने लगीं। 'चारों ओर की क्षुद्रता मेरा नाश किये बिना न रहेगी'—ऐसी भावना के मन में आते ही लगा कि वह बड़ा निकम्मा बनता जा रहा है। अपनी उंगलियां काट डालने को मन हुआ। ट्रंक से ब्लेड निकाला। अब यदि निडर होकर अपनी उंगलियां काट ले तो इसका मतलब होगा कि वह ठोस बन गया है। यह सोचकर जैसे ही वह उंगलियां

काटने जा रहा था कि पडोस की एक औरत की आवाज सुनायी दी, "सुनो, सावित्रम्मा ! अरसाले में होटल या न, उडुपा जी का। उनके होटल में आग लग गयी थी। उनके हाथ-पाँव झुलस गये और अस्पताल में भर्ती किये गये हैं।"

यह सुनकर कृष्णप्पा को अपने शाप की बात याद आ गयी और उसे लगा कि वह दैवांश-सम्भूत है। शाप के फलीभूत होने की अवधि एक माह थी। अब दस दिन और बीत गये थे। कृष्णप्पा को उद्वेग मे यह बात खटकी नही। वह दैवांश-सम्भूत है और इस अंश की वृद्धि करके खुद देवता ही बन जाने की चाह से वह खिलखिला कर हँसा। पड़ोसन और सावित्रम्मा के सामने पेन्सिल की भाँति पाँव की छोटी उँगली छील डाली। उससे लहू का फ़व्वारा छूटने लगा तब भी वह हँसता ही रहा।

तब से शुरू हुआ था कृष्णप्पा का पागलपन। महेश्वरय्या की भाँति माँझ-घर में बैठकर व रंगोली पूर कर एक बड़ा-सा मडल रचाया। फिर उसमें हल्दी और सिन्दूर भरा। बीच में मँजी हुई एक देगची रखकर देवी की प्रतिष्ठापना की। केवल लँगोट पहनकर महेश्वरय्या द्वारा दी हुई 'सौन्दर्यलहरी' का पाठ शुरू किया। सावित्रम्मा हड़बड़ा उठी कि शूद्र लोग भी मन्त्र पढ़ने लगे ! वह घबरा गयी थी। स्पष्ट मन्त्रोच्चार करने वाले कृष्णप्पा के पास जाते न बनता था। वह हैरान खड़ी रही। स्कूल से आये बच्चों को पिछवाड़े मे ही चौके मे बुलाकर ताकीद कर दी कि कृष्णप्पा के पास न जायें। शिवगण की भाँति कृष्णप्पा को बैठे देखकर उसका पति रंगप्पा भी भौंचक्क रह गया। पूजा के बीच में जब कृष्णप्पा ने चिल्लाकर कहा कि तोरण बाँधो, तब खुद रंगप्पा ने आम के पत्ते लाकर तोरण बाँधे।

माँझ-घर मे कोई फटका तक नही। इस प्रकार तीन दिनों तक होंठ सीकर सावित्रम्मा ने शुचि में खीर और 'कोसुंवरी' का भोग बनाया। आस-पड़ोस में किसी को समझ मे नहीं आया कि इस अप्रत्याशित प्रसग का सामना कैसे किया जाये ? कचहरी के ब्राह्मण-मुंशियों ने रंगप्पा को दहलाया कि रंगप्पा के लिए इसका बुरा परिणाम होगा। कुछ लोगो ने तो यहाँ तक कहा कि एक अब्राह्मण के द्वारा देवी का आह्वान करना सम्भव

हो नहीं। कृष्णप्पा को दीक्षा देने वाले महेश्वरय्या किस जाति के थे—इसका ठीक पता किसी को भी नहीं। थोड़ा-बहुत मंत्र का ज्ञान रखने वाले एक मुंशी ने बताया कि यदि यह बंगाल के शक्ति-पंथ की उपासना है तो कृष्णप्पा तथा अन्य लोगों का यकीनन मुसीबत से छुटकारा नहीं होगा। बाहर से ही मंत्र सुनकर उसने अपूर्ण ढंग से सिर हिलाया कि यह तांत्रिक उपासना ही है। इसके निवारणोपाय के लिए रंगप्पा ने हाथ जोड़कर विनती की। "जरूर है। देखकर बतलाऊँगा। आह्वान करने के पश्चात ठीक ढंग से विसर्जन भी करना पड़ता है। इस टोने-टोटके का यही नुकसान होता है कि इसमें जो हाथ डालता है, उसी को खा जाता है।" उसे असमंजस में पड़ा हुआ देखकर रंगप्पा हैरान हो गया।

कृष्णप्पा सोता भी नहीं था। दिन में तीन बार कुएँ से पानी खींचकर सिर पर उँडेल लेता और फिर बैठ जाता। ऊँची आवाज़ में दिन-रात मंत्र-पाठ करता रहता। देवी के भोग के लिए बनी खीर ही तनिक खा लेता—बस! रंगप्पा हर रोज सवेरे एक टोकरी भरकर फूल लाता। देवी के प्रिय अड़हुल फूल के लिए चार मील दूर जाता। माना पर तीन दिनों तक कृष्णप्पा की आज्ञा का पालन करता रहा।

कृष्णप्पा देवाराधना को अपने पूरे बुद्धि-बल से नकारता रहा है। उसे आज भी उन दिनों की अपनी स्वच्छंद अवस्था रहस्यपूर्ण लगती है। तीन दिनों तक देवी की आराधना करने के पश्चात उसे लगा था कि अपने मर्त्य-शरीर से वह भिन्न है। जैसे ही उसे इस ज्ञान का अनुमान हुआ, फ़ौरन पूजा छोड़कर उठ खड़ा हुआ और लँगोट उतारकर बाहर निकल आया। नंगा होकर गली में चलने लगा। तब कुछ डर और कुछ आदर से लोग उसे देखने लगे। फिर तो उसका उन्माद बहुत बढ़ गया और वह गाँव के छोर वाले गणेश जी के चौतरे पर जा बैठा।

इसके बाद की घटनाएँ कृष्णप्पा को याद नहीं। पता नहीं, महेश्वरय्या कहाँ से आये और कहाँ ले जाकर उसका इलाज करवाया! आखिरकार कृष्णप्पा ठीक हो गया।



यदि यह पागलपन है तो आखिरी साँस की प्रतीक्षा में लेटे कृष्णप्पा को ऐसा उन्माद आज भी चढ़ सकता है। कृष्णप्पा को नफरत की निगाह से देखना मुमकिन नहीं था। उसका नाम भी उसकी सीमा की घोषणा करता लगता था। रजिस्टर में उसका नाम था कृष्णप्पा गौडा। कृष्णप्पा गौडा पुकारने से आत्मीयता का भाव तथा उसके शूद्र होने का बोध—दोनों होते थे। इसलिए अध्यापकों के लिए एक समस्या पैदा हो जाती थी कि उसे कैसे पुकारा जाये? 'कृष्णप्पा' कहना ज्यादा आत्मीयता होती। सभी उसे 'गौड़ाजी' कहा करते मानो उसका कोई एक नाम ही न हो।

इसी प्रकार वह सहसा अपनी क्षुद्रता को मात देकर चौंका देता है। एक बार राज्यपाल के भाषण में देश की आम स्थिति के प्रति कोई सहानुभूति व्यक्त नहीं की गयी थी। अतः उसने कुपित होकर भाषण की प्रति को जमीन पर फेंककर पाँव से रौंद दिया तो उसकी उग्र मूर्ति को अन्य सभी सदस्य दो-एक मिनट के लिए काष्ठ बनकर अपलक देखते रहे थे। तत्पश्चात सभा के अपमान आदि का हो-हल्ला किया गया और उसे बाहर कर दिया गया। कृष्णप्पा का मानना था कि केवल पाजियों को सौजन्य की आवश्यकता होती है। किन्तु अपना कोई परिचित, चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो, बीमार होता तो कृष्णप्पा फल-मेवा लेकर उससे मिलने जाता। इस प्रकार कृष्णप्पा के आने से रोगी हर्षित हो जाते थे।

एक दिन सवेरे कृष्णप्पा को पेशाब की सख्त तलब हुई किन्तु खुद से उठा नहीं गया। पैन के लिए 'सीता, सीता' कहकर पत्नी को आवाज दी। शायद वह नहा रही थी। देह दुर्बल हो गयी थी, रोक न पाया। बिस्तर पर ही पेशाब कर दिया। सीता नहाकर आयी तो पति के मायूस चेहरे को

देखकर पूछा, "क्या है?" उसके जवाब के बिना ही भिनकती बू से वह समझ गयी। कृष्णप्पा को यह सोचकर गुस्सा आया कि शायद वह खुश हो गयी होगी। जल्दी से उसे दूसरे बिस्तर पर स्थानान्तरित करते हुए पत्नी ने कहा, "मुझे देखकर तुनकते रहते हो। बताओ तो सही, दूसरा कौन तुम्हारा मल-मूत्र उठाता? कहा करते थे न कि तुम्हारे नाम की माला जपती कोई बैठी है। क्या वह यह काम करती? और वह लूसी या फूसी थी न, क्या वह करती?" पत्नी को मनाने के लिए कृष्णप्पा ने कभी ये बातें उससे कही थीं। अब उसकी याद करके मन-ही-मन उबल पड़ा। लगा कि यह औरत सुश्रूषा में आख़िर उसी को मात दे रही है। गौरी देश-पांडे और लूसीना की बात ख़ुद कृष्णप्पा ने ही अपनी पत्नी से बतायी थी। ऐसी बातें बताकर पत्नी की हीनभावना को जीतने की चेष्टा की थी। जब वह बतियाने लगता तो उसकी पत्नी न 'ना' कहती, न 'हाँ'। बस यही कहती है, "वह सब मैं नहीं जानती। दोपहर की दवा ली?" या कहती है कि पड़ोसिन ने मैटनी के लिए बुलाया है, वह जायेगी। रोज़मर्रा के घरेलू कामकाज या अधिक-से-अधिक बैंक के अन्य कर्मचारियों के शादी-ब्याह, बच्चे-जच्चे आदि के बारे में बातें करती। बस यही थी उसकी दुनिया। इसके साथ ब्याह करके उसी वर्ष कृष्णप्पा ने एक बच्ची पायी थी। उसके पश्चात शरीर-संबंध भी नहीं रख पाया था। किन्तु अब उसकी देह पोंछने से लेकर मल-मूत्र उठाने वाली वही थी। कृष्णप्पा ताड़ गया कि वह जीत रही है। वह क्रूरता से भी पेश आता तो सीता धीरज के साथ सभी कुछ सहती। यह सब देखकर कृष्णप्पा को भय लगने लगता कि कहीं उसका व्यक्तित्व तो खोखला नहीं बनता जा रहा!

शुरू से ही सीता जीतती रही थी। नहीं तो लूसीना और गौरी की बातें बताकर गौरव पाने की चेष्टा करने की आवश्यकता ही नहीं थी। पत्नी से सम्भोग करने से पहले कृष्णप्पा उसे जताने की चेष्टा करता कि उसकी यह देह और उसका मन मामूली नहीं है। लेकिन सीता के भोंदूपन के आगे कृष्णप्पा को अपनी यह चाल हास्यास्पद लगती थी। सावित्रम्मा द्वारा उसकी डायरी जलाये जाने की बात पर सीता ने आश्चर्य व्यक्त किया था, "डायरी में कौन ऐसी बढ़िया चीज़ हो सकती है भला!" वीरे-

धीरे काँछेदार धोती और कमीज़ खोलते हुए वह बोलता तो वह ऊब जाती और कहती, "जल्दी आइये। नाहक बड़ी देर तक सताते न रहिये। सवेरे नौ बजे बैंक भी जाना है।" उसे मनाने के लिए मुसकराहट का लेप भी रहता, पर पत्नी के प्रति सारी आशाएँ सूख जातीं। मूलत. वह भी उसी के स्तर का रहा होगा वरना उससे शादी क्यों करता ? 'अपने मूल स्तर को स्वयमेव पहुँच गया हूँ', इस सोच से उदास होकर सो जाता अथवा उससे सम्भोग करने की इच्छा होने पर खूब पी लेता।



जब कृष्णप्पा बी० ए० के अन्तिम वर्ष में था, तब गौरी देशपांडे के साथ उसकी मैत्री शुरू हुई थी। देर से पढाई शुरू करने के कारण कृष्णप्पा उससे सात-आठ वर्ष बड़ा था। बयालीस-तैंतालीस के आन्दोलन में कृष्णप्पा छात्र-नेता था, इसलिए लड़कियों के लिए वह एक लीजेंड था। उसके गुस्से, मगरूरपन, पागलपन की बातें जानकर कोमल दिल वाली लड़कियाँ अपने अध्यापकों से भी अधिक कृष्णप्पा की इज्जत करतीं। वह क्लास में आता भी कम था। जब कभी आता तो अध्यापक भी अपने छिछोरपन को छोड़ गम्भीरता से पढ़ाते। परीक्षा-वरीक्षा के लिए सिर न खपाने वाला कृष्णप्पा असाधारण रूप से बुद्धिमान था। कृष्णप्पा की स्वतंत्र सोच तथा बड़ी उम्र के कारण अध्यापकगण उसके प्रति हिचकते रहते।

कृष्णप्पा काला-कलूटा, हट्टा-कट्टा आदमी था। सफ़ेद खद्दर की धोती और अचकन पहनकर कॉलेज आता था। इन सफ़ेद कपड़ों में करीने से तराश कर खड़ी की गयी काली मूर्ति की भाँति दिखायी पड़ता। जब कभी वह घूरकर देखता तो उसका प्रशान्त चेहरा क्रूर बन जाने से भयानक लगता। विनम्र बातचीत। गायक की तरह भर्राई हुई आवाज़। लड़कियाँ

उसे 'अफ्रीका का प्रिन्स' कहा करतीं। "प्रिन्स आया है, री, आज !" कभी-कभार उसे देखकर लड़कियाँ निहाल हो जातीं।

गौरी देशपांडे कॉलेज की ख्यात नर्तकी, संगीत-विदुषी तथा कक्षा में प्रथम आने वाली छात्रा थी। कृष्णप्पा की ओर उसके आकर्षण की भनक पाकर चतुर लड़कियाँ उसे 'राधा' कहकर चिढ़ाने लगीं। सामने नहीं—पीठ पीछे। इसका कारण यह था कि गौरी किसी से भी अधिक न मिल-जुलकर एकांगी रहा करती थी।

लड़कियों के आश्चर्यचकित होने की एक वजह और भी थी। गौरी की माँ पति को छोड़कर आयी थी। सुपारी मंडी के महाजन नंजप्पा की रखैल बनकर रहती थी। इस बात को जानते हुए भी किसी के लिए गौरी को घटिया नज़र से देख पाना संभव नहीं था—गौरी इस क़दर गम्भीर रहा करती। महाजन नंजप्पा ने गौरी की माँ अनसूयाबाई को अलग बँगले में रखा था। उसके घूमने के लिए अलग कार और ड्राइवर थे। उटकमंड के गुलाबों से सजा विशाल आँगन वाला उसका घर सारे गाँव में प्रसिद्ध था। अनसूयाबाई को विरले ही बाहर देखा गया था। जिन्होंने उसे देखा नहीं था, वे भी उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करते। अन्दाज़ा लगाते रहते कि जब गौरी इतनी सुन्दर है तो उसकी माँ कितनी सुन्दर होगी !

अनसूयाबाई कार से कभी गाँव में नहीं आती। गाँव के बाहरी बँगले से केम्मणगुंडी या मंगलूर जाने के लिए ही वह कार का उपयोग करती। गौरी देशपांडे इसी कार से हर रोज कॉलेज आती-जाती थी। अन्य लड़कियों को इससे और भी ईर्ष्या होती। उसके नाम के पीछे लगे देशपांडे को लेकर लड़कियाँ आपस में बातें करतीं कि इस नाम का कोई उसका बाप रहा होगा। बाप के साथ न रहकर माँ के प्रेमी के साथ रहने वाली गौरी कितनी बदक़िस्मत है ! तिस पर सभाओं में नाचने-गाने वाली लड़की कितनी बेहया है ! पर साथ ही गौरी की चाल-ढाल से दंग भी होतीं।

गौरी ऐसे रहती मानो इन लड़कियों की दुनिया से उसका कोई सरोकार ही न हो। सफ़ेद साड़ी और सफ़ेद ब्लाउज़ पहनकर अपने लम्बे काले जूड़े में एक सफ़ेद गुलाब खोंसकर वह संजीदगी के साथ क्लास में बैठी रहती। उसके बदन पर कोई गहना न होता। लेडीज़-रूम में भी कोई-न-

कोई किताब पढती रहती। सामान्यत. लडकियाँ आपस में एकवचन में सम्बोधन करती हैं। उससे भी एकवचन में बातें करती हैं, पर वह नाजुकी से उन्हें बहुवचन में सम्बोधित करके अपना फ़ासला बनाये रखती। कृष्णप्पा ने कभी उससे बात नहीं की, फिर भी उसे बराबरी की निगाह से ही देखता था।

एक दिन शाम के समय कृष्णप्पा अकेला ही कॉलेज की ओर घूमने निकल गया था। फुटबाल की एक टीम खेल खत्म करके घर की ओर लौट रही थी। इस टीम का कैप्टन एक मुस्टडा लडका था। वह अपनी टोली को पीठ के पीछे खडा करके दीवार पर कुछ लिख रहा था। सभी को हँसते देख कृष्णप्पा का ध्यान उस ओर गया। मुस्टडे का नाम था रामू। कॉलेज में आवारा के नाम से प्रसिद्ध था। कृष्णप्पा के बराबर की ही उम्र थी। बाप शहर की एक बड़ी राइस मिल का मालिक था। कृष्णप्पा को जो इज्जत मिलती थी, उससे वह जलता था। कृष्णप्पा ऐसे गुंडे-आवारा लड़कों से काफ़ी फ़ासला रखता था। वह उनकी ओर कभी आँख उठाकर भी नहीं देखता था। कॉलिज में यों व्यवहार करता मानो उसकी बराबरी का वहाँ कोई है ही नहीं। ऐसे लडकों की समझ में नहीं आता था कि किसी के साथ स्पर्धा न करने वाले कृष्णप्पा के साथ कैसे पेश आयें!

रामू द्वारा लिखे बडे-बडे अक्षरों को पढकर कृष्णप्पा का रोआँ-रोआँ जल उठा। "गौरी छिनाल की बेटी है।" "ऐ गौरी, तेरे बोसे का क्या दाम है?" ऐसे वाक्यों पर रस लेते रामू के पास जाकर कृष्णप्पा ने अपनी गभीर भर्राई हुई आवाज में कहा, "जो लिखा है, उसे मिटा दो।"

पल-भर रामू को सूझा नहीं कि क्या जवाब दे! "तुम्हें क्या पता कि किसने लिखा है?" थोड़ी देर बाद उसने दबी आवाज में कहा। फिर कुत्सित तरीके से हँसकर अपने साथियों की तरफ देखा ताकि उन्हें पता चल जाये कि उसने कैसी समझदारी की बात कही है।

"तुम्हें लिखते हुए मैंने देखा है।" कृष्णप्पा ने अपना गुस्सा दबाकर संजीदगी से कहा।

रामू पहलवान था। बड़ी-बडी मूँछें रखी हुई थीं। शायद मन-ही-मन कृष्णप्पा का जिगरी बनने की इच्छा रही होगी। ठोस व्यक्ति से लड़ पड़ने

पर बराबरी की मैत्री प्राप्त होगी, इस बात की समझ रखने वाला था वह। किन्तु कृष्णप्पा उसे ओछी निगाह से ही देखा करता था। एक थप्पड़ मारकर और जवाब में थप्पड़ खाकर आत्मीय बनने के लिए वह तैयार दिखायी नहीं देता था।

रामू ने उसे छेड़ा, "क्या वह तुम्हारी राधा लगती है ?"

उसे विश्वास था कि कृष्णप्पा उस पर हाथ उठायेगा, लेकिन झपटकर अपनी आबरू बचा लेने की रामू की प्रतीक्षा भी बेकार गयी। कृष्णप्पा ने पास वाले नल से अपना रूमाल भिगो कर दीवार की लिखावट पोंछनी शुरू की। रामू इन्तज़ार में खड़ा रहा। कुछ और छेड़ने के लिए।

"लगता है, वह तुम्हें मुफ़्त देती है ?" उसने कहा। उसकी बात पर साथियों ने सीटी बजायी। कृष्णप्पा उनकी ओर देखे बिना आगे चल पड़ा मानो वहाँ कोई हो ही नहीं। कुछ दूर चलने पर उसे शंका हुई कि कहीं वे दुबारा न लिख दें ! मुड़कर देखने की इच्छा को दबा लिया। सोचा, जैसे अपने गिर्द की क्षुद्रता वह स्वयं जीतता जा रहा है, उसी भाँति गौरी को भी जीतने दें।

दूसरे दिन दीवार को साफ़ देखकर उसे लगा कि उसकी जीत हुई है, किन्तु उसके तीसरे ही दिन "गौरी कृष्णप्पा को मुफ़्त देती है", "कृष्णप्पा गौरी का कुटनी का काम करता है" आदि बातें डामर में लिखी दिखायी पड़ीं। सारे कॉलेज में फुसफुसाहट हो रही थी। जब कक्षाएँ शुरू हुईं, तब डामर की उस लिखावट को चपरासियों द्वारा मिटाने के प्रयत्न में और भी गहरा तराशा गया था। कृष्णप्पा ने चलते-चलते गौरी को यों देखा कि उसका उस लिखावट से कोई सरोकार नहीं। मन में सोचा कि इससे कहीं उसके दिल को दुख न हुआ हो। किन्तु वह भी विचलित दिखायी नहीं पड़ी। तब उस दिन शाम को खुद उसके घर जाकर घंटी बजायी।

गौरी गा रही थी। घंटी की आवाज़ सुनकर दरवाज़ा खोला। कृष्णप्पा को देखकर जो खुशी हुई थी, उसे जाहिर न करके भीतर लिवा ले गयी। उसकी गुप्त रूप से खिली भावना को ताड़कर उत्तेजना के साथ कारपेट पर नजर गड़ाये कृष्णप्पा ने धीरे-धीरे कहा, "आज पता चला कि बराबरी का दर्जा रखने वाली इस कॉलेज में अकेली आप ही हैं।"

गौरी से नजर न मिलाकर कृष्णप्पा शीशे की मेज, दीवार पर टँगी देवताओं की तसवीरों, तम्बूरे आदि को देखने लगा। शीशे वाले जँगले के उस पार खिले हुए गुलाब दिखायी पड़े। उसे खेद हुआ कि वह इस प्रकार की वातें करके घटिया वन गया।

"मेरी बातें दिल को मत लगा लेना। नाहक बातें करके मैं चीप बना, आपको भी चीप बनाया।" यह कहते हुए वह उठा।

"नहीं, नहीं। बैठिये।" गौरी झेंपकर बोली। "यह सच है कि मेरी माँ, जब मैं बच्ची ही थी, मेरे पिता को छोड़ आयी। नंजप्पा जी ने उसे रख लिया है। देखिये, ये सारी वस्तुएँ उन्हीं की हैं।" इसके बाद वह उठ खड़ी हुई। "इतना सब जानने के बाद पता नहीं, आपको क्या लगा होगा?" उसे लगा कि गौरी का चेहरा अपने उद्वेग को छिपाने की कोशिश कर रहा है।

"आपको सांत्वना देने मैं नहीं आया। आपको एक विशिष्ट व्यक्ति जानकर आदर करता हूँ।" कृष्णप्पा ने उठकर एक कदम आगे बढ़ाया।

"मेरे पिता कहलाने वाले व्यक्ति का नाम देशपांडे था। उन्होंने भी मेरी माँ को रख लिया था। बैंक में चोरी करके जेल गये। पति के बिना मेरी माँ जी नहीं सकती। इसलिए..।"

अब गौरी को घूरते हुए कृष्णप्पा ने कहा, "आप मेरी परीक्षा ले रही हैं न? ऐसा करना चीप है?"

दिल का गुबार निकल जाने पर गौरी हँस पड़ी। हँसते समय वह शरारती लड़की की तरह दिखायी पड़ी तो कृष्णप्पा को कसमसाहट हुई। कृष्णप्पा की इच्छा उस लड़की की भीतरी परतों पर से यह उघाड़ने की थी कि या तो तुम अपने इर्द-गिर्द के रोजमर्रा के घटियापन को जी लो, या फिर घटियापन का शिकार हो जाओगी। जीवन का यही नियम है। किन्तु उसके स्वभाव के शरारतीपन को देखकर उसे निराशा हुई।

कृष्णप्पा के चेहरे ने 'मैं तेरे लिए अगम्य हूँ' के भावों को प्रदर्शित किया तो उसने कहा, "आप बड़े मग़रूर हैं।"

यह सुनकर कृष्णप्पा ने मुँह फेर लिया। उसके आने से पहले माथे पर सिन्दूर के बदले भस्म लगाये वह गा रही थी। अब कमर पर हाथ

ञकर नर्तकी की भाँति त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी है। शायद वह उसे जीतने ो चेष्टा कर रही है, या शायद वह कोई गम्भीर प्रश्न तो नहीं पूछ रही ? यदि उसने शरारत से पूछा होगा तो अपना जवाब मग़रूरपन का ही ोगा।

कृष्णप्पा को कहीं और घूरते देखकर उसने कहा, "मज़ाक में नहीं कहा मैंने। मेरी माँ बड़ी अच्छी है। नंजप्पाजी भी भले हैं। किन्तु मैं सभी की पहुँच के परे रह जाती हूँ। मुझे रोये काफ़ी दिन हो गये। इसलिए मुझे लगता है कि मैं भी आपकी भाँति मग़रूर हूँ।"

कृष्णप्पा का चेहरा सख़्त हो गया और आँखें छोटी हो गयीं।

"मेरी माँ से मिलोगे? ऊपर हैं। बुलाती हूँ।" गौरी ने मेजबानी के लहजे में पूछा।

अचकन की जेबों में हाथ डाले भावशून्य नज़रों से गौरी को देखते हुए कहा, "नहीं। क्या बात करेंगे, मेरी समझ में नहीं आ रहा। दुविधा रहेगी।" इतना कहकर कृष्णप्पा चला आया।



फिर कमरे में पहुँचकर एक चिट्ठी लिख डाली :

प्रिय गौरी देशपांडे,

मैंने तब जवाब नहीं दिया था, क्योंकि आपने मुझ पर असर डाल के लिए वे बातें कही थीं। अकेले में जो बातें हम अपने-आप से नहीं व पाते, उन्हें दूसरों से क्यों कहें? जो बातें इस भावना से कही जाती हैं सामने खड़ा कोई सुन रहा है, उनमें खोखलापन होता है। इसीलि शिष्टाचार का विरोधी हूँ। पैसा कमाने वालों को, लोकप्रियता च वालों को शिष्टाचार की आवश्यकता होती है। गहरे रिश्तों में शिष्टा

बाधक बन जाता है। मैंने आपके घर में आकर जो कुछ कहा, उसक उद्देश्य एक-दूसरे को परस्पर पहचानना था। सहानुभूति चाहने वाल आपकी कमजोरी का अंश शायद मेरे व्यवहार में भी रहा होगा।

मैं मगरूर नहीं हूँ। आप भी नहीं। हो सकता है कि जो लोग क्षुद्र के शिकार होते हैं, ऐसे दिखायी पड़ते हों। किसी पेड़, किसी पक्षी, कि जानवर, किसी भिखारी—चाहे किसी को भी देखूँ, यही लगता है f मैं सभी से प्यारा हूँ। हां, ऐसा जरूर नहीं लगता कि उनसे बड़ा हूँ। जि तरह दूसरे लोगों द्वारा आक्रमण करने पर ही सांप अपने जहर को उपयो में लाता है, उसी भांति मैं अपना घमंड दिखाता हूँ। यदि मेरे जन्म वातावरण में क्षुद्रता को जीतने के लिए यह बात अनिवार्य बन गयी हो। उसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं। आपकी भूमिका देखने पर यह बात आप बारे में भी सच लगती है। यह बाहरी क्षुद्रता केवल बाहर ही नहीं— हमारे भीतर रहने वाली भी है। हमारी उत्कटता का गला घोंटने के लि भीतर और बाहर रचे जाने वाले षड्यन्त्र के कारण सदा चौकन्ना रह शायद सज्जनों को घमंड जैसा लगता हो। किन्तु यह अनिवार्य है। मोह वश में न पड़ने वाली हमारी निष्ठुरता अपने गिर्द के जन्म-मरण के लि खुली रहने वाली सावधानी है। यही उचित भी है। यह मत भूलिये f चेतन और अचेतन दोनों जुड़वां हैं।

—कृष्णप्

डाक के डिब्बे में चिट्ठी डाल देने के बाद कृष्णप्पा कुम्हारों की बस में गया। सँकरी गली से गुजरकर एक पनसारी की दुकान के ऊपर वा कमरे की ओर देखा। कमरे में रोशनी थी। एक गंदे गलियारे से होत जीर्णावस्था को प्राप्त जीने की सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचा। रास्ते पेशाब की बू दम घोंट देने वाली थी। जीने का दरवाजा खटखटाया।

कांछेदार धोती और अचकन पहने अण्णाजी ने 'कौन' कहकर पूछ कृष्णप्पा को पहचान कर किवाड़ खोला। अण्णाजी के कमरे में अगरबत्त जल रही थी। खुशबू प्यारी लगी। अण्णाजी ने उसे अंग्रेजी में 'आअ बैठो' कहा। जमीन पर बिछे जिम्नर के एक छोर की तरफ इशारा कर अण्णाजी खुद दूसरे छोर पर बैठ गया।

मँझली उम्र का अण्णाजी आकर्षक व्यक्ति था। आँखों में भर जाने लायक़ नोकदार गाल, झाड़ीदार घनी भौंहें, छरहरा ऊँचा क़द। लंबे बाल बढ़ाकर पीछे की ओर कंघी की थी। एक महीने से बढ़े हुए उसके चेहरे के बालों से पता चलता था कि वह दाढ़ी बढ़ा रहा था। चारमीनार सिगरेट जलाकर अण्णाजी ने कृष्णप्पा द्वारा बातें शुरू किये जाने का इन्तज़ार किया।

अण्णाजी द्वारा अध-पढ़ी ट्राट्स्की की एक पुस्तक कृष्णप्पा ने बिस्तर पर देखी। खपरैल के ढलावदार छत वाले कमरे में एक बिस्तर, एक ट्रंक, कुछ किताबों के अलावा और कुछ नहीं था।

कृष्णप्पा ने जेब से दो सौ रुपये निकालकर दिये। उसके स्वभाव से भली भाँति परिचित अण्णाजी ने 'थैंक्स' कहे बिना नोट अपनी जेब के हवाले किये और खुशी जाहिर किये बिना अँग्रेजी में कहा, "मुझे यह कमरा भी बदलना पड़ रहा है।"

अण्णाजी ने उठकर गली की ओर खुलने वाली खिड़की का मैला परदा हटाकर बताया, "खुफ़िया पुलिस। इस कमरे में आने-जाने वालों पर निगाह रख रहा है कल से सूअर!"

"मेरे होस्टल के कमरे में आकर रह लो।"

कृष्णप्पा की बात पर अण्णाजी ने सिर हिलाया कि वह स्थान भी सुरक्षित नहीं। कृष्णप्पा उसे 'अण्णाजी' कहकर संबोधन नहीं करता, क्योंकि कृष्णप्पा ने उसका असली नाम कभी पूछा नहीं था। पुलिस की नजर बचाकर भटकते हुए अण्णाजी हर गाँव में अलग-अलग नाम रख लिया करते थे। गोवा की जेल से भागकर आया हुआ अण्णाजी महा-राष्ट्र का था। गोवा से तेलंगाना जाकर वहाँ के एक गाँव में जब किसानों का संगठन कर रहा था तो उसके अनुयायियों ने एक जमींदार का खून करने की कोशिश की थी। टाँग टूटने से जमींदार बच गया। कुछ किसान अण्णाजी की योजना से आगे बढ़ चुके थे। जो किसान फँस गये थे, उन पर क़त्ल के प्रयत्न का मुक़दमा चल रहा था। एक अभियुक्त किसान को अप्रूवर बनाकर पुलिस ने अण्णा जी के बारे में जानकारी हासिल की थी। अण्णाजी अपनी जान बचाकर गाँव-गाँव भटकते हुए अब इस गाँव में

आया था। दो-चार घरों में अंग्रेज़ी पढ़ाने का ट्यूशन रख लिया था। आंध्र प्रदेश की पुलिस आर० एल० नायक के नाम से उसकी खोज कर रही थी। गोवा के पोर्चगीज़ पी० टी० देशपांडे के नाम से इसे फाँसी पर चढ़ाने की ताक में थे। अण्णाजी जितना बताता था, कृष्णप्पा उसमें अधिक पूछा नहीं करता था। खुद भी अपने जीवन के उद्देश्य की तलाश करते रहने वाले कृष्णप्पा को हज़ारों क्रान्तिकारी पुस्तकें पढ़ा हुआ अण्णाजी प्राय महेश्वरय्या की भाँति गुरू जैसा ही लगा था।

अण्णाजी जिन गाँवों को छोड़ आया था, उन सभी में उसकी एक-एक प्रेयसी थी। हर माह उन्हें कुछ-न-कुछ पैसे भेजने पड़ते थे। इसलिए सिर के नासूर की तरह था उसका कर्ज़ा। कृष्णप्पा ही मनीआर्डर किया करता। कोल्हापुर के दर्जी की एक बेटी को उसकी बी० टी० की पढ़ाई के लिए हर माह पच्चीस रुपये, गोवा की एक क्लर्क को, जो उसके एक बच्चे की माँ थी, पच्चीस; बचपन में ही शादी के बाद एक बच्चे को जन्म देकर नागपुर में नैहर जाकर बसी हुई ख़ास बीबी के लिए पच्चीस। कम-से-कम पन्द्रह-बीस वर्षों से इस बाबत अण्णाजी को उधार दिये हुए उन गरीब अनुयायियों का कर्ज़ा चुकाने के लिए कभी-कभी थोड़ा-बहुत भेजना पड़ता था। इस प्रकार अण्णाजी सर से पाँव तक कर्ज़े में डूबा था। सिर्फ़ चाय और सिगरेट पर जीने वाले, टाट की बोरी पर सो कर रात काटने वाले अण्णाजी को अन्य बुरी आदतें नहीं थीं।

अण्णाजी को हर रोज़ पैसों के लिए तरसते हुए, अगले सप्ताह अदा करने के झूठे वादे करते हुए, लोगों को धोखा देने के लिए अपनी सारी चालाकी का इस्तेमाल करते हुए देखकर कृष्णप्पा को घिन आती थी। नाम के व्यामोह से भी मुक्त व्यक्ति था अण्णाजी। परिचय होने के बाद कृष्णप्पा को अण्णाजी के लिए किसी और से जब पैसे हाथउधार लेने पड़ते थे, उस समय अण्णाजी झूठी दलीलें दिया करता था। एक बार कृष्णप्पा ने तनुककर कहा था, "तुम्हारे प्रति मुझे गौरव है। मुझसे झूठ मत बोलो।" पल-भर के लिए भौंचक्क होकर जब अण्णाजी अपनी आप-बीती सुनाने लगा था तो कृष्णप्पा बोला था, "बस करो। मैं हर माह तुम्हें कुछ रकम जोड़ कर दूंगा।" साथ-ही-साथ अंग्रेज़ी के ट्यूशन से भी

जी को लगभग डेढ़ सौ रुपये मिल जाते थे।

"किसी तत्व के लिए आपा खोए हुए तुम क्यों इन घटिया फंदों में ाये हो ?" जवाब की अपेक्षा के बिना कृष्णप्पा अपने-आप से बोला। अण्णाजी ने चारमीनार सुलगाकर कहा, "तुम्हें घमंड है कि तुम -आप में परिपूर्ण हो। मूलतः तुम फ़ासिस्ट मनोवृत्ति के हो।"

मुस्लिम होटल में चाय पीते हुए दोनों बतियाते रहते। रेडियो के रगुल के कारण ऊँची आवाज़ में बातें करनी पड़तीं। कृष्णप्पा को यह न्द न रहने पर भी बोला, "क्रान्ति के लिए जीने वाले आदमी को ामोही नहीं बनना चाहिए। पैसों के फेर में पड़कर बुर्जुआ नहीं बनना ाहिए।" ये नये शब्द कृष्णप्पा ने अण्णाजी से ही सीखे थे।

"तुम्हारा कहना सच है। मैं चुप भी रहूँ तो औरतें लग लेती हैं।" अण्णाजी इस लहजे में उठ खड़ा हुआ कि यह बात खुद उसके लिए भी एक पहेली-सी है। चाल-ढाल में अण्णाजी चुस्त थे। कृष्णप्पा कुछ सुस्त।

ये दिन कृष्णप्पा के जीवन के बहुत महत्वपूर्ण दिन कहे जा सकते हैं। पार्क में मूंगफली छीलकर खाते हुए कृष्णप्पा और अण्णाजी गम्भीर चर्चा किया करते। अण्णाजी ने अपनी चर्चा मार्क्स की एक बात से शुरू की, "आज तक तत्वज्ञानियों ने दुनिया के बारे में बहसें की हैं, किन्तु हमारा काम इस दुनिया को ही बदलना है।" इस प्रकार की बहुत सारी बातों ने कृष्णप्पा को गहरी सोच में डाला था। जब अण्णाजी ने छेड़ा कि हमारी प्रज्ञा स्वतंत्र वस्तु नहीं, अपितु उत्पादन के लिए कार्यरत अनेक सम्बन्धों में से वह उत्पन्न है तो कृष्णप्पा—जो जड़-जगत से, रोजमर्रा की ज़िन्दगी से कभी मात न खाने वाला जिद्दी था—इस दलील को माना नहीं था। लक़्वे से तड़पते समय भी उसके मन में यह शंका जैसी की तैसी ही थी।

उसने समर्थन किया था, "मनुष्य अपने माहौल को लाँघ सकता है, इस बात पर बहस नहीं करूँगा। यह मेरे अनुभव की बात है। ख़ैर, छोड़ो इस बात को। मजदूरों-किसानों का संगठन करके उन्हें तुम किस पुरुषार्थ के लिए संघर्षरत रहते हो ? उनकी मज़दूरी में तनिक वृद्धि होने से घर में रेडियो, स्टेनलेस के बर्तन-भांडे आदि ख़रीदने लायक़ वे बन जाते हैं त

क्या उनके जीवन में, इस दुनिया में परिवर्तन आ गया ? रोजमर्रा के जीवन के वे ही काम, वे ही झझट, वे ही मुसीबतें क्या दूर हो जायेंगी ? वे और भी लालची हो जायेंगे। तुम जैसे लोगों के कारण।"

"यह बात नहीं है। तुम व्यक्तिवादी की भाँति बातें कर रहे हो।"

'व्यक्तिवादी' आदि शब्दों द्वारा उसकी शंका का समाधान करने की चेष्टा में लगे अण्णाजी के विवाद से कृष्णप्पा ऊब जाता था। अण्णाजी धीरज के साथ समझाया करता, "समझ लो कि हम जीवन के सुधार के लिए गरीबों को लड़ने के लिए तैयार करते हैं तो यह लड़ाई वहीं नहीं रुक जाती। उनके वर्ग में जीवन-स्तर को ऊँचा करने से लालच और आकांक्षा में मूलभूत अन्तर है। उनकी आकांक्षा गतिमान होती है। जैसे-जैसे उनकी आकांक्षा बढ़ती जायेगी, इस दुनिया का कायापलट होता जायेगा। तुम मानते हो न कि उनकी मेहनत ही इस समाज की स्थिति और गति के लिए पूँजी है ? उनके सारे पुरुषार्थ की जड़ है तो यही मेहनत। किन्तु इस मेहनत का फल पाने वाले हैं पूँजीपति। शोषण ही इस व्यवस्था की आधारशिला है। गरीब लोग शोषण के भी शिकार हो जाते हैं और धीरे-धीरे समझने लगते हैं कि अपने हाथ से उगायी गयी फ़सल के साथ उनका कोई नाता ही नहीं। मनुष्य के साथ मनुष्य द्वारा यह सब-कुछ होते रहने की बात जैसे ही वे समझने लगेंगे, वैसे ही वे चाहने लगेंगे कि उनके नित्य-जीवन को शुष्क बना देने वाली व्यवस्था भी बदलनी चाहिए, क्योंकि सुधार से यह सम्भव न हो सकेगा। मुझ जैसे उच्च-वर्ग के चन्द लोगों को यह बात बुद्धिपूर्वक समझ में आयेगी तो किसान-वर्ग में पैदा हुए तुम जैसे सूक्ष्म मन:स्थिति वाले लोगों को अनुभव द्वारा। तुम जैसे लोग ही इसे अन्य लोगों के हृदयों में बो सकेंगे। तब अपने-आप क्रांति होगी। हमारे चाहने मात्र से क्रांति की संभावना की बात व्यक्तिवाद बन जाता है। यह बात उस बुढ़िया की कहानी जैसी ही लगेगी जिसे अपने मुर्गे के बाँग देने से ही दिन निकलने का भ्रम था। क्रांति होना समाज का गति-नियम है। उसमें तीव्रता लाने वाले वेगवर्धक या दाई की तरह हम लोग होते हैं।"

अण्णाजी की आँखें चमक रही थीं। पार्क में मूँगफली और गुड़ ख़रीदने की रट लगाये लड़के को ओर देखते हुए कुछ अनमनाते हुए कृष्णप्पा

पूछता है, "यानी कि ऐसे मासूम लड़के भी तैश में आकर क्रांति कर देंगे ?"

"यक़ीनन ! फ्रांस की जेल की दीवार तोड़े जाने की वात जानते हो न ?"

"किसी एक दिन तैश दिखाकर क्या दुनिया उसी अर्थहीन रोजमर्रा की लीक में नहीं फँस जायेगी ?"

"नहीं। क्रांति के द्वारा हमारा रोजमर्रा का जीवन भी सृजनात्मक वन जायेगा।"

सभी शंकाओं के लिए अपनी दलील को ही प्रामाणिक मानने वाले अण्णाजी के आलोचना-क्रम से कृष्णप्पा को किरकिराहट होती थी।

"पैदा होना, मरना, खाना, जोतना, संभोग करना आदि हर अवसर के लिए हमारे हिन्दू धर्म ने एक-एक त्यौहार वनाया है न। भू-पूर्णिमा का अर्थ जानते हो ?" ऊवकर कृष्णप्पा कहा करता।

अण्णाजी उसका भी गम्भीरता से विश्लेषण करता, "शुष्क वन जाने वाले रोज़मर्रा के जीवन को श्रममूलक और वास्तव में जीतने में फ़र्क है। जब उत्पादन के रिश्ते वदल जायेंगे तो मेहनत सृजनशील हो जाती है। अहंकार में अकड़कर लकड़िया पहलवान की भाँति घूमते रहकर क्षुद्रता से वाहर खड़े रहने की तुम्हारी सूझ एक भ्रम मात्र है। जाकर किसानों के वीच काम करो; लड़ाई के लिए उनका संगठन करो। अपने-आप को एक दाई समझो। जिस ज़मीन को वे जोतते हैं, उस ज़मीन के मालिक वनना ही सच्ची भू-पूर्णिमा है।"

कृष्णप्पा को अपने अनुभव का सत्य कुछ और ही वताता था। पर अण्णाजी की दलील भी सही जानकर वह भौंचक्का हो जाता था।

"तव क्या रूस में सारी मेहनत सृजनशील हो गयी है ?" अण्णाजी को ताना देते हुए कृष्णप्पा पूछता।

"सुनो कृष्णप्पा ! यह सच है कि जो कुछ होना चाहिए था, वह रूस में भी नहीं हुआ। क्रांति के लिए जिस पक्ष ने लोगों को तैयार किया था, वही वहाँ का मालिक वन गया है। क्रांति एक दिन का काम नहीं। ग़लती को हमेशा सुधारते रहना पड़ता है। अव चीन का ही उदाहरण लो...।"

मूंगफली वाले को 'गेट अवे' कहकर अण्णाजी ने सिगरेट सुलगायी।

मुंह में सिगरेट अटका कर तथा अचकन की ढीली आस्तीनों को ऊपर चढ़ाकर जेब से पेंसिल-कागज़ निकाले। चीन का नक़्शा उतार कर वह जैसे ही लॉगमार्च का ब्यौरा बताने लगा तो कृष्णप्पा ने चिढ़ी हुई आवाज़ में कहा, "हमारे देश के कम्युनिस्ट लोग गद्दार हैं। बताओ तो सही कि बयालीस के आंदोलन में अंग्रेज़ों का साथ क्यों दिया ? मेरे लिए रूस या चीन का दलाल बनकर काम करना संभव नहीं।"

धीरज खोये बिना अण्णाजी ने कहा, "मानता हूँ कि हमारे देश के कम्युनिस्ट बाँझ हैं। किन्तु दूसरे महायुद्ध में जर्मनी को हराना जरूरी था—इस बात को भी मानता हूँ। फिर भी, मैंने उस समय पार्टी छोड़ कर गांधी के आंदोलन में भाग लिया था। ये सभी कान्ट्रॉडिक्शन्स हैं। सुनो कृष्णप्पा, मेरा उद्देश्य भी यही है। लालचखोरों के प्रति मैंने तुममें सख्त नफरत देखी है। यह नफरत, यह घमंड, दलित जनता की क्रांति के लिए आवश्यक ड्राइविंग फ़ोर्स है। मेरी तुलना में तुम ठोस बने रहोगे, इस विश्वास के कारण ही क्रांति के बीज बोने के लिए तुमसे ये सारी बातें कह रहा हूँ। मेरा जीवन अब हज़ारों झंझटों में फँसकर उलझ गया है। खेद है कि मैं इसे तोड़ नहीं सकता। मैं जानता हूँ कि जब देश में जनता क्रांति के लिए तैयार हो जायेगी, तब मैं सारी गुत्थियों से सुलझकर उनके साथ खड़ा रहूँगा। गोवा में जब पुलिस ने धमकी दी कि अगर एक क़दम भी आगे बढ़ाया तो शूट कर दिये जाओगे, तब मेरे पीछे के सत्याग्रही ठिठक गये थे। तब मैंने अपनी कायरता से बाहर आकर आगे कदम बढ़ाया और गोली चलने की आवाज़ का इन्तज़ार किया। तभी मेरे पीछे के ठिठके लोग सहसा आगे बढ़ निकले। पुलिस भी शूट न कर सकी और शांत रही। अपने वर्ग की मनोबल-वृद्धि को यदि मैं ऐसे सन्दर्भों में लाँघ सकता हूँ तो तुम हर पल उसे लाँघते जा सकते हो। मुझे विश्वास है कि किसान होने के कारण तुम अपने साथ हज़ारों लोगों को आगे ले जा सकोगे। ले जा सकोगे नहीं, बल्कि ले जाना पड़ेगा। यह वैज्ञानिक सत्य है। व्यक्तिवादी बन जाओगे तो तुम्हारा स्वभाव फ़ासिस्ट बनता जायेगा। इसलिए तुम्हें 'मास मैन' बनना होगा। वर्ग-संघर्ष की अगुआई में तुम जैसे लोगों का रहना जरूरी है। कम्युं को भूल जाओ। हमें इस देश में इस मिट्टी का सत्व लेकर खुद इनि

तथा इसके वैभव से अवगत एक नये क्रांतिकारी पक्ष का निर्माण करना होगा...।"

अण्णाजी जोश से बातें करने में तल्लीन था। उसके असर में आ जाने पर भी कृष्णप्पा अपनी गहरी शंका कहे बिना रह नहीं सका, "लोगों के खाने, पीने, सोने, मरने के काम तनिक सहजता से हो जायें, उसके लिए नाहक यह सारा झंझट किसलिए ?"

अण्णाजी को गुस्सा आया, "बकवास बन्द करो ! मग़रूरपन की बातें मत करो। ख़ुद को ज़िंदगी से भी महान समझने वाले तुम कौन होते हो ? घटिया रोज़मर्रा-रोज़मर्रा की रट लगाये हुए हो। उसके अलावा भी कुछ है ? इस रोज़मर्रा की ज़िंदगी में रोशनी लाने से बड़ा दूसरा क्या काम है ? समाधि लगा कर या भक्ति की परवशता में सबसे ऊपर उठने के भ्रम में पड़े रहने वाले ईडियटों की भांति बातें मत करो।"

कृष्णप्पा को इस तरह आज तक किसी ने फटकारा नहीं था। अण्णाजी को सीमा से बाहर जाते देखकर कृष्णप्पा ने अपनी बात के बेतुकेपन की ओर ध्यान दिये बिना अदब से कहा, "सुनो, दो व्यक्ति मुझे बहुत अंतरंग लगते हैं—बुद्ध और यीशु। यीशु ने अपनी माँ से पूछा था—'अरी ओ औरत, तुम कौन हो ?' यह मेरा मनचाहा पहलू है। मुझे लगता है कि अल्लम, नानक, कबीर जैसे नीम-पागलों ने भी किसी एक महान सत्य को अपनी बानी में सदाबहार की तरह छिपा कर रखा है। इसलिए लोगों का रोज़ी-रोटी की दुनियादारी में डूबे रहना...।"

कृष्णप्पा ने अपनी बात बीच में ही रोक ली कि कहीं पूरी बात कह देने से उसके मन की वास्तविक उलझन सुगम न दिखायी देने लगे !

अण्णाजी चुप रहा। कृष्णप्पा भी चुपचाप बैठा रहा। पार्क की हवा बड़ी सुखद थी। नये शादीशुदा दम्पति, नन्हें बच्चों को सहलाती औरतें, उनके पेटू पतिगण, अपने जवान बच्चों के साथ लड़ते रहने वाले अवकाश-प्राप्त बूढ़े—अण्णाजी का कहना है कि ऐसा जीवन और भी उज्ज्वल होगा। लेकिन कैसे ? इस प्रश्न पर विचार करते हुए कृष्णप्पा बैठ गया। अण्णाजी ने नरमी से कहा, "तुमने अभी जिनका ज़िक्र किया है, उनमें से कोई भी समाज को छोड़ नहीं रहा, कृष्णप्पा ! उनमें और हममें फ़र्क केवल

इतना ही है कि उन्होंने भ्रम में जीतने की चेष्टा की और हम कारखानों में, खेतों में वास्तविक रूप से जीतने का प्रयत्न करते हैं। यदि तुम इसी तरह ईमानदार बने रहे तो तुम्हें भी मेरी ही भाँति सोचना पड़ेगा—आज न सही, तो कल।"



अण्णाजी ने कृष्णप्पा को अपना निश्चय सुनाया कि फिलहाल वह चन्नवीरय्या के घर जाकर रहेगा। इन्हें वह अंग्रेजी पढ़ाता रहा है। कृष्णप्पा का अनुमान था कि खुफिया पुलिस का यह आदमी शायद गुप्तचर न हो। अपने गिर्द रहस्य का वातावरण चाहने वाले अण्णाजी का यह भ्रम हो सकता है। इसके बिना अण्णाजी को रोजमर्रा के सारे काम फीके लगने लगते हैं। किन्तु वह वास्तव में भयभीत दिखायी भी पड़ता था।

"मैं बत्ती बुझाकर बाहर चला जाऊँगा। कुछ देर बाद मेरा बिस्तर और किताबें चन्नवीरय्या के घर पहुँचा देना। उस सुअर को पता न लगने पाये।" फुसफुसाहट में यह बात कहकर अण्णाजी बाहर निकला। खिड़की से खुफिया पुलिस वाले की हरकतें देखते हुए कृष्णप्पा खड़ा रहा। शक हुआ कि अण्णाजी को बत्ती बुझाकर जाते हुए उसने देख लिया होगा। वह भी वहाँ से हट गया। अण्णाजी का पीछा करते हुए वह गया होगा। पहले ही इसका अन्दाजा लगाकर अण्णाजी ने कृष्णप्पा को अपना गोरिल्ला उपाय बताया था कि वह सीधा चन्नवीरय्या के घर न जाकर पहले काका होटल में कुछ खा-पी लेगा; ट्यूशन वाले दो-चार घरों में जाकर सूचना देगा कि लगभग एक माह तक पढ़ाने नहीं आ सकेगा, तब कहीं वह घुमाव-फिरावदार रास्ते से चन्नवीरय्या के घर जायेगा।

कुछ देर बाद खुफिया पुलिस वाला और भी पास दिखायी पड़ा। गजा

सिर, गठीली गरदन, कोट और धोती पहने सिगरेट ख़रीदते हुए वह कमरे के सामने वाली गली के बग़ल में ही खड़ा था। उसका हुलिया याद रखने के इरादे से कृष्णप्पा ने उसे बारीकी से देखा। उसकी धोती बिलकुल सफ़ेद थी। सुपारी के बग़ीचे वाले महाजन की तरह दिखायी पड़ता था। देहात से शायद सुपारी बेचने आया होगा। इस गली के आसपास वेश्याओं के रहने की बात प्रसिद्ध है, अतः उनमें किसी एक के घर जाने के लिए ठीक समय की प्रतीक्षा में वह शायद रहा हो। कृष्णप्पा को चिढ़ लगी कि उसे ऐसे घटिया ख़ुफ़िया काम के लिए तैनात होना पड़ा। अब तक के सभी आंदोलनों में कृष्णप्पा गांधीवादी बना रहा था। उसे अण्णाजी की पोशीदा राजनीति में कुछ दोष-सा महसूस होने लगा। वह जिस पार्टी में हो, उसी की तोड़-फोड़ करते हुए, कृत्रिमता को टैक्टिक्स का नाम देकर तथा अण्णाजी द्वारा किये जाने वाले षड्यन्त्रों में ही पकती रहने वाली राजनैतिक क्रांति कृष्णप्पा के स्वभाव से मेल नहीं खाती थी। किंतु कृष्णप्पा को अण्णाजी दार्शनिक भी लगता था। उससे वह दुराव-छिपाव नहीं करता था।

कृष्णप्पा ने कोट और धोती वाले आदमी को अपनी जेब से टोपी निकालकर पहनते और फिर तांगे में चढ़कर जाते हुए देखा। उसके ओझल होते ही वह अण्णाजी की सर्वस्व बनी हुई अटैची में सारा सामान भरकर तांगे में घुमावदार रास्ते से चन्नवीरय्या के घर पहुँचा।



चन्नवीरय्या लगभग तीस वर्ष की अवस्था का एक धनी व्यक्ति था। उसका पेशा था ठेकेदारी। शहर के नगर निगम का मेम्बर। प्रेसिडेंट बनने की तैयारी में था। शहर के रोटरी क्लब का भी सदस्य था और रोटरी-गवर्नर बन कर अमरीका जाने के सपने देख रहा था। आज़ादी के

बाद कांग्रेस में शामिल हो गया था। सिल्क का क्लोज कॉलर का कोट और पैंट पहनकर कार में घूमते हुए कभी-कभार समाचारपत्रों में खबर बनने लायक प्रतिष्ठित व्यक्ति वह बन गया था।

अच्छी अँग्रेजी न आना, उसकी चाह की पूर्ति में एक बाधा थी। इसी कमी के कारण उसका रोटरी-प्रेसिडेंट बनना भी सम्भव नहीं हो सका था। अपने कॉलेज-जीवन में गुंडागिरी में ही समय बिता देने के लिए अब वह पछताता है। यहाँ चाहे कितनी भी धाक हो, शहर के बाहर कोई पूछने वाला नहीं था।

अण्णाजी ने इस आदमी का आत्मीय बनने का इरादा इसलिए किया था, क्योंकि क्लब में पुलिस के सभी अधिकारियों के साथ वह घुलमिल कर रहता था। इस इरादे के कारण जिले में आने के पहले ही सप्ताह में अण्णाजी ने उससे मिलकर अंग्रेजी में बातें की थी। अपना परिचय दिया था कि वह 'स्टेट्समैन' के सम्पादक-मण्डल में काम कर चुका है और अब काम छोड़कर कोई पुस्तक लिख रहा है। उसने अपना नाम अण्णाजी एस० कर्वे बताया था। फिर पूछा था कि शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा कांग्रेसी नेता चन्नवीरय्या इस जिले के स्वातंत्र्य-योद्धाओं की जीवनी की सामग्री उसकी पुस्तक के लिए जुटाकर दे सकेंगे ?

मगमरमर-बिछे दालान में कोने की कुर्सी पर बड़े आला-जहीन की भाँति बैठकर तथा सिर हिलाते हुए चन्नवीरय्या अण्णाजी की बातें सुनता रहा। रेडियो पर सुनायी पड़ने वाली अँग्रेजी की भाँति अण्णाजी की अबाध गति से बहने वाली अँग्रेजी सुनकर वह पसीने से तर-ब-तर हो गया, फिर भी बीच-बीच में अक़लमन्दी के साथ 'आइ सी', 'आल राइट' कहते हुए उस भेंट के अन्त की प्रतीक्षा करता रहा। चाय लाने के बहाने भीतर जाकर कॉनवेंट में पढ़ी, मजिस्ट्रेट की बेटी और अब अपनी पत्नी से बड़े रौब के साथ मुसकराते हुए पूछा, "वह क्या कह रहा है ? एक्सप्रेस रेलगाड़ी की रफ़्तार में बोल रहा है—कुछ समझ में ही नहीं आया।" रोटरी क्लब में प्रगति करने के लिए अनेक आवश्यकताओं में से अँग्रेजी बोलने वाली पत्नी को एक आवश्यक अंग मानकर ऐश्वर्य के बल पर उसने उमा को भी पाया था। बुनाई में व्यस्त उमा ने भीतर से ही अण्णाजी की

ुनी थीं। डाइनिंग टेबिल पर चाय और बिस्कुट सजाते हुए पति को
ी बातों का तात्पर्य समझाकर भीतर लिवा लाने के लिए कहा।
वीरय्या के 'कम इन' कहने पर अण्णाजी ने भीतर जाकर उमा के
ने अदब के साथ झुककर अपनी टूटी-फूटी कन्नड़ में बताया कि जब वह
ल्हापुर में था, तब कन्नड़ जानता था। इस शहर में अपने अवकाश के
मय चन्द लड़कों को अँग्रेज़ी पढ़ाया करता है। आज़ादी मिलने पर भी
पने लोगों को अँग्रेज़ी का मोह छूटा नहीं। सुना है कि आप कन्नड़ के
ॉरिटर हैं। चन्नवीरय्या की प्रशंसा करते हुए चाय की चुस्की लेकर उसने
उमा का अभिवादन किया।

इस प्रकार अचानक एक बुद्धिजीवी का स्नेह प्राप्त होने के कारण चन्नवीरय्या खुश हुआ। सोचा कि इस प्रकार फटाफट अँग्रेज़ी बोलने वाले व्यक्ति का परिचय अपने रोटरी-मित्रों से कराकर उनका घमंड उतारना चाहिए। ख़ुद भी उससे छिपकर अँग्रेज़ी सीखने का निश्चय किया।

अण्णाजी की योजना उसके अंदाज़ से भी अधिक सफल हुई थी। हर सवेरे कार भेजकर चन्नवीरय्या अण्णाजी को बुलवा लेता। प्रभाती सुनते व लान में टहलता हुआ चन्नवीरय्या गेट से ही सीखे हुए अँग्रेज़ी सम्भाषण से अण्णाजी का स्वागत करके भीतर लिवा ले जाता। ब्रेकफ़ास्ट के साथ यह अँग्रेज़ी वार्तालाप आगे बढ़ता: यह अच्छा है, धन्यवाद, चीनी चाहिए? कितने चम्मच? आज की हवा अच्छी है? आदि बातें कहते-सुनते, कॉलेज में चन्नवीरय्या की सीखी हुई ग़लत अँग्रेज़ी का अण्णाजी द्वारा संशोधन होते हुए ब्रेकफ़ास्ट ख़त्म होता। उससे भी अधिक अँग्रेज़ी पहले से ही जानने वाली उमा अण्णाजी के सुशिक्षित चाल-चलन से ख़ुश होकर परोसती रहती। उसके जैसा कोई सुशिक्षित व्यक्ति उसके घर आता नहीं था। आने वाले सभी लोग काले बाज़ार का धन्धा करने वाले, जुएबाज़, कर्कश बातें करते हुए भीतर उसके रहने की भी परवाह न करके नाश्ता, चाय डकारक
अपने जूतों में लगी मिट्टी-गोबर आदि दरी से पोतकर जाने वाले। अप
घर के ऐश्वर्य के प्रति अण्णाजी में सूक्ष्म तिरस्कार को उसने पहचाना था
उसे गुमान हुआ कि वह अँग्रेज़ी-ट्यूशन आदि किसी रहस्यमय उद्देश्य
लिए कर रहा है और वह एक रहस्यपूर्ण व्यक्ति है। पँखुड़ी जैसी ना

होंठ, कुछ साँवला-सा चेहरा, छोटी-छोटी चचल आँखें, चीते जैसी गठन वाली उमा को अण्णाजी बड़े सूक्ष्म ढंग से खुश करता। उसकी उपस्थिति से अवगत रहने की बात वह उमा को बिना बोले ही सुझाता रहता। धनी लोगों के प्रति उसका तिरस्कार तथा जब वह मौन रहता उस समय के उसके चेहरे की अदमनीय भावना को पहचानकर व अपने प्रति उसमें सम्मान की भावना देखकर वह कृतज्ञ हुई थी।

उसकी रुचि को ताड़कर वह भड़कीली रेशान साड़ियों के बजाय पीठी (स्टार्च) डालकर इस्त्री की हुई सूती साड़ियाँ ही पहनती। जब वह चलने लगता और कोई ख़ास खाद्य-पदार्थ बना होता तो उससे टिफ़िन-बाक्स भर-कर पति से उसे देने के लिए कहती। वह पति के बहाने उसी के लिए गोर्की, चेखव की पुस्तकें ला देता था। उन्हें पढ़कर वह प्रसन्नता व्यक्त करती। जब चन्नवीरय्या हँसते हुए अंग्रेज़ी में कहता, "पढने के लिए मुझे फ़ुरसत ही नहीं। हर रोज़ वही पढ़कर सुनाती है," तो अण्णाजी निर्भाव से उसे दुरुस्त करता, "शी विल रीड इट एवरी डे" नहीं, "शी रीड्स इट एवरी डे टु मी।"

"येस, येस, शी रीड्स इट एवरी डे टु मी। मेरे फ्रेंड्स सभी डबल ग्रेजुएट्स हैं, फिर भी वे ग़लती करते हैं। इसलिए मुझे भी वही आदत पड़ गयी है।" चन्नवीरय्या हँसते हुए सिगरेट जलाकर एक अण्णाजी की ओर भी बढ़ाता है।

"यू मस्ट फ़र्स्ट ऑफ़र इट टु मी।" कहकर अण्णाजी हँसता है। चन्नवीरय्या 'एक्सक्यूज़ मी' कहता है। इसे उमा ग़ौर करती है। अण्णाजी जब अपने को ग़ौर करते हुए देख लेता है तो सहसा उमा घबरा जाती है।

अपने कमरे के खतरे से घबराकर ब्रेकफ़ास्ट के समय अण्णाजी ने चन्नवीरय्या से अंग्रेज़ी में कहा था, "मेरा कमरा पिग्स्टाय की तरह है। बाहर कैट्स एंड डाग्स बनकर होने वाली बरसात भीतर ड्रिप होने लगती है। कभी-कभी खुजली करने वाले कीड़े मूविंग रियाम्स की तरह दीवार पर रेंगने लगते हैं।"

अंग्रेज़ी मुहावरों का क्या यह कोई नया सबक है, या अण्णाजी कुछ कह रहा है अथवा दोनों एक साथ चल रहे हैं—चन्नवीरय्या सहसा कुछ समझ

न पाया। झड़ी लगे शब्द-समूह से चौंककर उन्हें याद रखने की चेष्टा करते हुए चन्नवीरय्या सुनता रहा। पति को हौरा-वौरा सुनते देखकर उमा को हँसी आयी।

"मुझे एक कमरा चाहिए। आप म्युनिसिपैलिटी के सदस्य हैं। कहीं-न-कहीं सिफ़ारिश करके दिलवा सकेंगे?"

चन्नवीरय्या अभी संभला नहीं था। उसे अँग्रेज़ी से चोट हुई थी। 'म्युनिसिपैलिटी के सदस्य' होने की प्रतिष्ठा को याद दिलाने वाली बात को सुनकर चोट का असर कुछ कम हुआ और चन्नवीरय्या के चेहरे पर राहत का भाव दिखायी पड़ा। उसकी मुसकराहट के बेतुकेपन का रस लेते हुए अण्णाजी चुपचाप बैठा रहा। उमा ने कन्नड़ में कहा, "आप गंदे कमरे में क्यों रहें? गैराज के ऊपर हमारा गेस्ट-रूम है। अलग कमरा मिलने तक यहीं आकर रह जाइये।"

संभलते हुए चन्नवीरय्या बोला, "येस, येस।" 'गैराज' के बदले बार-बार 'गैरेज' कहकर अण्णाजी उसे दुरुस्त करते रहे थे। जब चन्नवीरय्या ने देखा कि उसकी पत्नी उमा जल्दी ही उच्चारण पकड़ लेती है तो इस बात का उसे गुस्सा, मात्सर्य तथा उस स्त्री के अपनी मिल्कियत होने का अभिमान एक साथ हुआ।

कृष्णप्पा द्वारा लाये गये ट्रंक-अटैची को उमा ने नौकर के हाथ गेस्ट-रूम में भिजवा दिया। अण्णाजी की खुशक़िस्मती को कृष्णप्पा ने आश्चर्य से देखा। यहाँ अण्णाजी के विवल्ट की जरूरत नहीं थी। उमा ने उसे अलमारी में रखा। बुक-केस में खुद कितावें जमा दीं। सागवान की लकड़ी के बने पलँग पर डनलप का गद्दा बिछा था। उस पर सफ़ेद शीट के ऊपर पक्षियों के चित्रों वाला दूसरा कपड़ा बिछा था। टेबिल पर ठंडे पानी का फ़्लास्क था। कमरे से सटकर ही बाथरूम और पाख़ाना थे। फ़र्श पर क़ालीन बिछा था। नारंगी रंग के परदे खिड़कियों पर टंगे थे। इस कमरे में अण्णाजी का पिचका हुआ बेरंगी ट्रंक साइड-टेबिल पर भद्दा-सा दिखायी दे रहा था। उसे देखकर उमा मुसकरायी। जब उसे खुद उठाने लगी तो भारी महसूस हुआ। नौकर से कहकर उसे अलमारी में रखवा दिया।

"खाना खाकर अण्णाजी आयेंगे।" कृष्णप्पा ने बताया।

इस बात पर उमा का चेहरा उतरा हुआ-सा दिखायी पड़ा। कृष्णप्पा ने 'अच्छा तो चलता हूँ' कहा तो उमा ने उसे रोक लिया। नौकर के हाथ से बोर्नविटा मँगवाकर दिया और कहा, "वे क्लब गये हैं। आने में देर लगेगी। मिलना चाहे तो बैठिये।" 'नहीं' कह कर उसे संकेत से ही प्रणाम कर कृष्णप्पा चल पड़ा। सीढ़ियाँ उतरते समय उसे याद आया कि जिस बात के लिए अण्णाजी से मिलने आया था, वह तो भूल ही गया। उसने कॉलेज छोड़ने का फ़ैसला किया था, यह उसे दूसरे दिन बताने की सोचकर हॉस्टल चला आया। 'खाना नहीं चाहिए' कहकर सो गया। भोर तक उसकी पलकें नहीं लगीं। इससे पहले ऐसी दहशत उसने कभी महसूस न की थी। बिलकुल समझ में न आने वाली अजीब दहशत सहसा उसे सारी रात सताती रही। भोर होते-होते आज उसे हॉस्टल के सामने खड़ी लारियों के स्टार्ट होने के शोरगुल से हमेशा की भाँति किरकिरी नहीं हुई, बल्कि उस परिचित आवाज़ से तसल्ली ही हुई।



सो न पाने के कारण कृष्णप्पा की आँखें लाल हो गयी थीं। हॉस्टल में उसके लिए मुफ़्त का खाना और आवास होने पर भी सवेरे उसके कमरे पर कोई-न-कोई हाईस्कूल का लड़का कॉफ़ी ला कर देता। कृष्णप्पा की सेवा के लिए हॉस्टल में स्पर्धा रहती। उसका मन उलझन में क्यों है? वह इसे समझ न पा रहा था। हाथ-मुँह धोकर कृष्णप्पा अभी उसी दहशत में बैठा था कि किशोरकुमार नामक एक अमीर लड़के ने 'गौड़ाजी, कॉफ़ी' कहा। कृष्णप्पा खिड़की के बाहर देखते बैठा था। कृतज्ञता के भाव से कॉफ़ी लेकर कहा, "तुम पी चुके? बैठो।"

"गौड़ा जी, आपके नाम के साथ पता नहीं किन सुअरों ने कैसी-कैसी

…ातें दीवार पर लिख दी हैं। होस्टल में सभी को बड़ा गुस्सा चढ़ा है।" लड़के ने कहा।

"लिखने दो।" कृष्णप्पा ने कहा। उसे तो सारी रात नींद नहीं आयी। उसे आश्चर्य हुआ कि उन आवारा लड़कों ने कब लिखा होगा?

"न जाने कैसी-कैसी गंदी बातें लिखी हैं! पढ़ने में भी घिन आती है। …ायी मिटा रहे हैं ताकि आप उसे न पढ़ें।"

कृष्णप्पा मुसकराया। कॉफ़ी पीने के बाद प्याला लिये नीचे चल आया। किशोर के माँगने पर भी प्याला नहीं दिया।

ब्रश को चूने में डुबोकर दीवार लीपते होस्टल के अपने साथियों … कृष्णप्पा ने कहा, "रहने दो। छोड़ो यारो, क्यों सिर खपाते हो?"

वालीबॉल की टीम के गुंडों की इस हरकत से होस्टल के लड़के गरम हो उठे थे। कृष्णप्पा भांप गया कि इसे ओक्कलिगा छात्रों की बेइज़्ज़ती मानकर लड़के गरम हो उठे हैं।

"हरामज़ादों का कमूचर निकाल देंगे।" पुरानी मोटर-साइकिल पर घूमते रहने वाले शामण्णा ने कहा। एक बड़े ज़मींदार का बेटा होने पर भी अपनी जाति का बुद्धिजीवी होने के नाते कृष्णप्पा के प्रति शामण्णा के मन में आदर था।

"मैं कॉलेज ही छोड़ना चाहता हूँ।" कृष्णप्पा ने उन्हें सांत्वना देते हु… कहा।

"देखते रहना कि गौरी सिस्टर के तलवे के नीचे इन सुअरों के न… रगड़वाते हैं या नहीं! तुम कॉलेज क्यों छोड़ोगे?" शामण्णा ने कहा। … भी लड़कियों को छेड़ा करता था, किन्तु कृष्णप्पा के प्रति गौरी देशपां… मन में सम्मान का भाव देखकर वह 'सिस्टर' शब्द जोड़कर उसका … लिया करता था। अधिक बातें न करके कृष्णप्पा कमरे में जाकर प… गया। किन्तु उसका मन अनजानी दहशत के कारण विचलित हो… कृष्णप्पा को लगा कि अपने बूते से बाहर अपने सामने कुछ होने की … स्वरूप यह दहशत है। सवेरे का नाश्ता भी नहीं किया। वह अ… मिलने के लिए धीरे से बाहर चला गया।

अपनी दहशत की ठीक वजह न जानने पर भी गौरी देशपां…

मूर्ति रह-रहकर उसके मन में कौंधती रही। उसे महसूस होने लगा कि वह उसके लिए अनिवार्य बनती जा रही है। पार्क से गुजरते समय कृष्णप्पा की गौरी के घर जाकर मिलने की इच्छा हुई। मिलकर क्या कहे? कह दे कि मैं तुमसे प्यार करता हूँ? यह संभव नहीं। इस असंभावना के लिए क्या उसका मगरूरपन ज़िम्मेदार है? वह कुछ समझ नहीं पाया। उसे लगा कि खुद में ही कुछ त्रुटि है। वह घबरा गया कि कहीं विवश होकर उसके घर न चला जाये! दीवार की लिखावट उसे अपनी गम्भीरता और अंतरंग व्यक्तित्व पर बाहरी क्षुद्रता के आक्रमण जैसी लगी। कृष्णप्पा ने सोचा था कि वह उसे नहीं सता रही है। कह जो दिया था कि ऐसी बातों की ओर ध्यान देना भी कमीनापन है। उसे अपनी दहशत और भी निगूढ़ लगी।

अण्णाजी नरम सोफ़े पर पाँव फैलाकर चारमीनार पीते हुए उमा के साथ बातें कर रहा था। उमा उसके सामने एक स्टूल पर बैठी थी। वह हाथ की अँजुली में गोल-मटोल चेहरा टिकाकर अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से अण्णाजी को प्यार-भरी नज़रों से देखते हुए उसकी बातें सुन रही थी। अण्णाजी फ्रेंच क्रांति की कहानी इतनी रमणीयता से सुना रहा था मानो उसे सिनेमा की भाँति आँखों के सामने चित्रित किया जा रहा हो। कृष्णप्पा चुपचाप भीतर आकर दूसरे सोफ़े पर बैठ गया। कमरे के चारों ओर नज़र घुमाकर अण्णाजी की खुली किस्मत देखी। टेबुल पर फूलदान। उमा की आँखें चमक रही थीं। अण्णाजी अपनी एक माह की बढ़ी दाढ़ी सफ़ाचट मुँड़ाकर नहा चुका था। बिलकुल सफ़ेद धोती और अचकन पहनकर बैठा था।

"मिस्टर चन्नवीरय्या ने आज शाम को रोटरी में बोलने के लिए कहा है। तुम भी आओ।" कृष्णप्पा को अण्णाजी ने निमंत्रण दिया। उसके लिए कॉफ़ी लाने उमा ज़ीना उतरकर चली गयी।

कृष्णप्पा को जवाब न देते देखकर अण्णाजी बोला, "मार्क्सवाद के ऐतिहासिक सिद्धान्त के बारे में बोलूँगा।"

"रोटरी में?" कृष्णप्पा ने व्यंग्य से पूछा।

"व्हाय नाट?" अण्णाजी ने भी व्यंग्य से जवाब दिया। "बोलना मुझ जैसों का काम है। मिसाल के तौर पर उमा को देखो। वह ब्यूरोक्रेट के

…से आकर कांप्रडार कैपिटलिस्ट वर्ग में शामिल हुई है। पोटैन्शियली …ोल्यूशनरी है। धनी समाज उस जैसों को अपनी वपौती वनाना …ा है। किन्तु…।"

"अब तुम उसकी वपौती वने हो ?" कृष्णप्पा ने कमरे के वैभव पर …र घुमाते हुए कहा। अण्णाजी ने व्यंग्य से हँसकर कृष्णप्पा की आलोचना ओर ध्यान नहीं दिया।

वहुत देर तक उसका वहाँ वैठे रहना शायद उमा को पसन्द नहीं, इस …ाव को ताड़कर कृष्णप्पा कॉफ़ी पीते ही उठा। कुछ देर और वैठने के अण्णाजी के अनुरोध पर भी रुका नहीं। शाम की सभा में आने का आश्वासन देकर पहाड़ी की ओर चला गया। उसे तनहाई की सख़्त आवश्यकता थी। गौरी के घर से दूर रहना भी आवश्यक लगा।



शहर के पास वाली पहाड़ी पर एक गुफ़ा थी। उस गुफ़ा में सिर्फ़… लँगोट पहनकर लम्बी दाढ़ी वाला एक बूढ़ा वैरागी रहता था। उसक… नाम कोई नहीं जानता था। वह किसी से वोलता भी नहीं था। वह ह… सवेरे पहाड़ी से उतरकर शहर में आता। हर दिन एक गली के छोर… खड़ा होकर ऊँची आवाज़ में एक घंटे तक 'गीता' के अध्यायों का लय… गायन करता। ज़मीन पर रखी उसकी चँगेरी में राहगीर चावल, … फल आदि डालते। उस छोटी चँगेरी के भर जाने पर वैरागी और… नहीं लेता था। अपना गायन समाप्त करके फिर पहाड़ी पर लौट उसे… कर खा लेता, वस।

इस वैरागी के लिए कृष्णप्पा के मन में जिज्ञासा थी। वह पहा… …उसकी गुफ़ा के पास जा वैठा। वैरागी रोज़ की तरह गुफ़ा…

पत्थर जोडकर बनाये चूल्हे पर चावल, दाल पत्थर की हांडी में डालकर पका रहा था। कृष्णप्पा ने प्रणाम किया और वहीं एक सिल पर बैठकर प्रतीक्षा करने लगा। बैरागी बोला नहीं। वह चावल-दाल पकने पर गुफा के भीतर से पलाश के पत्ते ले आया। बैरागी ने तीन बड़ी पत्तल बनायी। हांडी का खाना बराबर-बराबर तीन हिस्सों में बांटकर इन तीनों पत्तलों पर परोस दिया। एक पत्तल कुछ दूर रख आया। कृष्णप्पा ने शिलाओं के पीछे से इस आहार के लिए एक कुत्ते को धीरे से आते हुए देखा। बिना उतावली के बैरागी ने दूसरी पत्तल कृष्णप्पा के सामने रखी और तीसरी पत्तल के सामने खुद बैठकर आंखें बन्द करके ध्यान किया। कृष्णप्पा की समझ में नहीं आया कि वह क्या कहे। जब बैरागी खाने लगा तो कृष्णप्पा ने भी अपनी पत्तल का खाना खा लिया। उसमें कोई जायका नहीं था। किन्तु भूख लगी थी सो खा लिया।

खाना खाकर बैरागी पत्तल को दूर फेंक आया। कृष्णप्पा भी अपनी पत्तल फेंककर पहले वाली जगह पर आ बैठा। बैरागी अब भी बोला नहीं। धीरे-धीरे कृष्णप्पा को भी बातों की आवश्यकता समाप्त हो गयी। बैरागी ने छांव में पांव फैलाकर आंखें बन्द कर ली। यह बैरागी थोथा है या ठोस, मुक्त है या ईडियट—आदि प्रश्न बेतुके-से लगे। इससे कृष्णप्पा की दहशत और बढ़ गयी। कई सम्भावनाओं के सामने खड़े रहने के कारण उसे यह दहशत हुई होगी। इन शिलाओं से लुढ़ककर मृत्यु का वरण किया जा सकता है। इस बैरागी की भांति दिन में एक बार खाकर चुपचाप रहा जा सकता है। अण्णाजी की भांति समाज से जूझा जा सकता है। हर रात गौरी से लिपटकर सम्भोग करके बच्चे पैदा किये जा सकते हैं। कोई भी काम अनिवार्य नहीं, जो चाहे किया जा सकता है। बिना कुछ किये भी शव की भांति रहा जा सकता है। इस तरह रहना भी कुछ और काम किये जाने के बराबर ही है। किसी बात का भी कोई अर्थ नहीं। अथवा वह जो अर्थ लगायेगा, वही अर्थ है।

बैरागी उठ बैठा। उसका चेहरा भावशून्य था। उठकर एक शिला के पीछे जाकर पेशाब किया और फिर आकर सो गया।

क्या यह बैरागी हर रोज इसी तरह रहने की बात ठानकर निकलता

उसका यही निश्चय बन चुका है ? क्या उसे खुशी महसूस होती है ?
सकी कोई आवश्यकता है ?
्या वह इसी भाँति कल तक सोता रहेगा ? कर्म करो, कर्म के बिना
ाप रहो, खुश मत होओ, दुखी मत होओ आदि बातें बैरागीपन से कह-
वह अपनी रोज़ की रोटी जुटाकर रह जाता है । किसके द्वारा यह
ायमान होता है ? इन प्रश्नों से उलझते हुए कृष्णप्पा सहसा खड़ा हो
या ।

"बाबाजी, मेरा एक प्रश्न है ?" उसने कहा । बैरागी पलकें मिचकाते हुए सोया रहा । उसने फिर पूछा, "क्या आप मौनी हैं ? तब क्यों हर रोज़ गलियों में 'गीता' का पाठ करते हैं ? आपका उद्देश्य क्या है ?"

बैरागी ने मुँह तक नहीं घुमाया । लगा, वह बहरा होगा । अपनी बातों को व्यर्थ की चिल्लाहट बनते देखकर भी उससे रहा न गया । बैरागी के निकट बैठकर ज़ोर से कहा, "सुनिये...!"

यह हरकत खुद कृष्णप्पा को बड़ी हास्यास्पद लगी । विवश होकर ज़ोर से बैरागी का हाथ पकड़ा । बिना विरोध उसके हाथ में अपना हाथ देकर बैरागी पूरब की ओर देखते हुए बैठा रहा । कृष्णप्पा का चीखने को मन हुआ । आँख, कान, नाक, त्वचा—ये सभी बाहरी संवेदना को भीतर प्रवेश कराते रहते हैं । बाह्य और अंतर, शिश्न और योनि—और भी आत्मीयता से कस लेते हैं ? इस सत्य के सिवा इस गोसाईं ने और क्या देखा है ? उसकी प्रतिक्रिया जानने के कारण क्या उसकी दुरूहता और भ
रहस्यपूर्ण नहीं बन गयी है ? चाहे वह ईडियट ही क्यों न हो, पर उसने अप
आप को जीत लिया है । आखिरकार उसकी प्रतिक्रिया जानने की चपल
को दबाकर तथा निराश होकर कृष्णप्पा उठ खड़ा हुआ । भारी क़दम
पहाड़ी से उतरकर वह शहर की ओर चला आया ।

रोटरी क्लब की सभा के रिच्युअल्स सहते हुए कृष्णप्पा अण्णा
आश्चर्य से देखता रहा । व्यक्ति और समाज की अन्योन्यता, उत्पादन-
के परिवर्तन, वर्ग-चेतना, क्रान्ति आदि के बारे में अण्णाजी धा
अँग्रेज़ी में बोलते रहे । सिल्क के अचकन-सूट पहने हुए लोगों को
रही इस वार्ता का लोरी जैसा रस लेते देख कृष्णप्पा बड़ी

खुद को रोके रहा। कर्म और पुनर्जन्म की तरह यह क्रान्ति भी कालानुक्रम में अनिवार्य क्यों न बने ? प्रलय की तरह ? चन्नवीरय्या भी अकड़कर बैठा था। धन्यवाद-ज्ञापन से पहले ही कृष्णप्पा होस्टल चला आया।



अँधेरा हो चुका था। होस्टल के सामने गौरी देशपांडे की कार खड़ी थी। सिगरेट पीता हुआ ड्राइवर कार के बाहर खड़ा था। होस्टल के सारे लड़के बड़े संभ्रम के साथ टोलियों में खड़े आपस में उद्वेग से बातें कर रहे थे। इस होस्टल के भीतर यही पहली बार एक औरत-जात आयी थी। होस्टल के लड़कों का खयाल था कि उनके मर्दाना होस्टल में एक मादा मच्छर भी नहीं आ सकता। किन्तु गौरी देशपांडे का आगमन एक ऐतिहासिक घटना बन गयी। कृष्णप्पा को देखते ही सभी की बातें बन्द हुईं। कृष्णप्पा ने जीना चढ़कर अपने कमरे के किवाड़ खोले। गौरी बड़ी तन्मयता से कोई किताब पढ़ रही थी। किवाड़ खुलते ही वह उठ खड़ी हुई।

"माफ़ करना। आपके कमरे पर आकर तकलीफ़ दे रही हूँ।" इतना कहकर नरमी से गौरी मुसकरायी। उसका चौड़ा दूधिया चेहरा शान्त था। माथे पर सिन्दूर के चूर्ण का बड़ा-सा टीका लगा हुआ था। उसके कुछ फूले हुए अधर, भारी स्तन, गोल-मटोल भुजाएँ, लम्बी टाँगें, उसके खड़े रहने की त्रिभंगी-मुद्रा, पीठ पर लटकता हुआ भारी काला जूड़ा—ये सभी मोह उत्पन्न कर रहे थे। लेकिन उसकी प्रशान्त बड़ी-बड़ी आँखें, कोरदार भौंहें उसके अगम्य होने की भावना भी उत्पन्न कर रही थीं। नीरवता की झील में छिपी कन्या की भाँति वह लग रही थी। अपनी खुशी तथा उसे पसन्द करने का भाव न छिपाकर कृष्णप्पा भी पत्थर में तराशी-

गयी मूर्ति की तरह खड़ा रहा।

"बैठ सकते हैं न ?" शरारती हँसी हँसकर गौरी ने कहा। कमरे में एक ही कुर्सी थी। वह कहाँ बैठे, इस उधेड़बुन में उसने इधर-उधर देखा। कृष्णप्पा ने खुद बिस्तर पर बैठकर उसे कुर्सी की ओर इशारा किया। उसके चहेते विवेकानन्द और गांधी को गौरी ने दीवार पर देखा।

"क्या आप सच ही कॉलेज छोड़ने वाले हैं ?" उसने पूछा।

"हाँ ! उसकी वजह है कुछ दूसरी तरह का काम करने की इच्छा, आप नहीं।"

गौरी को इस बात से तसल्ली हुई है, कृष्णप्पा ने फ़ौरन भाँप लिया।

गौरी ने कहा, "आपकी चिट्ठी मिली थी। माँ के बाद यदि कोई मेरा है तो वह आप ही हैं। कैसे बताऊँ कि गौरव या प्रेम, फिर भी...इसे मुँह खोलकर कह न पा रही हूँ। इसके लिए बुरा मत मानना। यहाँ आने का मेरा कोई हेतु नहीं रहा है।"

गौरी ने बड़ी सहजता से कहा था। कृष्णप्पा ने सिर झुकाये सुना।

"लड़कों के होस्टल में आप अकेली आयी हैं। आपकी माँ क्या कहेंगी ?"

"मैंने सोचा नहीं था कि आप ऐसा प्रश्न पूछेंगे।" अपने जवाब से कृष्णप्पा को लजाते देखकर हँसते हुए गौरी ने कहा, "मेरे पिता को म जेल काटते हुए छोड़कर आयी हैं न ! मेरी किसी भी इच्छा का विरो नहीं करतीं...।"

"पर इस बात के लिए तो आपको अपना गुस्सा नहीं उतार चाहिए !" कृष्णप्पा संभल गया था।

"आपको यह गुस्सा जैसा क्यों लगता है ? मैंने अभी कहा कि आपको चाहती हूँ। आपको इससे गर्व हुआ न ! आपने कभी सोचा नहीं होगा कि मैं ऐसी बातें करूँगी।"

कृष्णप्पा भौंचक्क रह गया। गौरी उठ खड़ी हुई।

"जब-जब मन हो, घर आते रहिये।" इतना कहकर वह च गयी।

कृष्णप्पा को महसूस हुआ कि प्रेम जितना तीव्र होता है, उतनी ही प्रेम किये जाने वाली वस्तु अगम्य लगती है। मैं तीव्रता से जिसे चाहता हूँ, उसका उपभोग नहीं करता अथवा जब चाह तीव्र होती है, तब उपभोग नहीं करता—मौत का सामना करते कृष्णप्पा इन दिनों यह बात सोच लेता है।

इस प्रकार कभी न सुलझने वाले प्रेम, आशा-निराशा के अग्नि-चक्रों में गौरी ने कृष्णप्पा को बाँधा था। एक और रात बिना नींद के काटी। सवेरे उठकर अण्णाजी से मिलने गया। अण्णाजी नाश्ता करके चन्नवीरय्या के साथ बगीचे में बैठा था। चन्नवीरय्या टूटी-फूटी अँग्रेज़ी में अण्णाजी के कल के भाषण की चर्चा कर रहा था। वह बता रहा था कि उसके सभी मित्रों को भाषण पसन्द आया। बड़े-बड़े एडवोकेट भी सिर हिलाते रहे। कृष्णप्पा को कुर्सी दे या खड़े-खड़े ही बातें करके निकल जाने वाली वह हस्ती है, इस पसोपेश में चन्नवीरय्या उसे घूरने लगा। अण्णाजी को खुशी-खुशी उठकर अपनी कुर्सी देते देखकर "न, न, कुर्सी मँगवाता हूँ" कहते हुए कर्कश आवाज में "अरे ओ। माद—कहाँ चला गया ?" कहकर हाँक लगायी। अण्णाजी को खड़े देखकर वह भी खड़ा हो गया। अण्णाजी के गौरवपात्र कृष्णप्पा को एड़ी से चोटी तक देखा। "आप हैं मिस्टर कृष्णप्पा गौड़ा। दस वर्षों में इस देश के बड़े नेता बनेंगे—किसानों के नेता। स्वतंत्र होकर सोच सकते हैं। ग्रास रूट्स पॉलिटिक्स कर सकेंगे।" अण्णाजी कृष्णप्पा का परिचय कराने लगा तो चन्नवीरय्या लॉन की घास निरखने लगा। यह देखकर अण्णाजी पढ़ाई की ओर मुड़ा, "ग्रास रूट्स एक मुहावरा है। उदाहरण के लिए, गांधी की पॉलिटिक्स ग्रास रूट्स पॉलिटिक्स है। केवल ऊपरी परिवर्तन मात्र का प्रयत्न न करके कॉमन पीपुल्स के कान्शेसनेस में भी परिवर्तन करने का प्रयत्न करना—कल मैंने यही बात कही थी।"

चन्नवीरय्या ने अर्थपूर्ण ढंग से कृष्णप्पा को भी अपने में शामिल कर लेने की चेष्टा में कहा, "आज के ज़माने में अँग्रेज़ी का स्तर इतना गिर गया है कि डबल ग्रेजुएटों की भी समझ में नहीं आती। ऐसी ही है न, मिस्टर कृष्णप्पा गौड़ा ? डेमोक्रेसी के नाम पर ऐरे-ग़ैरे-नत्थूखैरों को

नाते जायेंगे तो भला हमारे बच्चे कैसे सीख पायेंगे ?"
री देशपांडे के घर जाने से खुद को बचाने की इच्छा से कृष्णप्प
ी से मिलने चला आया था। किन्तु लॉन पर चल रहे इस नाटक
त्र गया।

"माफ़ कीजिये, मुझे जाना है।" उसने कहा। खुद उमा ही ट्रे में कॉफ़ी
ायी। कृष्णप्पा ने जैसे काँटों पर बैठकर कॉफ़ी पी हो। जब वह उठने
हुआ तो चन्नवीरय्या ही कार मँगवाकर चला गया। तब कृष्णप्पा
अण्णाजी के साथ गैराज के ऊपर वाले कमरे में जाकर किवाड़ बन्द कर
लिये।

"अण्णाजी, मैंने कॉलेज छोड़ दिया है। छिछोरपन की भी हद होती
है।" उसने कहा। उसे अकड़ा हुआ देखकर औरों से बदन छुआ लेने में
कृष्णप्पा के हिचकने की बात याद आयी। बढ़ाये हुए हाथों को यों ही ऊपर
उठाकर कहा, "ग्रेट ! देहात में जाओ !" और फिर सिगरेट सुलगा लिया।
दोनों कुछ देर चुप बैठे रहे।

"कल की मीटिंग में डी० एस० पी० भी आया था ?" कृष्णप्पा ने
प्रश्नार्थक भाव से अण्णाजी का मुँह देखा।

"यस, मैं रेस्पेक्टेबल बनने की कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन सुनो...!"

उसने उस दिन के 'हिन्दू' समाचारपत्र के भीतरी पन्ने का एक
कॉलम दिखाया। उसमें तेलंगाना प्रदेश में किसानों को भड़काने वाले
स्वामी नाम के एक फ़रार व्यक्ति को पकड़ने वाले को माफ़िक इनाम की
ख़बर छपी थी। मुँड़ा हुआ सिर, गेरुआ कुर्ता, गेरुई धोती, ऊँचे क़द और
लम्बे चेहरे वाले स्वामीजी के हुलिए का वर्णन भी था। जब वह बंगाल
गृहस्थ की तरह दिखायी देने वाले अण्णाजी को आशंका से देखने लगा
अण्णाजी ने ट्रंक से गेरुआ कुर्ता और धोती निकालकर काग़ज़ में लपे
कहा, "अब इनकी ज़रूरत नहीं। इन्हें जला डालो।"

"फिर ?" कृष्णप्पा ने पूछा।

"देहात पहुँचकर तुम मुझे कहीं छिपाकर रखना। फ़िलहाल मैं
की धारणा से मार्क्सवाद की आलोचना करते हुए अपनी आइ
छिपाए रखूँगा। ये देखो।"

तब लिंकन और रूज़वेल्ट की तसवीरें, जो उसने अपनी पुस्तक में काट कर कमरे में लगा ली थी, दिखायीं।

कृष्णप्पा का मन हुआ कि बेवजह होने वाली दहशत के बारे में बता दे, किन्तु ऐसी बात करने की इच्छा ही नहीं हुई। उस दिन की 'हिन्दू' पत्रिका में गेरुआ कुर्ता और धोती लपेटकर चलने को हुआ। दरवाज़े पर दस्तक की आवाज़ सुन कर अण्णाजी की आँखों में खुशी कौंध गयी।

"शायद उमा होगी। मार्वलस उमन! रेवोल्यूशनरी की बगल में ऐसी एक उमन हो तो...!" उसने दरवाज़ा खोला। उमा ने गोर्की की कहानियों की पुस्तक हाथ में लिये हुए कहा, "क्या अन्दर आ सकती हूँ?"

"ठहरो! हम गोर्की की चर्चा करने जा रहे हैं।" अण्णाजी ने कृष्णप्पा से कहा। लेकिन कृष्णप्पा रुका नहीं। उमा की प्रेम से चमकती हुई आँखें, साँसों के फूलने से उभरी हुई छाती, चंचल चितवन देखी। अपने मन में ईर्ष्या उत्पन्न होते देखकर कृष्णप्पा को कसमसाहट हुई। उमा को इस हालत में देखकर शायद अण्णाजी को भी उसके साथ तनहाई में रहने की घबराहट हुई होगी। अतः उसे बैठने का अनुरोध किया। लेकिन कृष्णप्पा को जाते देख जीना उतरकर उसे विदा किया।

कृष्णप्पा का मन गौरी के घर जाने को हुआ तो सीधा उसके घर की ओर ही चला। घर पास आने लगा तो दिल ने धड़कना शुरू कर दिया। वह घर पर न मिले—ऐसी कामना करते हुए गेट के सामने जा खड़ा हुआ। पोर्टिको में कार न पाकर दिल हलका हुआ। वह भूल ही गया था कि इस समय गौरी कॉलिज में होती है। या फिर हो सकता है कि कार में उसकी माँ कहीं गयी हो। बगीचे में फूल-पौधों के बीच काम करते हुए एक माली ने कृष्णप्पा को देखकर कहा, "छोटी मालकिन नहीं हैं। क्या बड़ी मालकिन से मिलना है?" "ना" कहकर कृष्णप्पा सरपट बाहर आ गया। उसका दिल कुछ हलका हुआ।

अब कहाँ जाये, कुछ समझ न पाकर वह भटकता रहा। जब धूप चढ़ने लगी, तब तय किया कि आज उस बैरागी के मौन का रहस्य खोल दे। यह सोचकर पहाड़ी पर चढ़ा। सवेरे नाश्ता न लेने के कारण अब भूख चमक गयी थी। रात की नींद भी गायब होकर अब थकावट में बदलने

।

दूर से ही चूल्हा सुलगाता हुआ वैरागी दिखायी पड़ा। उसे देखकर
ह और भी तेज़ हो गयी। पहले दिन की ही तरह एक शिला से टिक
र वह बैठ गया। वैरागी चूल्हे पर हाँडी चढ़ा कर गुफ़ा के भीतर से
क मोटी पुस्तक लाकर पढ़ने लगा। पुस्तक कौन-सी है—यह जानने का
कुतूहल हुआ। किन्तु पास जाकर देखने से कहीं उसकी तन्मयता भंग न
हो, इस विचार से चुप रहा। कुछ देर बाद वैरागी ने गुफ़ा से पलाश के
पत्ते लाकर तीन पत्तल टाँक लीं। उसके भोजन में से आज भी उसे
हिस्सा मिल रहा है। इस हद तक तो वैरागी ने उसकी उपस्थिति पर
ग़ौर किया है। किसी शिला के बीच से कुत्ता प्रकट होकर दूसरी शिला
की छांव में सोकर जीभ निकाल कर हाँफने लगा। काले धब्बों वाला भूरे
रंग का कुत्ता। किसी दिन इस वैरागी के पीछे आकर यहाँ डेरा डाला
होगा।

हाँडी का खाना पक जाने पर वैरागी उसके तीन हिस्से करने लगा
तो कृष्णप्पा उठकर चूल्हे के पास जा बैठा। एक पत्तल उठा कर कुत्ते के
लिए रख आने तक कृष्णप्पा ने देखा कि बैरागी की पुस्तक वाल्मीकि की
संस्कृत रामायण है। फिर मौन रहकर ही अगल-बग़ल बैठकर दोनों का
खाना भी हुआ। आज पके हुए अन्न में दाल-चावल के साथ गुड़ औ
नारियल भी थे। किसी ने दिया होगा।

वैरागी से बातें करने की इच्छा हुई। अपने को बेहद सताते र
वाला प्रश्न यदि पूछा जाये तो कैसा रहेगा ?

"एक—एक बार क्या करें, कुछ सूझता नहीं। हज़ारों सम्भाव
सामने आती हैं। समझ में नहीं आता कि क्यों जियें ?"

वैरागी इस तरह भावशून्य होकर खा रहा था कि कृष्णप्पा को अ
प्रलाप बेतुका लगने लगा। उसे आशंका हुई कि उसके मौन के कारण
अपना प्रश्न ही तो झूठा नहीं है, या स्वकल्पित है ! अथवा किसी
पास अपने मन की बात कहने की मूर्खता तो वह नहीं कर रहा है ?
के बीच पत्तल फेंककर गुफ़ा से कुछ दूर वाले झरने में हाथ धो
लौटते समय घटी एक घटना के कारण वैरागी उसे और भी र

व्यक्ति लगा।

टोपी पहने तथा कमीज़ पर धोती ओढ़े एक बूढ़ा खाना खाते हुए बैरागी के सामने आ खड़ा हुआ। धोती से मुँह पोछते हुए पानी माँगा। बैरागी ने सुराही का पानी और पत्तों से बना दोना उसे दिया। बूढ़े ने पानी पीकर दोने के तल वाली चीज को आँखों से लगा लिया।

"मूकांबिका मन्दिर जाना है। रास्ता भटक गया हूँ। क्या यहाँ से बहुत दूर है?"

बैरागी का खाना समाप्त हो चुका था। वह उठ खड़ा हुआ। हाथ धोकर आया।

"इस रास्ते से जाओ। उस बड़ी शिला के पास दाहिनी ओर मुड़ो। वहाँ सीढ़ियाँ हैं। लगभग सौ सीढ़ियाँ चढ़ने पर मन्दिर मिलेगा।" उसने बताया।

बूढ़े के प्रणाम कर चले जाने के बाद चौंककर बैरागी को देखते हुए कृष्णप्पा ने पूछा, "आप मेरे साथ क्यों नहीं बोलते?"

इस प्रश्न का जवाब नहीं मिला। व्यायाम के द्वारा बाईं ओर जीवनी-शक्ति को जागृत की चेष्टा करते हुए कृष्णप्पा इस घटना को याद करके कहता है, "प्रश्न यदि फ़ैक्चुएल होता तो ही यह बैरागी जवाब देता। अभिप्रायों का जवाब नहीं देता था। अण्णाजी जोशीला आदमी था, तो यह बैरागी जितनी जरूरत हो उतना ही दुनिया के लिए उपड़ा हुआ था। किन्तु इसमें उसके भीतर पता नहीं क्या पककर फलित हुआ, उसमें वह क्या पा सका या किसने क्या पाया—कहा नहीं जा सकता। किन्तु मैंने या अण्णाजी ने ही क्या तीर मार लिया है?" ऐसी बातें करते हुए कृष्णप्पा काफ़ी उदास हो जाता था, इसलिए इसे भी उसका आमूल अभिप्राय नहीं कहा जा सकता। इतनी बात तो सच है कि उस बैरागी ने उसे पीड़ा पहुँचायी है। उसी की भाँति मौनी बन कर अन्तरंग को धकधक जला लेने की कामना उससे छूटी नहीं—मलमूत्र-विसर्जन का व्यवधान खोते हुए इस अवस्था में भी।

जब पता चला कि बैरागी बोलता है तो कृष्णप्पा बेचैन होकर उससे बातें करने लायक़ अपना प्रश्न सोचने लगा। पूछा जाने वाला प्रश्न सच्चा

होना चाहिए। साफ़-साफ़ पूछा जाने वाला हो—जैसे 'अमुक जगह जाने के लिए रास्ता कौन-सा है' पूछा जाता है। कृष्णप्पा को घबराहट हुई कि उसकी सारी पीड़ा शायद मन के लालच से उत्पन्न हुई है। अथवा उसकी क्या समस्या है, वास्तव में वह खुद भी नहीं जानता है। यदि ऐसा प्रश्न पूछना सम्भव भी हो जाये तो वैरागी की समझ से बाहर होने के कारण शायद वह चुप भी रह सकता है अथवा उसकी धारणा हो सकती है कि कोई भी समस्या औरों से पूछ कर सुलझायी जाने वाली नहीं होती।

सांझ होते-होते कृष्णप्पा पहाड़ी से नीचे उतरा। क्या गौरी देशपांडे से मिले? मिलकर क्या कहे? अपना सारा बर्ताव अपरिपक्व मानकर होस्टल गया। लड़कों को कुछ पूछने की ताक में देखकर "बड़ी थकावट हो गयी है, यारो! कल बातें करेंगे" कहकर कमरे में जाकर सो गया। किशोर ने दूध ला दिया तो कृष्णप्पा ने पी लिया। उसके दिये लिफ़ाफ़े को उतावली से खोलकर पढ़ा :

"आज मेरी खोज में मेरे घर शायद आप ही आये होंगे। ज़ीने में खड़ी मेरी माँ को और कौन भला कवि जैसा दिखायी पड़ा होगा? कल आइये—मन चाहे तो। हिचकिचाइये नहीं।

आप ही की, गौरी देशपांडे।"

कृष्णप्पा को खुशी हुई। डर भी लगा। इन दिनों मौत के साथ जूझते हुए वे सारी घटनाएँ याद करके वह चौंक उठता है। प्रीति के लिए उपलब्ध स्त्री की अपेक्षा अनुपलब्ध स्त्री से ही अपनी कल्पना क्यों अधिक लगाव रखती है? उसे इतना चाह कर भी क्यों उससे सीधे-सीधे 'तुम मुझे चाहिए' कह कर पूछना सम्भव नहीं हो सका? वह कितनी सहजता से, मुक्त मन से खुलकर बातें करती थी! किन्तु जैसे औरत को मर्द की आवश्यकता होती है, उस तरह 'तुम मुझे चाहिए' कहकर सूचित करना उससे भी क्यों सम्भव नहीं हो सका? उसके दैविक चेहरे की जब याद आती तो उसकी सुगठित देह को चाहना सम्भव नहीं हो पाता था। उसकी देह को पाने की इच्छा जब कभी होती तो उसकी बातें, चेहरा, चितवन याद आ जातीं और अपनी कामना के प्रति घिन-सी होने लगती। इसलिए उन दिनों अपनी सारी भावनाएँ अपने सम्पूर्ण प्राणों की चाह की

एक बात बन कर, एक प्रश्न बनकर, एक अटल निर्णय बन कर कहते नहीं बनती थी।

कृष्णप्पा को उस दिन नींद नहीं आयी। आधी रात को कुछ हो-हल्ला सुनकर आँखें खुलीं। उठकर बत्ती जलायी। जीना उतरते समय हॉस्टल के सारे लड़कों को बड़े जोश में किसी को भीतर घसीटते हुए देखा। कृष्णप्पा उतावली में उतर ही रहा था कि शामण्णा हाँफते हुए आकर कृष्णप्पा को उसके कमरे में ठेल ले गया। किवाड़ बन्द करके हाथ जोड़कर खड़ा हुआ। लगता था कि शामण्णा पिये हो। हाँफते हुए बड़बड़ाया, "आप जरा चुप रहें। उन बम्भन के बच्चों का कचूमर निकालने के बाद आपको बुलाएँगे। आप के पाँव पड़ते हैं। उनकी तनिक भी हानि नहीं करेंगे, आपकी कसम!" यह कहकर शामण्णा हड़बड़ी में बाहर निकल गया। उसने कृष्णप्पा के कमरे का दरवाजा बाहर से बन्द करके साँकल चढ़ा दी। कृष्णप्पा विवश होकर बैठा रहा। नीचे अत्यन्त लजीले स्वभाव के लड़कों को भी डाँट दिखाते, गालियाँ सुनाते, धकधक आवाज सुनते, वहम करते और फिर सारा-का-सारा वातावरण स्तब्ध होते सुनता रहा। साँकल खुली। शामण्णा ने सामने आकर कहा, "चाहे कल हमें फटकारियें। अब नीचे चलिये। वे सुअर आप से माफी माँगने के लिए राज़ी हो गये हैं।"

कृष्णप्पा ने नीचे आकर देखा। दृश्य बड़ा हास्यास्पद था। गिरोह के सरदार रामू को पलँग के एक पाए से बाँधा गया था। हॉस्टल के चूल्हे में राख और कोयला लाकर उसके मुँह पर पोता गया था। उसके दो साथियों के हाथ-पाँव रस्सी से कसकर खिड़की की सलाखों से बाँधा गया था। राख और कोयले से पुते हुए रामू की लम्बी मूँछें और चेहरा भय, क्रोध, तिरस्कार से विकृत हो उठा था। शामण्णा कृष्णप्पा के सम्मुख उसे फटकारते हुए बड़े रोब से तहकीकात करने लगा—गौरव-सूचक बहुवचन में। किन्तु इस हद तक आने से पहले जो-जो बातें सुनानी पड़ी थीं, उन्हें सन्दर्भोचित सुनाये रहने की प्रतीति कृष्णप्पा को हुए बिना नहीं रही।

"आधी रात को तुम लोग हॉस्टल की दीवार पर गंदी-गंदी बातें लिखते रहे हो या नहीं?"

शामण्णा के प्रश्न का रामू ने भभकती आवाज़ में जवाब दिया, "हाँ !"

"मानते हो कि यह गू खाने जैसा काम है ?"

शामण्णा को अपनी पैंट की जेब से साइकिल की चेन निकालते देखकर रामू ने अपने बिगड़े चेहरे से कहा, "ठीक है।"

"कृष्णप्पा गौड़ा हम सबके लीडर हैं। तुम्हें उनसे माफ़ी माँगनी होगी हम तुम्हें फ्री कर देते हैं, लेकिन तुम्हें सच्ची दोस्ती ज़ाहिर करनी होगी।"

जिसको बाँकेलाल समझा हुआ था, उस शामण्णा का यह पहलू देखकर कृष्णप्पा को अचम्भा हुआ। शामण्णा का ही इशारा पाकर लड़कों ने तीनों को खोल दिया। रामू अकड़कर कृष्णप्पा की ओर मुड़ा।

"हमारी घड़ियाँ उतारकर रख ली हैं। वे दिलवा दो।" उसने कहा।

"छिः ! हम कोई चोर नहीं।" शामण्णा ने उन तीनों की घड़ियाँ लौटा दीं। फिर लड़कों के साथ उन्हें घेरकर कृष्णप्पा के सामने ला खड़ा किया।

कृष्णप्पा ने अपने स्वाभाविक लहजे में बिना किसी उद्वेग के कहा, "मुझे तुम्हारी क्षमा-याचना नहीं चाहिए। मैं और तुम लोग अथवा गौरी देशपांडे और तुम लोग—सभी बराबर हैं। बराबरी में ऐसा काम ठीक नहीं। बेचारे तुम लोग भी क्या करते ! तुम्हारी तरह मैं भी इस कॉलेज में समय बरबाद करता रहा, इसलिए तुम्हें ऐसा भ्रम हुआ है...!"

चलने को उद्यत रामू को शामण्णा ने टोका। आँखें दिखाकर रोक "भले ही वे न चाहते हों, लेकिन हम डिमांड करते हैं। उनसे माफ़ी माँगो

रामू ने ठिठकते हुए कहा, "ग़लती हुई। माफ़ करना।"

शामण्णा ने कहा, "एक बाल्टी पानी लाओ।"

उसमें अपना तौलिया डुबोकर वह रामू का मुँह पोंछने लगा। मुँह फेर लिया तो कहा, "तुम्हारे माफ़ी माँगने के बाद इस पुती हुई क को मिटाना मेरी ड्यूटी है। समझे ?"

रामू माना नहीं। खुद ही मुँह धो लिया। तब शामण्णा बोल कुछ दीवार पर तुमने लिखा है, अब उसे मिटाओ। यह तुम्हार था।"

रामू और उसके साथी बाहर निकले। सारा होस्टल उनको मिटाते हुए देखता रहा।

रामू और उसके साथियों को दी जाने वाली सज़ा को कमीनेपन की निगाह से देखते हुए वह गम्भीर ढंग से पेश आया था। किन्तु अब कृष्णप्पा को लगता है कि यह सज़ा शायद उसने मन-ही-मन चाही थी। आगे उसके राजनैतिक जीवन में ऐसे कितने ही सदर्भ आये हैं और बदला लेने में अपनी निरासक्ति को ही विपक्षियों को महत्वहीन बनाने वाला अस्त्र बनाया है। खुद मुँह खोलकर न कहने पर भी जो होना था, वह दूसरों के ज़रिए हुआ है। खुद पाक रहकर दूसरों से ऐसे काम करवाना क्या ठीक है ? किन्तु ऐसे नैतिक प्रश्न सूक्ष्म कहलाने वाले सामाजिक न्याय से सम्बद्ध थे। क्या अण्णाजी ने नहीं कहा था कि दीन-दलितों के पक्ष में लड़ी जाने वाली लड़ाई में जब हम ठोस और अडिग बनकर खड़े हो जायेंगे, तब उसे जीतने के लिए जो भी किया जायेगा वह न्यायसमत होगा ! कृष्णप्पा को, जो अब एक-एक उँगली मोड़ना, खोलना सीख रहा है, अपने व्यक्तित्व के अक्खड़ अंश सता रहे हैं। लगता है कि पूरी तरह दूसरों के हित में जीने में भी हमारा साबुत बचे रहना निश्चित नहीं।

कृष्णप्पा अगले दिन गौरी देशपांडे से मिला था। वह कॉलेज न जाकर घर में ही रुकी थी। अपनी बेटी का किसी लड़के से लगाव देखकर उसकी माँ अनसूयाबाई खुश नज़र आने लगी थी। ऊँचे कद व छरहरे बदन वाली अनसूयाबाई रेशम की साड़ी पहनकर जीने से उतर आयी। कृष्णप्पा का ऐसा स्वागत किया जिससे उसे तनिक भी हिचकिचाहट महसूस न हो। उनके सिर से सफ़ेद बाल झाँक रहे थे। फिर भी जवानी की चुस्ती और मोहकता को चेहरे ने बचा रखा था। कृष्णप्पा तथा अपनी बेटी को नाश्ता देकर फ्लास्क में कॉफ़ी रख दी। उन दोनों को बातें करने के लिए कहकर स्वयं अपने कमरे में चली गयीं।

गौरी ने कृष्णप्पा को 'उपमा' परोसते हुए उसके तनाव को ढीला करने की चेष्टा की, "आगे क्या करने का विचार है ?"

इस प्रश्न के जवाब में कृष्णप्पा को दुविधा महसूस करते हुए गौरी ने देखा।

"पता नहीं। गाँव जाकर रहूँगा। मेरी माँ है। थोड़ी-सी ज़मीन है। गाँव में रहकर जो करने को मन चाहेगा, करूँगा। आप ?"

कृष्णप्पा ने यह प्रश्न शिष्टाचारवश नहीं पूछा था। उसने उपमा खा लिया था। गौरी ने उसके लिए सेब काटा। गौरी का मन था कि कृष्णप्पा की प्रतिक्रिया जानने के लिए वह कहे कि उसकी माँ के लिए नंजप्पा शिमला से डलियाँ भर-भरकर सेब मँगवाते रहते हैं। किन्तु गौरी चुप रही। उसने अपनी इच्छा को दवा लिया।

"क्या आप मानते हैं कि किसी लड़की की माँ वनने की इच्छा नहीं भी हो सकती है?"

कृष्णप्पा को ऐसे प्रश्न की आशा नहीं थी। गौरी ने विना जल्दवाजी के उसके जवाव की प्रतीक्षा की।

"मैंने इस वारे में सोचा नहीं। यही सोचा था कि वच्चों की कामना करना स्वाभाविक होता है।"

"न। मेरा कहना है कि उसके मन में वच्चों के प्रति कामना होती है। खुद माँ वनने की कामना शायद न हो।"

"क्यों? डर के कारण?"

"नहीं। डर भी नहीं। पुरुष की संगति की कामना होते हुए भी अपनी देह को वच्चे पाने वाला साधन वनाना किसी औरत को शायद पसन्द न हो। क्या आप इसे अस्वाभाविक कहते हैं?"

"अगर आपको ऐसा लगता है तो मैं उसे समझने की कोशिश करूँगा। किन्तु आप एकदम जनरली कह देंगी तो क्या जवाव दूँ, मेरी समझ में नहीं आता।"

गौरी उत्सुकता से वोली, "चलिये, कमरे में वैठकर वातें करेंगे।"

"चाहें तो सिगरेट लगाइये।" कह उसने सामने एक पैकिट रख दिया। कृष्णप्पा ने सोचा, शायद नंजप्पा द्वारा यहाँ छोड़ा गया पैकिट होगा। कृष्णप्पा सिगरेट पीने लगा। गौरी ने कहा, "येस! मुझे ऐसा लगता है। कृपया मेरे माहौल को इसका जिम्मेदार मत समझिये। माँ यही मानकर वहुत पीड़ा सहती रहती हैं। मुझे देश-विदेश घूमने की, वहुत सारी पुस्तकें पढ़ने की, तरह-तरह के लोगों से मिलने की इच्छा होती रहती है। किसी एक पुरुष से वँधकर उसकी सहधर्मिणी वन सारी उम्र विताने को मन नहीं करता।"

कृष्णप्पा चुप वैठा रहा। हँसती हुई गौरी वोली, "आपको शॉक लगा!

है न ? लेकिन वास्तव में मुझे ऐसा ही लगता है। फिर मैं भी तनिक अपनी माँ की ही तरह हूँ। मुझे पुरुष चाहिए। मेरा खयाल है कि मैं फ्लर्ट लड़की नहीं हूँ। चलिये।"

कृष्णप्पा को अपने प्रश्न का उत्तर देने के लिए बाध्य न करने के इरादे से गौरी उसे बगीचे मे ले गयी और वहाँ उसे गुलाब के फूल दिखाये। बगीचे के नुक्कड़ वाले पेड़ के कोटर में एक परिंदे का घोंसला दिखाया—बग़ल में खड़े होकर। मुलायम डैनों वाले कच्चे-कच्चे-से, लाल चोंच खोल-कर 'चूँ-चूँ' चहकने वाले पोतों को बताते हुए गौरी ने कृष्णप्पा की भुजा पर बिलकुल सहज भाव से अपना चेहरा टिका दिया था। कृष्णप्पा ने खुशी से उसके अंगों को थिरकते हुए देखा। बचपन में वह ऐसे कितने ही घोंसलों को ढूँढता फिरा है। कभी-कभी बेवजह संटी परिंदे की टाँग में मारकर उसे पीड़ा भी पहुँचायी है। किन्तु आज गौरी की उमग देखकर वह बहुत नरम-दिल बन गया। इस्त्री की हुई फूलों वाली सफ़ेद साड़ी पहनकर व सीने पर चोटी लटकाये गौरी ने खुशी से नम आँखों से कृष्णप्पा को देखा। अपनी बग़ल में खड़ी गौरी से और भी अधिक सटकर खड़े होने की चाह को कृष्णप्पा ने रोक लिया।

कृष्णप्पा ने पहाड़ी की ओर चलने का सुझाव दिया। गौरी ना-नुच कर मान गयी। उसने कार लेनी चाही तो कृष्णप्पा को कुछ हिचक हुई। किन्तु इतनी दूर गौरी कैसे चल पायेगी ? वह थक जायेगी, यह सोचकर वह मान गया। रास्ते में उसे महेश्वरय्या और अण्णाजी के बारे में जानकारी दी। गौरी से इतनी सरलता से अपने बारे मे बातें करने पर खुद उसे आश्चर्य हुआ। पहाड़ी के नीचे कार रोककर पूछा कि क्या वह वैरागी के बारे में जानती है ? गाँव से बाहर रहने वाली गौरी इस बारे में कुछ नहीं जानती थी।

कृष्णप्पा बोला, "चलिये। उनसे मिलेंगे।"

गौरी के साथ-साथ पहाड़ी पर चढ़ते हुए कहा, "अच्छा, तो आपके प्रश्न का क्या जवाब दें, कुछ समझ में नहीं आ रहा है। आपको अगर ऐसा लगता है तो शायद ठीक ही है। लेकिन...।"

गौरी को हाँफते हुए देखकर वह रुका। अगला रास्ता कुछ चढ़ावदार

अवस्था

(ए)क शिला चढ़नी थी। गौरी ने अपनी साड़ी समेटकर स्वाभाविक (स्वर) में कहा, "मेरी माँ की भाँति आप भी यों न समझें कि मैं द्वेष के कारण (ऐसा) करती हूँ।"

"नहीं।" कृष्णप्पा शिला पर चढ़ गया और गौरी के लिए हाथ आगे (बढ़)ाया। उसके मज़बूत बाहुओं की मदद से गौरी फुदककर शिला पर चढ़ (ग)यी।

"पॉलिटिक्स मुझे बोर करती है।" अपनी अटल राय देते हुए गौर(ी) (ब)ोली। "मुझे यह गाँव छोटा लगता है। बड़े शहरों में प्राइवेसी रहती है. इसलिए बम्बई या दिल्ली जाकर पढ़ना चाहती हूँ। आप भला कैसे देहात में रहेंगे !" उसने जो कुछ कहा था, कृष्णप्पा ने उससे अधिक अर्थ उन बातों में पाया।

वैरागी की गुफ़ा के सामने कुत्ता कुहराम मचाये हुए था। चूल्हे के सामने खाना पकाते बैठा वैरागी कुत्ते को शांत करने की चेष्टा कर रहा था। गुफ़ा के निकट पहुँचकर गौरी के मुँह से हलकी-सी चीख़ निकल गयी। वह कृष्णप्पा से सटकर खड़ी हो गयी। एक नाग फन फैलाकर कुत्ते की ओर फुफकारते हुए गुफ़ा की ओर बढ़ रहा था। वैरागी ने कुत्ते को मज़बूती से पकड़ लिया था। साँप सरपट गुफ़ा में घुस गया। कुत्ते को सहलाते हुए वैरागी उसे दूर चले जाने के लिए फुसलाने लगा। धीरे-धीरे कुत्ता शांत हो गया और अपनी जगह जाकर सोये-सोये भी गुफ़ा की ओर घूरकर देख लेता। हाँडी का खाना पक जाने पर पत्ते लाने के लिए वैराग(ी) गुफ़ा में जाने लगा तो इसे देखकर गौरी कृष्णप्पा से लिपटकर काँप(ने) लगी। गुफ़ा से फुत्कार की आवाज़ आयी। भीतर जाता हुआ वैरागी ठिठ(क) गया। सोया हुआ कुत्ता कान खड़े कर फिर उद्विग्नता से भूंकते हुए भ(ाग) आया। वैरागी ने उसे आग़ोश में लेकर सहलाने का प्रयत्न किया। कृष्ण(प्पा) के पास कुत्ते को खींचकर ले आया और इशारे से उसे पकड़े रहने के (लिए) कहा। जब कृष्णप्पा कुत्ते को पकड़े हुए था, तब हाँडी के पानी से स(...) वाले शिलाखंड पर चार समतल जगहों को धोया। "बाबा जी, हमें (...) नहीं चाहिए।" कृष्णप्पा ने कहा। तब वैरागी आधा खाना कुत्ते (...) दूर रखकर उसे खिलाने के लिए खींचकर ले गया। किन्तु कुत्ता (...)

इनकार कर पीछे-पीछे भाग आया। गुफा के सामने भूँकते हुए खड़ा हो गया। साँप फुँफकारता रहा। बैरागी ने दुबारा कुत्ते को खींचकर जबरन उसके खाने के सामने ले जाने की चेष्टा की।

यह नाटक गौरी अचम्भे से देखती रही। बैरागी के हाथों में कुत्ता उछल-कूद मचा रहा था।

कृष्णप्पा ने कहा, "सोचा था कि आप कुत्ते को उसकी हालत पर छोड़ देने वाले व्यक्ति होंगे।" गीता की 'नैन हंति न हन्यते' बात उसे याद आयी थी। बैरागी द्वारा रोज़ पढ़ी जाने वाली पुस्तक जो थी वह।

बैरागी उसकी बात पर गौर करता हुआ-सा लगा। एक छोटा चीत्कार उसके मुँह से निकलते देखकर कृष्णप्पा ने उसकी प्रतिक्रिया का इन्तज़ार किया। बैरागी ने कुत्ते को छोड़ दिया। कुत्ता लपककर गुफा के सामने जाकर भूँकने लगा। भस्-भस् का फूत्कार ऐसे लग रहा था मानो सारी गुफ़ा ही श्वासोछ्वास कर रही हो। उसने बैरागी के चेहरे को फीका पड़ते हुए देखा। गौरी ने कृष्णप्पा के सीने में अपना मुखड़ा छिपा लिया। वह अगली अनिवार्य घटना की प्रतीक्षा करने लगा। कुत्ता गुफा में घुस गया। शुरू-शुरू में साँप का फुफकारना बराबर सुनायी देता रहा। फिर धीरे-धीरे आवाज़ दब गयी और कपड़ा फटकारने की-सी आवाज़ गुफा के भीतर से आयी। दूसरे ही पल खून से लथपथ छटपटाते हुए साँप को कुत्ता मुँह में दबाये झाड़ियों में भाग गया। गुफा से बहते लहू को देखकर बैरागी अपना खाना बटोरकर फेंक आया। वह मन को सान्त्वना देने की चेष्टा करता हुआ-सा लगा।

आज भी कृष्णप्पा इस घटना को याद करके कहा करता है, "मेरी समझ में नहीं आ पाया कि वह बैरागी अपनी आँखों से देखी हुई हिंसा को पचा सका या नहीं!"



हाथ की उँगलियों को थोड़ा-सा मोड़ते-खोलते हुए कृष्णप्पा
को भी हिलाने का प्रयत्न करता है। फिर एक दिन सवेरे जब उसे
ास हो गया कि कोहनी और कलाई मोड़ना भी सम्भव हो सकता
उसमें तनिक उमंग लहरा गयी। देशपांडे के नाम, जो अमरीका से
कर दिल्ली के मिरांडा हाउस में अब अँग्रेजी पढ़ाने लगी थी, यह
ट्ठी लिखवाने की इच्छा हुई कि वह दो-चार दिन के लिए आकर उससे
ल ले। उसे देखे पन्द्रह से भी अधिक साल बीत चुके थे। अभी तक वह
वन-बच्चों की, बिना शादी किये ही है। फ़िलडेल्फ़िया में पढ़ते समय उसने
लिखा था कि वह एक अमेरिकन के साथ रह रही है। तीन वर्षों के बाद
लिखा था कि उस आदमी को बच्चों की चाह है, इसलिए भले ही उसने
शिकायत नहीं की किन्तु वह निराश भी न हो, इस इरादे से वह अलग हो
रही है। उस दिन बातों-बातों में गौरी ने बच्चे पैदा करने से जो इनकार
व्यक्त किया था और इसे उसकी अपरिपक्वता समझी थी, धीरे-धीरे
यक़ीन हो गया कि उसकी धारणा ग़लत थी।

जो भी हो, कृष्णप्पा के भाग्य में वे दिन अत्यन्त पीड़ादायी रहे। वह
यूँ रहता मानो अथाह जलप्रपात के किनारे उँगलियों पर खड़ा हो। उसके
साथ मुक्त मन, उल्लास से रहने की चेष्टा करके गौरी हार गयी थी।
जब कभी दोनों को साथ-साथ रहना होता, तब-तब एक-दूसरे को दीप की
लौ बनकर जला लिया करते। एक की गर्मी में दूसरा पिघलकर कभी कोमल
नहीं बना। कृष्णप्पा की स्वीकृति को ज़रूरी समझकर गौरी कहती,
"शायद आपसे मैंने कहा नहीं। जब मेरे पिता बेलगाम में थे, तब वे और
नंजप्पा दोनों दोस्त थे। दोनों का साथ-साथ कुछ बिज़नेस भी था। हमारे

ही घर नजप्पा ठहरा करते। सुना है, मेरे पिता की एक और माशूका भी थी।"

ये सारी बातें कृष्णप्पा को फ़िज़ूल लगतीं और वह खो-सा जाता। गौरी पछताने लगती कि उसके साथ किसी उत्कर्ष की चाह में आये कृष्णप्पा को वह मामूली वाक्यों की ओर खींच रही है। कृष्णप्पा को उसकी पसन्द का खाना परोसते रहने तक वह इसी तरह बनी रहती।

कृष्णप्पा वहाँ प्रायः हर साँझ आया करता था। गौरी से ऐसे बात करता मानो वह अपरिचित हो।

"माफ़ कीजिये। शायद आपको पढ़ना है। परीक्षा निकट जो आ गयी है।"

"नहीं, आइये-आइये।" वह कहती। कृष्णप्पा कुछ बोलता नहीं था। बेतकल्लुफ़ी से कमरे में अपनी बड़ी-बड़ी आँखें घुमाते हुए अगर वह बैठ जाता तो गौरी पूछती, "गाऊँ ?"

वह जानती थी कि उसका गाना सुनकर कृष्णप्पा तनाव-मुक्त हो जायेगा। अनसूयाबाई बेटी को कृष्णप्पा के सामने बैठकर गाते हुए सुनती रहती। कोने के पीढ़े पर उनका चुपचाप बैठे रहना कृष्णप्पा को भी भाता। कृष्णप्पा के सामने दूधिया भावनाओं वाली अपनी बेटी को देखकर घुँघराले बालों वाली काली मूर्ति की तरह दृढ़काय अनसूयाबाई निहाल हो उठती। *शरत बाबू के उन उपन्यासों के सन्दर्भों में इन दोनों को रखतीं,* जो वह प्रायः पढ़ा करती थी। इस बीच नंजप्पा आ जाते तो भी किसी को हिचक नहीं होती थी। शुरू-शुरू में वह ग़रीब कृष्णप्पा के साथ गौरी का स्नेह-सम्बन्ध देखकर कुछ नाराज़ अवश्य रहा करते थे। किन्तु गौरी से सामना करने की हिम्मत न होने के कारण चुप रह जाते। इधर वे बड़े ही दैव-भक्त बन गये थे। शाम के समय गणशजी के मन्दिर में आरती उतरवाकर सिन्दूर-प्रसाद लाया करते। तीनों को प्रसाद बाँटकर वह ज़ीना चढ़ जाते। अनसूयाबाई कब उठकर चली जातीं, इसका पता न गौरी को चलता और न कृष्णप्पा को ही।

उन दिनों गौरी को क्यों नहीं हासिल किया? जब कभी कृष्णप्पा तनहाई में होता तो गौरी से संगति करने की उसकी इच्छा बलवती हो

उठती। किन्तु चौपाए की तरह सम्भोग करने की कल्पना से ही कृष्णप्पा को जुगुप्सा होती। इस पाप-भावना से अगर किसी ने कृष्णप्पा को मुक्त किया था तो वह थी लूसिना। मन की कँपकँपी से छुटकारा दिलवाकर उसकी हर साँस, हर जोड़ को सजीव साबित किया था। यदि वह पहले ही गौरी से मुक्त हो गया होता तो...।

एक दिन दोपहर के समय कृष्णप्पा अण्णाजी से मिलने निकला। इन दिनों अण्णाजी को पैसों के लिए तरसने की ज़रूरत नहीं थी। ज़रूरत से ज़्यादा पैसा उसके हाथों में खेलता रहता था। कृष्णप्पा का सारा क़र्ज़ा उसने अदा कर दिया था। कृष्णप्पा ने कभी नहीं पूछा कि इतना पैसा कहाँ से आया? इसके अलावा अण्णाजी ने उमा की उदारता की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। शायद वह अपने पति की नजर बचाकर तिजोरी से उसका काला धन उड़ाती और अण्णाजी को देती थी। अण्णाजी को इस तरह की अनैतिकता नहीं सताती थी। आज भी कृष्णप्पा के साथ वह बड़ी तन्मयता से मार्क्सवाद-लेनिनवाद की बारीकियों के बारे में बातें करता है। इन बातों को सुनती हुई उमा अपना गेहुँआ गोल-मटोल चेहरा अँजुली में धर कर बैठी रहती है। जब अत्यन्त जटिल तर्कों को पेश करना होता है तो अण्णाजी उसकी ओर मुड़कर देखता है। तब कृष्णप्पा को यूँ लगता है कि आराधना के फूल बरसाने की भाँति अण्णाजी उमा की ओर विचारों को फेंकते हुए देवी की मूर्ति की पूजा करते बैठा हो।

उस दिन दोपहर के समय कृष्णप्पा जब दरवाज़े के सामने जा खड़ा हुआ तो उमा को सिसकारते हुए और अण्णाजी को रहस्यपूर्ण ढंग से कुछ कहते हुए सुना। वह दरवाज़ा खटखटाने वाला था कि ठिठक गया। उसके क़दमों की आहट शायद सुनायी दी होगी। दरवाज़े के बाहर से ही दोनों को उठकर आवेग में लम्बी साँस लेते हुए व उतावली में दौड़-धूप करते हुए देखकर कृष्णप्पा को आश्चर्य हुआ। अब उसका चले जाना ठीक नहीं। खड़े रहना भी ग़लती होगी। दुविधा में कहा, "मैं हूँ, कृष्णप्पा। फिर कभी आऊँगा। यूँ ही चला आया था।" इसे सुनकर अण्णाजी को बड़ी राहत मिली है, यह उसकी आवाज़ से ही पता चल गया।

"ओह! कृष्णप्पा ठहरो। आओ यार।"

कृष्णप्पा की और भी दुविधा हुई। अब वह लौटकर जा भी नहीं सकता था। अण्णाजी और उमा के चेहरों को इस तरह देखना होगा मानो कुछ हुआ ही नहीं। यों सोचू बनकर पेश आना होगा कि उन दोनों को छिपा लेने में मुश्किल न हो और यह कि ये सारी बातें उसकी समझ के बाहर हैं।

दरवाजा खुला। उमा के बाल बिखरे हुए थे और वह कपड़े से पुस्तकों की धूल झाड़ते हुए तिपाई के पास खड़ी थी। ऐसा स्वाँग रचाया था मानो उस काम के कारण ही वह तुरन्त दरवाजा नहीं खोल सकी। अण्णाजी यों आँखें मल रहा था मानो अभी नींद से उठा हो, उसे यह खासा बेतुका-सा लगा। फिर भी दो-एक मिनटों में ही अण्णाजी लेनिन के 'डेमोक्रेटिक सेंट्रलिज़्म' तत्व के कान्ट्राडिक्शन के बारे में वास्तव में तन्मय होकर चर्चा करने लगा था। बीच में लेनिन का कोई उद्धरण याद नहीं आया तो उमा से कहा, "उमा, ज़रा वहाँ से लेनिन का 'कलेक्टेड वर्क्स' तो देना।" उमा ने किताब लाकर सामने रख दी। "मिस्टर सन्नवीरय्या से भी जल्दी यह सीख रही है। इसमें विचार-शक्ति भी काफ़ी है।" उमा की प्रशंसा करके अण्णाजी उद्धरण ढूँढ़ने लगा। उमा कॉफ़ी लाने नीचे चली गयी।

कृष्णप्पा ने उस दिन घोर ईर्ष्या का अनुभव किया। उमा की चाल में दिखायी देने वाली प्यारी थकावट ने उसके दिल को झकझोरा। वह बहुत बेचैन हो उठा कि अण्णाजी की भाँति वह क्यों नहीं है! अण्णाजी ऐसा तन्द्रालु आदमी था जिसकी देह भूख-प्यास से नहीं तड़पती थी। ऐसे आदमी को जब अपनी कामना की वस्तु एक औरत के ज़रिए इतनी आसानी से प्राप्त हो सकती है तो उसके लिए यह क्यों सम्भव नहीं? कल्पना में भी वह गौरी को नंगा नहीं देख सकता। अण्णाजी के मर जाने के बाद भी कृष्णप्पा में यह ईर्ष्या रही है। इस ईर्ष्या से कृष्णप्पा तभी मुक्त हो पाया था, जब लूसिना ने अपने होंठ और जिह्वा की नोक से उसके सारे बदन को अंगारे का बिछौना बनाकर चीते जैसी अपनी सुगठित देह को उस पर सुलाया था। कृष्णप्पा को सहसा खड़े होते देख अण्णाजी ने बिना किसी याचना के कहा, "जाओ नहीं, बैठे रहो। आशंका से उमा तड़प उठेगी। तुम्हारा अनुमान ठीक है, किन्तु यह सब मेरे बस से बाहर का है।"

ाजी को इतना सहज देखकर कृष्णप्पा चौंक गया।



ंचल की ओट किये, सिन्दूर का बड़ा-सा टीका लगाये, नाक में नथ ाले और थोड़ा-सा झुककर कॉफ़ी लिये उमा को देखकर कृष्णप्पा और मी अधिक चौंक गया। तो औरत पाप-प्रज्ञा से न कराह कर सामाजिक वन्धन को लाँघ सकती है। बड़ी प्यार-भरी आवाज़ में अण्णाजी ने कहा, "बैठ जाओ, उमा। तुम दोनों से एक सीरियस बात करनी है।" इसके बाद उसे सामने बिठा लिया और अपनी विशिष्ट शैली में पढ़ाई शुरू की:

"अब तक समाज ने उत्पादन के जितने भी सम्बन्ध निर्मित किये हैं, वे सभी मनुष्य की आजादी को कुंठित करने वाले हैं। उदाहरण के लिए, मर्द और औरत का ही सम्बन्ध ले लो। अन्य वस्तुओं की तरह औरत भी एक मिल्कियत बन गयी है। इसीलिए मनुष्य ने अमुक को ख़ुद की औरत और अमुक को पराई औरत कहकर विभाजन किया है। इस तरह अपनी मिल्कियत को बचाये रखने की व्यवस्था उसने फ़्यूडल और कंपिट-लिस्ट पद्धति से की है। ये सभी पद्धतियाँ मनुष्य के सहज विकास में रुकावट पैदा करती हैं। और साथ ही हमारा लिबिडो—काम-जीवन—अस्वाभाविक वन्धनों का शिकार हो जाता है। यह पूंजीवादी अर्थव्यवस्था न्यूनता के आधार पर खड़ी है—बनावटी न्यूनता और शोषण। यह बात काम-जीवन में भी लागू होती है। ठीक समृद्धि में मनुष्य की रोटी कपड़ा, आवास, आराम की आवश्यकताएँ तथा सांस्कृतिक आवश्यकता जैसे-जैसे सप्लाई होती जायेंगी, मनुष्य के अन्तिम छुटकारे के लिए तैयार हो जाता है। सपने को कठोर पीड़ा और संकट का सामना क वाले काम-जीवन से सम्वन्धित निषेधों को तोड़कर मर्द और औरत

कारा पाते हैं। जिसके साथ शादी हुई हो, केवल उसी से और वह भी नियमानुसार देह के सुख पाने की अड़चनें नहीं रहेंगी। वर्ग-रहित समाज में पूंजी की अनिवार्यता नहीं रहेगी। तब सारी देह छुटकारा पाकर सुख का फव्वारा बनेगी। इस सुख का साधन ही मनुष्य में नैतिकता ला देता है। वह जिसका उपभोग कर रहा है, वह अमूल्य है, स्वतंत्र है—इस धारणा से बढ़कर नैतिकता और कहाँ है?"

"क्या यह समझ लिया जाये कि तुम अपने जीवन-विधान का समर्थन करने के लिए ऐसी दलील पेश कर रहे हो?" उमा की उपस्थिति को भूलकर कृष्णप्पा ने तीखी आवाज में कहा।

"मेरी बात छोड़कर सोचो! सुनो कृष्णप्पा, तुम ठहरे किसान वर्ग के। तुम्हारे पूर्वज भू-स्वामी रहे हैं। इसलिए औरत के बारे में मूलत तुम फ्यूडल हो।" अण्णाजी ने कुछ मसखरेपन से कहा।

"स्वच्छन्द जीवन न जीने में विश्वास रखना और औरत को पवित्र मानना फ्यूडल है तो इसमें क्या हर्ज है?"

"औरत क्यों पवित्र है, बताओ तो सही? क्योंकि वह मिल्कियत है। ऐसी बात कहने वाले ही औरतों की पिटाई करते हैं। औरतों को रसोई, बनाव-शृंगार, संगीत मात्र के लायक समझते हैं। अपने साथ सम्भोग के लिए राजी होने वाली औरत को ओछा समझते हैं...।"

अण्णाजी की आखिरी बात से कृष्णप्पा को पीड़ा हुई। मानो मर्मस्थल पर चोट की गयी हो। अण्णाजी के सामने उमा निष्पाप औरत की तरह बैठी थी, किन्तु उसे रात में पति को भी अपनी देह सौंपनी थी। चन्नवीरय्या के दाँतों पर तो सोने का वरक चढ़ा हुआ है। क्या उसके साथ उसकी देह सुख का फव्वारा बनेगी जैसी कि अण्णाजी के साथ से बनी है? अगर नहीं तो वह कैसे पति को देह सौंपती है? यह सोचकर कृष्णप्पा का सारा व्यक्तित्व विरोध कर उठा था कि एक औरत दो के बीच बाँटी नहीं जा सकती। किन्तु वह बोला नहीं। शायद उमा पति के साथ यंत्रवत रहकर अण्णाजी के साथ ही वास्तव में मिलती होगी। ऐसी हालत में उसे पति को छोड़ देना चाहिए। अगर उमा सामने न होती तो अण्णाजी के साथ इसकी चर्चा की जा सकती थी। यह सोचकर वह चुप बैठा रहा।

उस दिन शाम को जब वह गौरी के घर गया तो इसी सोच में डूबा हुआ था। उसे गौरी चाहिए, लेकिन उसके साथ वह देहात में जाने वाली नहीं। शादी के बिना अपने साथ सोने के लिए कहना उसे एक भोग की वस्तु समझना है। इसके लिए अगर वह मान भी जाती है तो बाद में यक़ीनन वह उसे क्षुद्र समझने लगेगा। इस दुविधा में फँसा कृष्णप्पा गौरी के प्रश्नों का उत्तर 'हाँ', 'हूँ' में देकर लौट आया था। दूसरे दिन पहाड़ी पर वैरागी के पास जा बैठा। वह उस दिन वाली पुस्तक ही पढ़ रहा था। कृष्णप्पा को बेज़ारी हुई कि उससे क्या पूछे ? वैरागी रसोई की तैयारी में लगा तो कृष्णप्पा उठ खड़ा हुआ। शायद वैरागी की इच्छा कृष्णप्पा को रोक लेने की हुई होगी। किन्तु उसके चेहरे से अनुमान लगाया कि वह अपने नियम के अनुसार उसे न रोककर चुप है। इस तरह अपने रास्ते को प्रयत्नपूर्वक शुष्क नहीं करना है, यह सोचकर पहाड़ी से उतर पड़ा।

जब उसकी पत्नी व्हील-चेयर पर उसे ठेलने लगती है तो वह सोचा करता है, 'मैं पत्नी को मारने गया हूँ। एक ही उद्देश्य के लिए जीवन बिताकर भी उसमें सफल न हो सका और अब सूखता जा रहा हूँ। धीरे-धीरे मरूँगा। मेरे यहाँ कोई भी अपनी प्रेम-कहानी नहीं सुनायेगा। वे दल-बदलुओं या दल बदलने जा रहे लोगों की ख़बरें ही लाते हैं। मुझे इससे क्या लेना ?'

उसे चिढ़ होने लगती है कि शरीर के दुर्बल होने से ही ऐसे विचार क्यों सताया करते हैं ?

"अरे नागेश !" वह हाँक लगाता है। युवजन सभा का कार्यकर्ता नागेश सामने आकर पूछता है, "क्या है, सर ?"

"किसी लड़की से तुमने कभी इश्क-विश्क किया है ?" वह हँसकर पूछता है।

"मैं ? गौड़ा जी, उसके लिए फ़ुरसत ही कहाँ है ? देश की इतनी सारी समस्याओं के बीच...।"

नागेश हँसी से अछूता रहकर जब संजीदगी से बातें करने लगता है तो कृष्णप्पा कहता है, "अच्छा, जाने दो। यह स्टेटमेंट लिख लो।"

उस दिन के लिए आवश्यक किन्तु अन्य राजनैतिक व्यक्ति जिसमें

दख़ल देने से डरते हैं, ऐसी बातें लिखवाता है। नागेश बड़े चाव से लिख लेता है। नागेश के सुडौल चेहरे पर अभी दाढ़ी-मूंछें निकल रही थीं। कंधे तक बाल बढ़े हुए थे। कृष्णप्पा उसे प्यार और मसख़रेपन से देखता है। इसी उम्र में वह भी 'अमुक आदमी' कहलाने की चाह में राजनीति में उतर पड़ा था। फिर टाँग मोड़ने की चेष्टा करते हुए सोचता है : गौरी देशपांडे को आने के लिए कल चिट्ठी लिखवानी चाहिए। अगर उसे आज भी मेरे प्रति प्रेम होता तो क्या वह आये बिना रहती ? सुना है, दिल्ली में माँ के साथ रहती है। हर रोज़ पत्र लिखवाने को मन तो करता है, लेकिन उसे टालता रहता है कि शायद वह उसकी यह अवस्था देख न पाये।

आज वह मरणासन्न पड़ा है। क्या वह साबुत बचा है ? यही प्रश्न उसे कोंचता रहता है।



व्हील-चेयर पर बैठा कृष्णप्पा जब इस प्रकार विचारों में डूबा होता है तो सहसा उसकी आँखों के सामने आ जाते हैं—मठ का प्रबन्धक, नरसिंह भट्ट, जो उसकी तीव्र भर्त्सना का लक्ष्य था; सुपारी के बगीचे वाला शिवनंजप्पा; राज्य का मुख्यमंत्री वीरभद्रप्पा जिसने पी० डब्ल्यू० डी० विभाग में लाखों की रकम पर हाथ साफ़ किया था, और भयानक चेहरे वाला वारंगल का पुलिस-अधिकारी।

दुबली-पतली टाँगों वाले बच्चों को गोद में लिये, बिखरे बालों वाली औरतें, घुटनों तक मैली धोती पहने किसान आवेश में इन पर धावा बोलते हैं। धीरे-धीरे वे इन्हें मार डालते हैं। उनका ख़ून लाकर उसकी लक़वाग्रस्त टाँग और बाँह पर मलते हैं। "यह ख़ून नहीं, यारो, कबूतर का गरम ख़ून लाओ।" कोई कहता है। कृष्णप्पा हँसता है।

कृष्णप्पा की बेटी गौरी अपने पिता से कुछ कहने आयी थी। उसे सपने में क्रूर निगाहों से घूरते देखकर वह डर जाती है। कृष्णप्पा अपने पाँव उठाने के भाव से सारा मन अपने चरणों में केन्द्रित करता है। फिर उन्हें उठाने की चेष्टा करता है। जो पाँव, कमर से ऊपर उठने की प्रतीक्षा में था, वह सिर्फ़ अँगूठे के पास तनिक ऊपर उठकर रह जाता है। लम्बी साँस छोड़कर कृष्णप्पा फिर दूसरे दिवास्वप्न को लौट जाता है। अब किसान लोग क़त्ल नहीं कर रहे हैं। तुंदिल पेट वाले दुश्मनों के सामने खड़े होकर गम्भीरता से उनकी ख़बर ले रहे हैं।

भाग दो

दरअसल एक घटना ने कृष्णप्पा को देहात में जा बसने तथा किसानों का संगठन करने के लिए बाध्य कर दिया। वह घटना थी अण्णाजी की गिरफ्तारी और हत्या।

अण्णाजी, जैसा कि वह खुद अपना मज़ाक उड़ाते हुए कहता था, इन दिनों चरबी-चढ़ा मुस्टंडा बुर्जुआ जैसा दिखायी देने लगा था। उसने अपनी सारी कहानी उमा से कह सुनायी थी। उसके साथ किसी भी क्षण और कहीं भी भाग निकलने के लिए उमा ने अपनी स्वीकृति दे दी थी। अण्णाजी ने इसे उमा का रोमांटिसिज़्म कहकर कृष्णप्पा के सामने मज़ाक भी किया था। किन्तु अण्णाजी के दिल में यह डर था कि उमा उसके लिए तिजोरी से जो पैसा निकाला करती है और उसके साथ जो सम्बन्ध बढ़ गया है, इसका पता एक-न-एक दिन चन्नवीरय्या को जरूर लगकर रहेगा। जब उसका अँग्रेज़ी सीखने का खुमार धीरे-धीरे उतर जायेगा, तब इन दिनों को किसी-न-किसी नतीजे पर पहुँचना ही होगा। कृष्णप्पा अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना अण्णाजी के बखेड़े सुन लेता। जब कृष्णप्पा के आत्मीय होने का पूरा-पूरा यकीन हो गया तो उमा बेझिझक उसकी मौजूदगी में ही अण्णाजी के साथ खूब घुलकर बातें करने लगी। लगता था कि वह अपने मनपसन्द यार के साथ भाग निकलने की तैयारी में थी। पति से बेवफ़ाई करने की तनिक भी शर्म उसमें दिखायी नहीं देती थी। किन्तु कृष्णप्पा ने ग़ौर किया कि उमा का जिस उद्वेग के साथ उससे लगाव था, उसमें अण्णाजी की भावनाओं में खलबली-सी मच गयी थी। अण्णाजी

की अनुपस्थिति में अपनी अभिरुचि के विषय की चर्चा भी नहीं करता था। राजनीति की शुष्क चर्चा—चाहे उमा की समझ में आये या न आये—अण्णाजी जब उसके सामने छेड़ता तो उस पर प्रणय का बुख़ार चढ़ा होता। कृष्णप्पा चौंक उठता। उमा ने सोचा था कि अण्णाजी के साथ वह भी किसी देहात में जाकर मेहनत करेगी। अण्णाजी ने ट्युटोरियल शुरू करने के इरादे से केरल जाने का तय किया था। केरल के एक बढ़ई से, जो तामीरात के काम के लिए घर आया करता था, उमा ने थोड़ी-बहुत मलयालम सीखना भी शुरू किया था—हाट-बाजार की आवश्यकता के अनुसार। पन्द्रह-बीस दिनों के भीतर ही भाग जाने की सभी तैयारियाँ होने लगी थीं। उमा ने अपने निहायत ज़रूरी कपड़ों का एक छोटा-सा ट्रंक अण्णाजी के कमरे में लाकर रख भी दिया था। चन्नवीरय्या जो हर रोज़ क्लब में ताश खेलकर नशे में चूर आधी रात घर आया करता था, इस बात से खुश था कि उसकी बीवी अन्य दोस्तों की बीवियों की तरह हो-हल्ला नहीं करती। उसे ग़रूर था कि बीवी उसके बस में है।

एक दिन दोपहर के समय अचानक पुलिस की जीप घर के सामने आकर रुक गयी। उस समय अण्णाजी उमा से गुलछर्रे उड़ाते बैठा था। दरवाज़े पर दस्तक हुई। शायद कृष्णप्पा होगा, इस विचार से अण्णाजी ने दरवाज़ा खोला। ख़ुद डी० एस० पी० सामने शैतान बनकर खड़ा था। थाने चलने के लिए कहा। उमा सन्न खड़ी रही।

"उमा, डरो नहीं। शायद इनको ग़लतफ़हमी हुई है। कृष्णप्पा को थाने भेज देना। मुझे शायद ज़मानत की ज़रूरत पड़ सकती है।" पुलिस पर धाक बिठाने लायक़ शुद्ध अँग्रेज़ी में इतना कहकर अण्णाजी बाहर निकला।

कुछ देर बाद कृष्णप्पा आया तो उमा रोने लगी। कृष्णप्पा से औरतों का रोना देखा नहीं जाता। वह पसोपेश में पड़ गया कि क्या कहे ! तभी उमा ने उसके हाथ में एक हज़ार रुपये थमा दिये। कृष्णप्पा से याचना की कि किसी भी हालत में अण्णाजी को छुड़ा लाये। जब कृष्णप्पा थाने पहुँचा तो पता चला कि अण्णाजी को जीप से सीधे वारंगल रवाना किया जा रहा है। वहाँ उसे अदालत के सामने पेश किये जाने की सूचना देते हुए थानेदार ने

कहा, "उस पर खून का इलजाम है, मिस्टर ! बचकर रहना।"

उमा से मिलने के लिए कृष्णप्पा वापिस आया। तब तक अण्णाजी की गिरफ़्तारी की खबर सुनकर चन्नवीरय्या घर पहुँचकर पत्नी को सांत्वना दे रहा था। "देखिये, कृष्णप्पा ! यह सुना है कि रेवोल्यूशन के नाम पर खून-खराबा करने में उसका हाथ था। यहाँ वह अंडरग्राउंड था। थैंक गॉड, इतने पर ही बला टली। लेकिन मेरी वाइफ़ को उसके प्रति बड़ा रिगार्ड था—उसका नॉलेज देखकर। अगर अपने दोस्त की कुछ मदद करना चाहते हैं तो मेहरबानी करके वारंगल जाइये। खर्चे के लिए यह लीजिये पाँच सौ। अण्णाजी की एक माह की फीस भी देनी थी। लेकिन मेहरबानी करके मुझे इसमें इन्वॉल्व मत कीजिये। मेरा जो बिज़नेस है—बड़ा डेलिकेट है।" उसने कहा। रक़म पाकर जब कृष्णप्पा रेलगाड़ी से वारंगल के लिए रवाना होने लगा तो पता नहीं, धुत् महेश्वरय्या कहाँ से सामने टपक पड़े ? "हाँ तो मैं भी चलता हूँ यार, तेरे साथ। मैं थोड़ी-बहुत तेलुगू भी बोल लेता हूँ।" महेश्वरय्या ने कहा।

महेश्वरय्या के बाल पहले से भी ज्यादा पक गये थे। माथे के सिन्दूर से पता लगता था कि वे अभी-अभी देवी-पूजा के किसी मंडल को पूरा करके आ रहे हैं। महेश्वरय्या ने पहले दर्जे के दो टिकट ख़रीद लिये। कृष्णप्पा ने अण्णाजी के लिए जहाँ-तहाँ से क़र्ज़ा लिया था और अभी तक अदा नहीं किया गया था, उसे अदा कर दिया। खादी भंडार जाकर कृष्णप्पा के लिए छह महीन धोतियाँ, अचकन के लिए कपड़ा और एक ऊनी कोट का कपड़ा भी खरीदकर सिलाने के लिए दे दिया। दर्ज़ी को बताया कि आस्तीन कितनी ढीली हों, गले की पट्टी कैसी हो, नीचे आते-आते अचकन कैसा चौड़ा बनता जाये। कृष्णप्पा से बोले, "अब से तुझे काँछेदार धोती पहननी होगी, यार।" शाम की गाड़ी से दोनों वारंगल की दिशा में निकल पड़े।

दो दिन की यात्रा के बाद वारंगल पहुँचे। झट टैक्सी पकड़कर थाने को भागे। वहाँ जब पूछा कि "आर० एल० नायक को कहाँ रखा गया है ?" तो कृष्णप्पा तथा महेश्वरय्या को बैठने के लिए कहे बिना पुलिस-अधिकारी ने पूछा, "वे तुम्हारे क्या लगते थे ?"

की अनुपस्थिति में अपनी अभिरुचि के विषय की चर्चा भी नहीं करता था। राजनीति की शुष्क चर्चा—चाहे उमा की समझ में आये या न आये—अण्णाजी जब उसके सामने छेड़ता तो उस पर प्रणय का बुख़ार चढ़ा होता। कृष्णप्पा चौंक उठता। उमा ने सोचा था कि अण्णाजी के साथ वह भी किसी देहात में जाकर मेहनत करेगी। अण्णाजी ने ट्युटोरियल शुरू करने के इरादे से केरल जाने का तय किया था। केरल के एक बढ़ई से, जो तामीरात के काम के लिए घर आया करता था, उमा ने थोड़ी-बहुत मलयालम सीखना भी शुरू किया था—हाट-बाज़ार की आवश्यकता के अनुसार। पन्द्रह-बीस दिनों के भीतर ही भाग जाने की सभी तैयारियाँ होने लगी थीं। उमा ने अपने निहायत ज़रूरी कपड़ों का एक छोटा-सा ट्रंक अण्णाजी के कमरे में लाकर रख भी दिया था। चन्नवीरय्या जो हर रोज़ क्लब में ताश खेलकर नशे में चूर आधी रात घर आया करता था, इस बात से खुश था कि उसकी बीवी अन्य दोस्तों की बीवियों की तरह हो-हल्ला नहीं करती। उसे ग़रूर था कि बीवी उसके बस में है।

एक दिन दोपहर के समय अचानक पुलिस की जीप घर के सामने आकर रुक गयी। उस समय अण्णाजी उमा से गुलछर्रे उड़ाते बैठा था। दरवाज़े पर दस्तक हुई। शायद कृष्णप्पा होगा, इस विचार से अण्णाजी ने दरवाज़ा खोला। खुद डी० एस० पी० सामने शैतान बनकर खड़ा था। थाने चलने के लिए कहा। उमा सन्न खड़ी रही।

"उमा, डरो नहीं। शायद इनको ग़लतफ़हमी हुई है। कृष्णप्पा को थाने भेज देना। मुझे शायद जमानत की ज़रूरत पड़ सकती है।" पुलिस पर धाक बिठाने लायक़ शुद्ध अँग्रेज़ी में इतना कहकर अण्णाजी बाहर निकला।

कुछ देर बाद कृष्णप्पा आया तो उमा रोने लगी। कृष्णप्पा से औरतों का रोना देखा नहीं जाता। वह पसोपेश में पड़ गया कि क्या कहे! तभी उमा ने उसके हाथ में एक हजार रुपये थमा दिये। कृष्णप्पा से याचना की कि किसी भी हालत में अण्णाजी को छुड़ा लाये। जब कृष्णप्पा थाने पहुँचा तो पता चला कि अण्णाजी को जीप से सीधे वारंगल रवाना किया जा रहा है। वहाँ उसे अदालत के सामने पेश किये जाने की सूचना देते हुए थानेदार ने

कहा, "उस पर खून का इलजाम है, मिस्टर ! बचकर रहना।"

उमा से मिलने के लिए कृष्णप्पा वापिस आया। तब तक अण्णाजी की गिरफ़्तारी की ख़बर सुनकर चन्नवीरय्या घर पहुँचकर पत्नी को सांत्वना दे रहा था। "देखिये, कृष्णप्पा ! यह सुना है कि रेवोल्यूशन के नाम पर खून-ख़राबा करने में उसका हाथ था। वहाँ वह अंडरग्राउंड था। थैंक गॉड, इतने पर ही बला टली। लेकिन मेरी वाइफ को उसके प्रति बड़ा रिगार्ड था—उसका नॉलिज देखकर। अगर अपने दोस्त की कुछ मदद करना चाहते हैं तो मेहरबानी करके वारंगल जाइये। खर्च के लिए यह लीजिये पाँच सौ। अण्णाजी की एक माह की फ़ीस भी देनी थी। लेकिन मेहरबानी करके मुझे इसमें इन्वॉल्व मत कीजिये। मेरा जो बिज़नेस है—बड़ा डेलिकेट है।" उसने कहा। रकम पाकर जब कृष्णप्पा रेलगाड़ी से वारंगल के लिए रवाना होने लगा तो पता नहीं, धुत् महेश्वरय्या कहाँ से सामने टपक पड़े ? "हाँ तो मैं भी चलता हूँ यार, तेरे साथ। मैं थोड़ी-बहुत तेलुगू भी बोल लेता हूँ।" महेश्वरय्या ने कहा।

महेश्वरय्या के बाल पहले से भी ज्यादा पक गये थे। माथे के सिन्दूर से पता लगता था कि वे अभी-अभी देवी-पूजा के किसी मंडल को पूरा करके आ रहे हैं। महेश्वरय्या ने पहले दर्जे के दो टिकट ख़रीद लिये। कृष्णप्पा ने अण्णाजी के लिए जहाँ-तहाँ से कर्जा लिया था और अभी तक अदा नहीं किया गया था, उसे अदा कर दिया। खादी भंडार जाकर कृष्णप्पा के लिए छह महीन धोतियाँ, अचकन के लिए कपड़ा और एक ऊनी कोट का कपड़ा भी ख़रीदकर सिलाने के लिए दे दिया। दर्जी को बताया कि आस्तीन कितनी ढीली हों, गले की पट्टी कैसी हो, नीचे आते-आते अचकन कैसा चौड़ा बनता जाये। कृष्णप्पा से बोले, "अब से तुझे किनारदार धोती पहननी होगी, यार।" शाम की गाड़ी से दोनों वारंगल की दिशा में निकल पड़े।

दो दिन की यात्रा के बाद वारंगल पहुँचे। झट टैक्सी पकड़कर थाने को भागे। वहाँ जब पूछा कि "आर० एल० नायक को कहाँ रखा गया है?" तो कृष्णप्पा तथा महेश्वरय्या को बैठने के लिए कहे बिना पुलिस-अधिकारी ने पूछा, "वे तुम्हारे क्या लगते थे?"

"दोस्त !" कृष्णप्पा ने कहा।

"ख़बरदारी से जवाब दो। किस नाम से तुम्हारे दोस्त बने थे ? उनके बारे में तुम क्या-क्या जानते हो ?"

"अदालत में जवाबदेही होगी न। अब क्यों ?"

"क्या आर० एल० नायक के नाम से ही तुमसे परिचय हुआ था ?"

महेश्वरय्या ने, जिन्होंने काफ़ी दुनिया देखी थी, कृष्णप्पा को बोलने न देकर कहा, "उस नाम से गिरफ़्तार किये जाने के कारण अनुमान से ऐसा कहा है। हमारे यहां अण्णाजी के नाम से वे इन्हें अँग्रेज़ी ट्यूशन पढ़ाया करते थे।"

"अच्छा, यंग मैन, जानते हो वह कौन था ? तेलंगाना में ज़मींदारों का ख़ून करवाने के लिए कुछ कल्प्रिट्स को तैयार करते रहने वाला सो-काल्ड कम्युनिस्ट लफंगा था। तुमने खद्दर पहना हुआ है, इसलिए वार्न किये दे रहा हूँ। कभी किसी से यह न कह बैठना कि उससे तुम्हारी कोई जान-पहचान थी। उसका कभी का ख़ात्मा किया जा चुका है। देखा नहीं ?" यह कहकर उस दिन का एक अँग्रेज़ी अख़बार कृष्णप्पा के हाथ में थमा दिया।

अख़बार में गेरुए कपड़े पहने हुए व्यक्ति की फ़ोटो के नीचे 'भगवाधारी गुनाहगार की हत्या' छपा था। पुलिस की रपट में लिखा था : 'कर्नाटक में भूमिगत इस गुनाहगार को जब पुलिस जीप में ला रही थी, तब किसी जँगल में उस व्यक्ति के अनुयायियों ने जीप पर धावा बोल दिया। इस मुठ-भेड़ में दो पुलिस कांस्टेबल घायल हुए। गुनाहगार आर० एल० स्वामी उर्फ़ अण्णाजी इस गोलीबारी में फँसकर मर गया।' आगे यह ख़बर भी छपी थी कि उसके अनुयायियों में कुछ लोग अभी शायद कर्नाटक में भूमिगत हैं और कर्नाटक की पुलिस उनके लिए जंगलों की छानबीन कर रही है।

कृष्णप्पा के मुँह पर हवाइयां उड़ने लगीं। सामने ख़ाकी वर्दी में हाथ में डंडा लिये दुहरे बदन का अधिकारी खड़ा था। कृष्णप्पा उसे हुंकारते हुए देखता रहा।

"आख़िरी बात पढ़ी न ? बच के रहना। अगर ख़ुद को उस हरामज़ादे

की जान-पहचान वाला कहोगे तो तुम्हें भी गिरफ़्तार करना पड़ेगा।" दुहरे बदन के अधिकारी ने कहा।

"क़ातिल, सुअर, साला, मादरचो...!"

झपटकर कृष्णप्पा ने पुलिस-अधिकारी का गला पकड़ लिया। दौड़कर दो सिपाहियों ने उसे छुड़ाया। महेश्वरय्या ने गिड़गिडाकर हाथ जोड़कर तेलुगू में कहा, "बड़ा गुस्से वाला लड़का है, साहब। माफ कीजिये।" अपने को सम्भालकर कृष्णप्पा गरज उठा, "इस कमीने के सामने हाथ मत जोड़िये।"

"तुझमें इतनी मस्ती है तो देख लूँगा। असाल्ट की नालिश दाग दूँगा। मजिस्ट्रेट के सामने पेश करके तहकीकात के लिए तुझे यहीं रोक लूँगा।" इतना कहकर पुलिस-अधिकारी खड़ा हो गया। "इस सिन्दूर वाले पड़े को यहाँ से ले जाओ। कड़ी नज़र रखना। कहीं भाग न जाये। सभी बहुरुपिये क़ातिल हैं।" उसने अपनी पैंट ऊपर उठाकर और कुर्ते को नीचे खींचते हुए मूँछों पर ताव दिया।

एक कान्स्टेबल आगे बढ़कर महेश्वरय्या को बाहर ठेलने लगा।

"मैं किसी वकील की व्यवस्था करूँगा। घबरा मत। देवी का स्तोत्र पढ़ते रहना।" यह कहकर महेश्वरय्या बाहर चले गये।

चूहे जैसे चेहरे वाले एक ठिगने मजिस्ट्रेट के सामने कृष्णप्पा को पेश किया गया। पुलिस-अधिकारी ने बयान दिया कि कृष्णप्पा ने उस पर असाल्ट करने की चेष्टा की और बताया कि वह स्वामी का साथी है। अत उसे तहक़ीक़ात के लिए थाने के सुपुर्द करने की माँग की। कृष्णप्पा आँखें फाड़कर उसे घूरते हुए चुपचाप खड़ा रहा। मजिस्ट्रेट की इजाज़त पाकर अधिकारी कृष्णप्पा को शहर के किसी दूसरे थाने में ले गया और वहाँ पिछवाड़े की एक कोठरी के सामने पहुँचकर बग़ल में खड़े कान्स्टेबल को दरवाज़ा खोलने को कहा। चरमराते हुए दरवाज़ा खुला।



उस कोठरी में एक भी खिड़की नहीं थी। न ही हवा आने की तनिक भी गुंजाइश। वहाँ की सड़ाँध नाक में घुस गयी। कान्स्टेवल ने कृष्णप्पा को भीतर ठेलकर उसके पाँव तले एक कम्वल फेंक दिया। फिर दरवाज़े से दाख़िल हुई रोशनी में पेशाव और पाख़ाने के लिए जंग-चढ़ा एक भगोना दिखा दिया। वैसा ही जंग-चढ़ा हुआ एक और वर्तन वताकर उर्दू में कहा कि उसमें पीने का पानी रहता है। "दोनों वर्तन अलग-अलग काम के लिए हैं। याद रहे।" यह कहते हुए अधिकारी हँसा। कान्स्टेवल ने कृष्णप्पा की जेव की तलाशी ली। उसमें से डेढ़ हज़ार रुपये, सिगरेट, दियासलाई की डिविया निकालकर अधिकारी को सौंप दिया।

वारंगल में वेहद गर्मी थी। जैसे ही कोठरी में दाख़िल हुआ, वहाँ की गर्द के कारण कृष्णप्पा की साँस ऊपर-नीचे होने लगी। भीतर की धूमिल रोशनी में मकड़ी के जाले दिखे। अलाव की तरह तपती कोठरी के चारों ओर वह अभी नज़रें दौड़ा ही रहा था कि दरवाज़ा वन्द हो गया। फिर अँधेरा छा गया।

गर्द-गुवार से ढँकी ज़मीन पर कम्वल विछाकर कृष्णप्पा वैठने को हुआ। किन्तु उमस के कारण कम्वल पर वैठने में घवराहट हुई। पाँव करक रहे थे, इसलिए कम्वल पर ही वैठ अचकन उतारकर मुँह-वदन पोंछ लिया। सिगरेट पीने को मन हुआ। कान्स्टेवल ने जेव ख़ाली कर दी थी, फिर भी, कुछ-न-कुछ वचे रहने की आशा में हर एक जेव को टटोलकर देखा।

उसे सवसे पहले जो वात सूझी, वह यह थी कि ऐसे समय अक़्ल पर पत्थर नहीं पड़ने देना चाहिए। सहसा इस तरह हड़पायी गयी क्षुद्रता से

हिलना नहीं होगा। काफी विश्रांति पाकर आगामी स्थितियों का सामना करने के लिए अपनी सारी शक्ति को सँजोए रखना होगा। फिर वह चुभते कम्बल पर पाँव तानकर सो गया। पसीना छूटने के कारण प्यास लगी। पानी वाला बर्तन आँखों को दिखायी नहीं पड़ा। उसमें रखे हुए पानी को पीने की कल्पना से ही घिन होने लगी।

आँखें बन्द करनी चाहीं। ज़रा-सा हिलने-डुलने पर भी धूल उठकर नाक में भर जाती थी। दरवाज़े की दरार से रोशनी की किरण पाने की उम्मीद की। किन्तु किवाड़ एक ही फलक का बना हुआ था। छोटा था और मज़बूती से बन्द था। यहाँ रहते हुए दिन और रात का पता लगाना असम्भव था। कृष्णप्पा पहली बार जेल में बन्द नहीं हुआ था। सन् बयालीस में और फिर मैसूर की मुक्ति के लिए सैंतालीस में वह जेल गया था। उन दिनों जेल से मतलब था सभी साथियों द्वारा मिलकर गाना गाने और खाना पका कर खाते रहने की एक जगह मात्र। अण्णाजी ने कहा था कि व्यवस्था का ही विरोध करने पर सरकार के वर्ग-लक्षण का पता चल जाता है—अँधेरे में कृष्णप्पा को यह बात याद आयी। किसी जानवर की भाँति अण्णाजी को मार डाला गया था। एक औरत के साथ घर बसा कर शायद अमन के साथ जीने का सपना देखा था अण्णाजी ने। इस बारे में सोचते हुए सहसा कृष्णप्पा का बदन क्रोध से जल उठा। सोए-सोए सपना देखने लगा कि कम्बल पर उसकी काली देह अगर भयानक अजगर बन जाये और अण्णाजी के क़ातिलों को डँसकर ज़हर से उनकी जान ले ले तो?...सहसा अपने बदन में कई जगह डंक मारे जाने का अहसास हुआ तो उठकर बैठ गया। हथेलियों की मसलन में फँस कर पिचके जाने से उठी हुई बदबू से पता चला कि सुई की तरह शरीर-भर में कोंचते रहने वाले जीव खटमल थे। उठकर सारा बदन खुजा लिया, कभी गरदन पर तो कभी पीठ पर—जहाँ हाथ न पहुँच पाते, खटमल रेंगते रहे। तब वह अचकन से सारे बदन की रगड़ाई करते हुए उठ खड़ा हुआ।

इस तरह पता नहीं, कितना समय बीत गया था! एक कोने से सरसराहट की आवाज़ सुनायी पड़ी। शायद थाली की आवाज़ होगी। दो-चार चूहे अपने अगले पाँवों से उसे खरोंच रहे होंगे। हाँ, चूं-चूं की

आवाज भी सुनायी दे रही है। शायद कुछ खाना होगा जिसे पहले वाला कोई क़ैदी छोड़ गया होगा। चूहे उसे सफ़ाचट करके थाली के तल को खरोंच रहे हैं—चिपके हुए कणों के लिए। जिस ओर से आवाज़ आ रही थी, उसी ओर टकटकी बाँधे खड़ा रहा। खटमल सारे वदन से झड़ चुके थे। पाँव के ज़रिए कहीं वे फिर न चढ़ जायें, इस विचार से वह पाँव रगड़ते हुए खड़ा था। ज़रा-सी रोशनी होती तो चूहों की आँखें चमक सकती थीं। इस कोठरी में शायद कहीं चूहों का बिल होगा। कृष्णप्पा अपनी पढ़ी हुई सारी कहानियाँ याद करने लगा कि इस प्रकार की कोठरी में किसी आदमी द्वारा दिन-रात बिताये जाने का प्रसंग किसमें आया है। उसे याद आया कि 'काउंट ऑफ़ मांटिक्रिस्टो' कहानी का नायक अपने कमरे में एक सुराख़ को धीरे-धीरे बड़ा बनाते हुए भाग निकला था। किस औज़ार से उसने सुराख़ बनाया होगा? उसे पहरेदारों से कैसे छिपाये रहा होगा? आदि बातें याद करते हुए वह खड़ा रहा। जहाँ चूहों का बिल है, क्या उसी को बड़ा बनाता जाये? उसके लिए आवश्यक औज़ार ! थाली क्या स्टील की होगी? न। यदि स्टील की हुई तो उसे पिचकाकर खोदने का औज़ार बनाया जा सकेगा।

जिधर से आवाज़ आ रही थी, उस कोने की ओर कृष्णप्पा दबे पाँव बढ़ा। पाँव तले कुछ मुलायम-सी चीज़ आ गयी। सारा वदन सिहर उठा। चूहे से घिन्ना कर काँपने लगा। घबराहट में थाली पर पाँव रखा तो वह उलट गयी। फिर थाली को ढूंढ कर उठा लिया। सैकड़ों जगह से पिचकी हुई तथा बिना किनारों वाली अल्मुनियम की थाली थी। उससे बजबजाहट की बू पाकर फेंक दिया। गर्द पर धप्प की आवाज़ के साथ गिर पड़ी।

बहुत दिन पहले एक बार बुद्धि-भ्रंश हुआ था। उस तरह अब न होने पाये और ठोस बना रहे, इस विचार से वहाँ से भाग निकलने के उपाय फिर से सोचने लगा। हज़ारों उपाय ढूंढते हुए उनकी कमियाँ और गुणों का अन्दाज़ लगाने लगा।

दरवाज़ा खुलने की किर्रर्र की आहट पाकर वह उसकी ओर मुड़ा। अध-खुले दरवाज़े से रोशनी नहीं आयी। मतलब, रात हो गयी है। रात हो जाने के कारण शायद उमस कुछ कम हुई होगी। दरवाज़े से भीतर

आती हुई तनिक-सी हवा को कृष्णप्पा ने आशा-भाव से देखा।

दरवाजे के सामने खड़ा आदमी उर्दू में कुछ बोला। कृष्णप्पा की समझ में नहीं आया। 'सुअर' कहकर उसका गाली देना-भर समझ पाया। दुहरे बदन वाला अधिकारी नहीं, कर्कश आवाज वाला कांस्टेबल है। वह दियासलाई जलाकर कोठरी में कोई चीज़ ढूँढते हुए गालियाँ सुनाता रहा। उसने दौड़ कर थाली उठा ली और फिर उसे कृष्णप्पा के मुँह पर कोंचते हुए गालियाँ देता रहा। शायद उसने थाली उठाकर देने के लिए कहा था। यह सिपाही दुबला था। नुकीले खुश्क चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूँछें दियासलाई की रोशनी में दीख पड़ी।

किवाड़ बंद करके वह चला गया। कुछ देर बाद दरवाजा खोलकर "अरे ओ!" कहा। कृष्णप्पा दरवाजे की ओर गया। वह थाली आगे बढ़ाए खड़ा था। वही थाली थी। कृष्णप्पा अँग्रेज़ी में बोला, "मुझे खाना नहीं चाहिए।" सिपाही ने थाली कोठरी में रखकर दरवाज़ा बंद कर दिया। वह उर्दू में कुछ कहते हुए चला गया।

थाली उठाकर बाहर भी नहीं फेंकी जा सकती थी। उसमें रखे दाल-भात की बू से कृष्णप्पा को मिचली-सी आयी। वह मुँह और नाक बंद करके हैरान-सा खड़ा रहा। इस खाने पर चूहे टूट पड़ेंगे। थाली को एक कोने में पहले वाली जगह पर रखकर कोठरी के बीचोंबीच आ खड़ा हुआ। फिर वही सावधानी से क़दमों पर क़दम रखते हुए और कोठरी की दीवार टटोलते हुए धीरे-धीरे चहलक़दमी करने लगा।

पलस्तर झड़ जाने के कारण कहीं-कहीं से खुरदरी दीवार। सभी खटमलों ने शायद इन्हीं दरारों में चौकड़ी जमायी होगी। टटोलते हुए आगे बढ़ने पर पानी और पाखाने के बर्तनों से जा टकराया। पानी से मुँह धो कर आगे बढ़ा। कोठरी के दूसरे कोने में सीमेंट का बना एक चबूतरा था। शायद सोने के लिए बनाया गया होगा। कम्बल से उसे पोंछा। बचे हुए पानी से ऊपरी हिस्सा धोकर बैठ गया। सोना चाहा, लेकिन खटमलों का डर था। कोने में कितने ही चूहे थाली पर टूट पड़े थे।

कोठरी में पाँव लटका कर बैठने लायक एक साफ-सुथरी जगह मात्र पाकर उसे जो हर्ष हुआ, उससे वह खुद चौंक उठा। यह देह कैसे मस्त हो

जाती है ! उसे झपकी लग ही रही थी कि बाहर शोरगुल सुनायी पड़ा।

चूड़ियों की आवाज़ के साथ जूतों की आहट। मर्द हँसते हुए उर्दू में कुछ छेड़छाड़ करता है। 'सिनेमा' शब्द सुनायी पड़ता है। मर्द मौज में बातें कर रहा है। दुहरे बदन वाले अधिकारी की आवाज़ लगती है। अगर वही हो तो—वह अँग्रेज़ी जानता है। उससे सिगरेट का पैकेट माँगा जा सकता है। कृष्णप्पा कान लगाकर सुनता रहा। किसी के छूटकर भागने की आवाज़। मर्द चिल्लाकर कुछ कह रहा है। औरत रो रही है। वह तेलुगू में बोल रही है, इसलिए कृष्णप्पा थोड़ी-बहुत बात समझ पा रहा है। वह गिड़गिड़ाकर कह रही थी कि वह सिनेमा देखने गयी थी। साथ के आदमी के साथ अगले माह उसकी शादी होने वाली है। उस मर्द को एक कांस्टेबल कहीं और ले गया है। उसे यहाँ लिवा लाये। मर्द ने हँसते हुए उर्दू में कुछ कहा। दो-एक पल की ख़ामोशी के बाद तेलुगू में औरत चिल्लाने लगी, "छोड़ो, छोड़ो, मुझे छोड़ दो।" चबूतरे से उठकर कृष्णप्पा दरवाज़े के पास आया और ज़ोर-ज़ोर से दस्तक देने लगा।

"अरे ओ, क्या तुम इंसान हो या शैतान ? छोड़ दो उसे !" वह अँग्रेज़ी में चिल्लाया।

औरत का रोना थम गया था। मर्द की साँसें चढ़ रही थीं। कृष्णप्पा ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़े पर लात मारने लगा। "दरवाज़ा खोलो—दरवाज़ा खोलो !" वह चिल्लाने लगा। जब अपनी ही चीख़ कानों के परदे फाड़ने लगी तो उसकी टाँगें सुन्न हो गयीं। वह वहीं ढेर होकर बैठ गया। ग़ुस्सा और नफ़रत भी मनुष्य के सामने ही कारगर होते हैं, ऐसी जगह नहीं। इस सच्चाई को जानकर वह चौंक उठा। यह उसका पहला अनुभव था। इसका अहसास शायद उस वैरागी या अण्णाजी को भी न हुआ हो जिनका प्रयोजन प्रतिहिंसा से कभी पीछे हटना नहीं था, अथवा महेश्वरय्या को भी न हुआ हो, जो गुह्य साधना द्वारा सदा मुक्ति की तैयारी में लगे रहते हैं। लगा कि अब दिन निकलेगा ही नहीं। अगर निकलेगा भी तो इसका पता उसे नहीं चलेगा। ख़ाली थाली खुरचते हुए चूहे आवाज़ कर रहे थे। समय की चिंता जाती रही।

एक सिपाही ने दरवाज़ा खोला। कृष्णप्पा की आँखें अभी रोशनी की

अभ्यस्त हो ही रही थी कि दो सिपाहियों ने दौड़कर उन पर पट्टी बांध दी और हाथ पकड़कर घसीटते हुए उर्दू मे कहा, "चल !" जिधर उसे घसीटा जा रहा था, उस दिशा में कृष्णप्पा चला। उसे एक कुर्सी पर बिठाया गया। बेंत की बुनाई वाली लोहे की कुर्सी—हत्थों वाली। इससे उसका कुछ हौसला बढ़ा और तभी उसकी आंखों की पट्टी उतार दी गयी।

अपने सामने वाले लोगों को कृष्णप्पा ने इस तरह चौंककर देखा मानो वह किसी और दुनिया में चला आया हो। टेबिल के पीछे तीन आदमी एक कतार में बैठे थे। सफ़ाचट हजामत किये हुए चेहरे, सिर पर पीक कैप, कड़क इस्त्री की हुई ख़ाकी वर्दी। तीनों आदमी नक्काशी किये हुए कप-सॉसर में चाय पी रहे थे। टेबिल पर नीला ऊनी कपड़ा बिछाकर ऊपर शीशा रखा गया था—उन तीनों मे से मँझला आदमी शरीफ़ तथा सुशिक्षित लगता था। उसके चश्मा पहने होने के कारण। बायीं ओर वाला एक खिलाड़ी जैसा था। दायीं ओर वाले की मूंछ पकी थी। माथे पर छोटा-सा सिंदूर का टीका था।

मँझले आदमी ने बड़ी शराफ़त से पूछा, "क्या आपके लिए चाय मँगवाऊँ ?"

इन तीनों के पीछे दीवार पर टँगी नेहरू और राजेन्द्रप्रसाद की तसवीरों पर ग़ौर करते हुए कृष्णप्पा बोला, "नहीं ! आपने मुझे यहाँ बेवजह क़ैद कर रखा है। मैं इसके विरोध मे उपवास कर रहा हूँ।" उन लोगों में इंसानियत की झलक पाकर कृष्णप्पा के मन मे फिर विद्रोह की भावना जाग उठी।

"आपकी बेगुनाही का सबूत मिलते ही हम आपको यहाँ एक पल भी नहीं रोक रखेंगे। मेहरबानी करके बताइये कि आपके परिचित [illegible] ने सारे हथियार कहाँ छिपाकर रखे हैं ?"

"मैं कुछ नहीं जानता।"

"आप बड़े मासूम लगते हैं। आप जैसे आदर्शवादियों को [illegible] फँसाकर ही अण्णाजी जैसे लोग देश के लिए ख़तरनाक काम करते [illegible] हैं। अगर आप सच-सच बता देंगे तो हम आपको छोड़ देंगे। हम [illegible]

कि आप पढ़-लिख कर आगे बढ़ें। अब मुझे ही देखिये। राजनीति-शास्त्र में एम० ए० करने के बाद ही इस काम में आया हूँ। मेरी दायीं ओर वाले जैंटलमैन कर्नाटक के हैं। कर्नाटक वालों के लिए वारंगल ऐतिहासिक महत्व रखता है। जानते हैं न रामप्पा मन्दिर का मामला? ये दूसरे महाशय हैं फ़ेमस क्रिकेटियर ऑफ़ दिस रीजन।"

कृष्णप्पा को ये बातें बड़ी प्यारी लगीं। रामप्पा मन्दिर की बात को बीच में टपका देने का जो अंदाज था उससे मानो वह इशारा कर रहा था कि मैं भी तुम्हारी तरह इंसान हूँ। कृष्णप्पा ने कहा, "मैं अण्णाजी से प्यार करता था। तुम लोगों ने उसका ख़ून किया है। इस संस्कृति को और भी उज्ज्वल बनाने का उद्देश्य रखता था अण्णाजी...।" यह बात मुंह से निकल जाने की उसे कसमसाहट हुई। उनकी शराफ़त पर लट्टू होकर अपने दिल की बात उसने क्यों कह डाली!

"यह आप की राय हो सकती है, मिस्टर गौड़!" क्रिकेटियर ने कहा।

सिंदूरधारी जम्हाई लेते हुए इस अंदाज में कन्नड़ में बोला मानो यह कोई ख़ास बात नहीं, रूटीन हो, "मैं गुलबर्गा की तरफ़ वाला हूँ। आप? शिवमोगा की तरफ़ वाले हैं न? ये मेरे कलीग्ज़ बड़े अच्छे हैं। अण्णाजी के सम्पर्क में आने वाले कौन लोग थे? किनको वे चिट्ठी-पत्री लिखा करते थे? इतना-भर बता दीजिये। ये लोग आपको फिर छोड़ देंगे।"

एक ही स्वर में उसने यह बात ख़त्म की थी। कृष्णप्पा को चुप देख कर मँझला आदमी अपनी मँजी हुई अँग्रेजी में बोला, "यंगमैन, तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रहे हैं। वह किस-किस को चिट्ठी लिखा करता था, बता दो। हम जानते हैं कि उसके विमेन-कांटैक्ट्स भी थे...।"

"नहीं। मुझे मालूम नहीं।"

"नाहक तुम अपना सफ़रिंग प्रोलांग कर लोगे। यहाँ से बग़ैर मुँह खोले कोई नहीं गया। हम अपने स्वार्थ के लिए तुमसे पूछताछ नहीं कर रहे हैं। यह देश का काम है। इस देश की सुरक्षा को क़ायम रखने का काम है। नेहरूजी ने क्या कहा है...?"

मँझले आदमी को भाषण के बढ़िया अंदाज़ में बातें करते देखकर

कृष्णप्पा का गुस्सा और भी बढ़ गया। उसने गुस्से में घूरकर ताना देते हुए कहा, "तुम्हारी पुलिस ने कल रात मेरी कोठरी के बाहर क्या हरकत की है, जानते हो? है कुछ पता?"

कृष्णप्पा का गला भर आया। सामने बैठे हुए तीनों व्यक्तियों के चेहरे पसोपेश में पीले पड़ गये थे। इससे लगता था कि उनमें इंसानियत बाकी है। कृष्णप्पा और भी अधिक भावावेश में आकर सिसकते हुए बोला, "एक औरत को, एक मासूम औरत को, आपके इन शैतानों ने रात में पकड़ कर...।"

आगे कुछ न कहकर कृष्णप्पा ने सिर झुका लिया। मँझला आदमी तीखी हँसी हँसकर बोला, "डोंट गेट एक्सटाइटिड टू मच, यंगमैन! ब्रूट्स हर कहीं होते हैं। ब्रूट्स लोगों को सीमा में रखने के लिए हम लोगों को भी ब्रूट बनना पड़ता है। अब तुम बताओगे भी या नहीं? मौका गँवा रहे हो। बाकी लोग हमारे जैसे नहीं। मुंह खुलवाने के लिए थर्ड-डिग्री का ही इस्तेमाल करेंगे। अब हम लोगों को कहीं कांफ्रेंस में जाना है। आल राइट!" उसने आँखों से इशारा किया। सिपाही आकर कृष्णप्पा को बाहर ले गया और उसकी आँखों पर पट्टी बांध दी।

दस-बारह फुट ऊँची दीवार से घिरे बरामदे में कृष्णप्पा की आँखों की पट्टी खोली गयी। सामने दुहरे बदन वाला बैठा था मानो वह उसी की प्रतीक्षा में था।

"क्यों भई, रात दरवाज़े की पिटाई कर रहे थे?"

कृष्णप्पा चुप रहा।

"तेरा मुंह खुलवाने की दवा मेरे पास है। एरोप्लेन जानता है? बांधो रे, इसे।" हुक्म देने के बाद सिगरेट सुलगाकर वह भीतर चला गया।

बरामदे में गड़ी दो खूंटियों के बीच कुंए जैसा गोल लोहे का रहट लगा था। उससे लटकती रस्सी के एक छोर से कृष्णप्पा के दोनों हाथ पीठ-पीछे कसकर बांध दिये गये। दूसरे छोर को कर्कश आवाज वाले सिपाही ने पकड़ लिया। फिर उसने 'साब' कहकर पुकारा।

दुहरे बदन वाला सिगरेट पीते हुए बाहर आया। दफादार के लेजर में दस्तख़त करते हुए कहा, "येस, गो ऑन।" कर्कश आवाज़ वाला सिपाही

रस्सी खींचने लगा। जैसे ही कृष्णप्पा के पीछे बँधे हाथों को रस्सी ऊपर खींचने लगी, दुहरे वदन वाले ने रोकने का इशारा करते हुए कहा, "अभी से दर्द होने लगा है। और भी ऊपर खींचा जायेगा तो तेरी आँखों के सामने तारे नज़र आने लगेंगे।" उसने हँसते हुए कहा, "जल्दी वता दे। बेचारा ! तूने तो खाना ही नहीं खाया।"

कृष्णप्पा कुछ नहीं वोला।

सहसा अधिकारी का चेहरा तमतमा गया। "खींचो !" उसने उर्दू में कहा। हाथ ऊपर खिचते-खिचते कृष्णप्पा को महसूस हुआ कि अव टूट जायेंगे। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। उसे अनुभव हुआ कि अव वह टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।

खिचती हुई रस्सी ढीली पड़ गयी। कुछ राहत मिली। आँखें बंद करके कृष्णप्पा फिर खींचे जाने का इंतज़ार करने लगा तो सहसा दहल उठा।

धीरे-धीरे कृष्णप्पा को अहसास होने लगा कि इंतजार में जो दर्दनाक पीड़ा होती है, वह मौजूदा अनुभव में उतनी दर्दनाक नहीं है। आगामी पीड़ा की प्रतीक्षा न करके मौजूदा स्थिति में ही मन को कैसे रमाये रखे ? मन को अपने वचपन के दिनों की ओर मोड़ दिया। अपने मन में उठने वाले कुछ संदर्भों में उसे रोकना चाहा :

ढोर-मवेशी गले की घंटियों से आवाज़ करते हुए सामने चर रहे हैं। वह एक वड़े कटहल के पेड़ के नीचे वैठा है—कंवल पर। झाड़ियों से एक शहाथी मुर्ग़ा वाहर आता है और फुदकते हुए ओझल हो जाता है। इसके दर्शन होने का मतलव है कि मीठा खाने को मिलेगा। वाँसुरी उठा लेता है। भूख लगती है। हाथ में छुरी और पत्तल का छत्ता ओढ़े हुए माँ आती नज़र आती है। माँ को देखते ही अपनी भूख की वात उससे कहने की उतावली होती है।

सामने आकर वनावटी गुस्सा दिखाकर मुसकराते हुए माँ डाँटती है, "भूख है कि वला ! सवेरे ही तो काँजी खायी थी न ?" कृष्णप्पा तुतलाता है, "कैसी काँजी ! क्या ख़ाक था उसमें ?" माँ के अलावा और किसके सामने वह अपनी मामी की शिकायत कर सकता था ? वह उसके लिए कुछ

तथा अपने बच्चों के लिए कुछ और किया करती थी।

गोठ के लिए घास लाने निकली हुई माँ अपने बेटे के साथ कुछ अधिक समय बिताने की चाह से इधर-उधर की बातें करती हुई उसकी भूख को भड़काया करती। कृष्णप्पा जब चिढ़ में आकर सटपटाने लगता, तब माँ अपनी गोद खोलती। केले के पत्तल में बँधा 'कड्डु' (कटहल) का एक डला निकालकर देती है। कड्डु पर देसी घी लगा है। कल का कड्डु आज और भी जायकेदार। अपने हिस्से की कुछ चीज छिपाये माँ अकेले में दूसरे दिन बेटे को लाकर दे रही है। भाभी की आँख बचाकर लाये हुए कड्डु लेते समय जो खुशी होती है, उसे कृष्णप्पा जाहिर नहीं होने देता। उसे बगल में रखकर कहता है, "यह अच्छी तरह पका नहीं।" माँ बेटे के नखरे जानती है। "ज्यादा ठसक मत दिखा, खा ले।" कड्डु खाते हुए चमकने वाले बेटे की आँखों को निहारते हुए वह खड़ी रहती है।

कड्डु पर दाँत मारकर वह "होय, होय" की हाँक लगाते हुए जोयिस के मवेशियों के पीछे भागता है। चोर जानवर जिस किसी के खेतों में घुस जाता है।

जोयिसजी प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे। चरवाहा बनने से पहले कोई दस-ग्यारह की उम्र तक कृष्णप्पा उन्हीं के स्कूल जाया करता था। सतानहीन जोयिसजी की पत्नी रुक्मिणियम्मा को कृष्णप्पा के प्रति बड़ा लगाव था। किसी-न-किसी बहाने उसे रोक लेती और इधर-उधर की बातें करते हुए आँखें भरकर उसे देखती। 'चक्ली', 'कोडबेले' देती। कृष्णप्पा की माँ भी उनके यहाँ अपना सारा सुख-दुख कह लेती—पान-सुपारी चबाते हुए। साँझ के समय चौपाल में जोयिसजी जब अपनी सुरीली आवाज में 'महाभारत' का पाठ करते तो उसे सुनने वाला चाहे और कोई न हो, कृष्णप्पा की हाजरी जरूर लगती। कृष्णप्पा की माँ से वे कहा करते, "तुम्हारे बेटे में राज-लक्षण हैं।" कर्ण की कहानी सुनते समय कृष्णप्पा की आँखें गीली होते जोयिसजी देख लेते हैं। पूछते हैं, "एकलव्य की कहानी सुनेगा?"

रुक्मिणियम्मा के यहाँ बड़ी शुचि रहती है। कृष्णप्पा को फैली हुई हथेली पर वह बड़ी ऊँचाई से कोडबेले डालती। अगर मेरे पर साड़ी मूसने

के लिए डाली गयी हो और दूर कृष्णप्पा दिखायी दे जाये तो ऊँची आवाज़ में कहती, "अरे ओ, किट्टी, शुचि सूखने डाली है रे। उठाती हूँ। घेरे को मत छूना।" फिर वह साड़ी निकाल लेती है। देखें कि छू लेने से क्या होता है, इस इरादे से जब कृष्णप्पा उसे छूते हुए भीतर आने लगता है तो उसे देखकर रुक्मिणियम्मा मारने भागती है। फिर कृष्णप्पा को छू लेने से जो अशुचि होगी, इस बात को ताड़कर 'लफ़ंगा' कहकर हाथ को ज्यों-का-त्यों उठाये खड़ी रह जाती है। कृष्णप्पा हँसने लगता है। रुक्मिणियम्मा अपनी हँसी दबाकर बनावटी गुस्सा दिखाते हुए कहती है, "ठहर जरा ! तेरी माँ से कहकर खूब कान मरोड़वाऊँगी। घर लौटते समय पीठ पर पत्तल बाँधे रखना। अच्छा !" तब कृष्णप्पा के हाथ से ही साड़ी उठवाकर कुँए पर रखवाती है और पानी से धोकर सुखाने डालती है...।

'हाय' कहकर कृष्णप्पा चिल्लाया। फिर चिल्लाने पर संयम कर लिया। रस्सी हाथों को खींचकर मरोड़ रही थी। लग रहा था कि यह पीड़ा लंबे अरसे तक जारी रहेगी। तभी सहसा रस्सी ढीली पड़ गयी। आँखों के आगे अँधेरा छा जाने से कृष्णप्पा टूट गया। कर्कश आवाज़ वाला सिपाही उसका मुँह खोलकर पानी उँडेल रहा था।

जब कृष्णप्पा होश में आने लगा था, तभी सिनेमा-संगीत की एक लहर कानों में पड़ गयी। वह चौंक गया। अहाते की दीवार के उस पार कोई होटल होगा। वहीं यह सिनेमा का गाना गूँज रहा है। कोड़े की फटकार की आवाज़। बाहर की दुनिया यथावत अपनी लीक पर चल रही है। वहाँ होटल में आराम के साथ बैठकर चाय के लिए आर्डर दिया जा रहा है। दुकान से बर्कले सिगरेट मँगवाकर धुआँ छोड़ा जा रहा है। बैलगाड़ी की आहट दूर चली जा रही है। सीलोन से आने वाला गाना ख़त्म हो गया है और अब एस्प्रो की घोषणा सुनायी दे रही है।

दुहरे बदन वाला आदमी टाँगें फैलाकर प्याले में कॉफ़ी पी रहा था। प्याले के ख़ाली होने के इंतज़ार में हाथ बढ़ाये एक सिपाही खड़ा था। ख़ाली प्याले को दुहरे बदन वाले ने लापरवाही से बढ़ाया तो दायीं ओर खड़ा सिपाही बायीं ओर दौड़कर प्याला लिये भीतर चला गया। उसकी ज़िंदगी पर हुकूमत जताने वाले सर्वशक्तिमान की तरह खड़े अधिकारी

को कृष्णप्पा ने चौंककर देखा। क्या इसकी भी माँ है? क्या यह भी कभी लड़का रहा होगा? लापरवाही से खड़ा अधिकारी कमर को थोड़ा-सा झुकाकर पादा। उर्दू में कुछ कहकर कृष्णप्पा की ओर देखे बिना चला गया। कृष्णप्पा को उठाकर सिपाही एक खाली कमरे में ले गया, जहाँ दो कुर्सियाँ थीं। एक कुर्सी पर उसे बिठाया गया। अल्युमिनियम की थाली में उप्पुमा और प्याले में कॉफी भरकर सामने रखी और इन्तजार करते खड़ा रहा।

उप्पुमा देखकर कृष्णप्पा की भूख भड़क उठी। किंतु पारीकों जैसे दिखायी पड़ने वाले अधिकारियों के सामने कह जो दिया था कि वह उपवास कर रहा है, इसलिए उसे खा नहीं सकेगा। इच्छा को दबा लिया। अपनी इच्छा को जीतने की खुशी में कुर्सी पर सोकर आँखें मूँद लीं। अभी झपकी लग ही रही थी कि एक सिपाही ने अपने जूतों में बँधी नालों को सीमेंट की फ़र्श पर खटाखट कूटा। घबराकर कृष्णप्पा जाग गया। अपनी घबराहट का पता सिपाही को लग जाने से वह कुछ जलील-सा हो गया। फिर न सोने की ठानकर बड़ी मुश्किल से आँखें खोलकर बैठा रहा।

गौरी देशपांडे की याद कर ली। उसने ढीला जूड़ा बाँधा है। कानों से होकर उसके घने काले बाल सीने पर बिखरे हैं। वह तबूरा लिये गा रही है। 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' वाला अंतिम चरण ऊँचे सुर में गा रही है। कृष्णप्पा अब अपनी इच्छा से शर्माता नहीं। उठकर अपनी बग़ल में बैठी गौता को हलके-से सहलाता है और फिर यह बात अण्णाजी को बताता है। अण्णाजी खुश हो उठता है। वह इस सिस्टम को बदलने की थियरी पर बहस करता है। हिंसा पर ही समाज टिका है। सारी हिंसा को केंद्रित करके पुलिस विभाग बना है। व्यक्तिगत रूप से नाहक पुलिस से द्वेष करने से क्या लाभ? सिस्टम की रीति का पता लगाकर उसे बदलना होगा। इसे बदलने वाले होते हैं रैयत—मजदूर। दुहरे बदन वाला अधिकारी भी एक साधन मात्र है। किंतु रात में उसने किसी औरत के साथ जबर्दस्ती से संभोग किया था। उस समय के भयानक शब्द याद आते हैं। कृष्णप्पा की आँखों से नींद उड़ जाती है और आँखों में क्रूरता उतर आती है।

यहाँ से उसके छुटकारे के लिए महेश्वरय्या कोई रास्ता ढूँढ रहे होंगे।

होते हैं। सुना है कि पहले किसी ज़माने में तुम लोग जैन थे, तिलकधारी। महेश्वरय्या ने सब-कुछ बताया है। वेरी इंटरेस्टिंग, वेरी इंटरेस्टिंग ! यह इलाक़ा निज़ाम की हुकूमत में था न, यहाँ की सारी पुलिस बिलकुल ब्रूट है। इसीलिए मैं खुद आया हूँ। डोंट वरी। वह अण्णाजी था न, सुना है कि महाराष्ट्र में दो-एक औरतों के साथ उसका कांटेक्ट था। अगर हमें उनके पते-भर मिल जायें तो काफ़ी है।"

इतना कहकर जोशी चुप हो गया। पानी लाने के लिए सिपाही को तेलुगू में आवाज़ दी। "पानी के लिए कैसा व्रत ?" कहते हुए सुराही का एक प्याला ठंडा पानी कृष्णप्पा को देकर खुद पी लिया।

"इस तहक़ीक़ात के लिए मैं ही प्रमुख हूँ। महेश्वरय्या से मैंने कह दिया है कि अगर तुमसे इतनी-सी सूचना मिल जाये तो काफ़ी है। फिर हम तुम्हें छोड़ देंगे। बड़े दिलचस्प आदमी हैं। ऐसे आदमी को पाकर तुम लक्की हो। उस अण्णाजी कहलाने वाले से पता नहीं कैसे तुम्हारा पाला पड़ गया ! मैं अपने लड़के से कहा करता हूँ : बेटे, जो चाहे करो लेकिन कभी पुलिस के हाथ में न फँसना।"

कृष्णप्पा ने नरम आवाज़ में कहा मानो यही उसका आख़िरी बयान हो, "मैं कुछ नहीं जानता।"

"आल राइट !" अपनी पीक-कैप पहनते हुए जोशी उठ खड़ा हुआ, "जब बताने को मन हो, मुझे कहला भेजना। बिना मुंह खोले यहाँ से कोई बचकर निकला नहीं, समझे ! मैं जो कह रहा हूँ वह फ़ैक्ट है, तुम्हें धमकी देने के लिए नहीं।"

वर्दी ठीक कर वह चला गया। सिपाही कृष्णप्पा को फिर से एरोप्लेन वाली जगह पर ले आया। वहाँ किसी को एरोप्लेन पर चढ़ाते हुए दुहरे बदन वाला अधिकारी खड़ा था। उस आदमी के हाथ, जिसने फटी कमीज़ और पैंट पहनी हुई थी, जैसे ही ऊपर खींचे जाने लगे वह ज़ोर-से चीख़ने लगा। तेलुगू में वह बड़बड़ाने लगा तो उसे नीचे उतरवाकर अधिकारी ने उसका बयान दर्ज कर लिया और दफ़ादार के साथ उसे भेज दिया। यह नज़ारा दिखाने के लिए जिस आदमी ने कृष्णप्पा को वहाँ खड़ा किया था, वह उसे घुमा-फिराकर, सीढ़ियां चढ़वा-उतरवाकर, कई कमरों से होते

हुए वहाँ लिवाकर लाया था। जब वह उसे एक बरामदे में लिवा ले जा रहा था तो वहाँ कुछ मफ्ती के लोगों को टेबिल के सामने कुछ लिखते हुए कृष्णप्पा ने देखा। सभी मामूली कचहरियों की भाँति यह भी था। माथे पर भस्म का त्रिपुंड लगाये तथा सफ़ेद टोपी पहने एक आदमी बीच वाले टेबिल के सामने बैठकर लिख रहा था। स्याही में डूबा हुआ टेबिल-क्लाथ, एक बर्तन में बासी आटे की लुगदी, उसमें डुबाई गयी मोटी काड़ी, दीवार पर बोस-नेहरू की तसवीरें, कोने में बीड़ी पीते खड़े चपरासी, बीड़ी बुझाने में दीवार पर लगे काले धब्बे, एक कोने में बालू की ढेरी पर खुले मुँह वाली सुराहियाँ, दबी आवाज़ में सभी की फुसफुसाहट, खुली आलमारियों में भरी हुई पीली पड़ी हुई मिसलें—इन सभी की ओर नज़र दौड़ाते हुए पिंजरापोल जैसे बरामदे में टेबिलों के बीच से रास्ता बनाते हुए कृष्णप्पा धीरे-धीरे चला। शायद ज़िले का यही प्रमुख थाना होगा। जोशी भी यहीं कहीं होगा। ज़ीने पर कितने ही कमरों में उसके ऊपर वाले—ऊपर वाले के भी ऊपर वाले हाकिम होंगे। उन कमरों में पंखे होंगे। इसी इमारत के एक कमरे में तीन हाकिमों ने उसकी तहक़ीक़ात की थी। मुँह चेहरे को घुमाते हुए नाक की नोक पर चश्मा उतारकर, काग़ज़ और क़लमों में तन्मय होकर लिखते बैठे हुए ये सभी लोग मासूम ग़रीब गृहस्थों-जैसे लगते हैं। इसी इमारत के किसी हिस्से में वह दालान है, जहाँ उसे एरोप्लेन पर चढ़ाया गया था। सज्जनों जैसे दिखायी देने वाले इन बाबू लोगों के कानों तक वहाँ की चीख़-चिल्लाहट पहुँचती हुई नहीं लगती। लेकिन हिंसा के ज़रिए वहाँ जो बयान हासिल किये जाते हैं, उन्हें ये बाबू लोग जुमलों में तबदील कर अदालत में पेश करने लायक बना देते होंगे।

यहीं कहीं आँगन है। लेकिन अपनी अँधेरी कोठरी किधर है? भाग निकलने के प्रयत्न में पहला काम है इस इमारत का नक़्शा बना लेना। नक़्शा बना लेने पर भाग जाना आसान हो जायेगा। शायद इसी वजह से पहली बार उसकी आँखों पर पट्टी बाँधकर ले जाया गया था। वह कमरा, जहाँ आज जोशी से भेंट हुई थी, फिर हिंसा का आँगन, वहाँ से आगे चढ़ना-उतरना, कमरे, फिर यह पिंजरापोल जैसा बरामदा—कृष्णप्पा के मन में खलबली हुई। सोचा कि अगली बार वह सब-कुछ याद रखता जायेगा।

जरापोल पार करते समय थोड़ा-सा आकाश दिखायी पड़ा। इस आकाश सटकर चारों ओर खड़े काले-काले पथरीले पहाड़ दिखायी पड़े। ामप्पा के मंदिर के लिए—जो अत्यन्त प्राचीन माना जाता था—शायद न पहाड़ियों से ही पत्थर लिये गये होंगे।

इस इमारत के अगले हिस्से की कुछ झलक दिखायी पड़ी तो कृष्णप्पा ौंक गया। इतने ज़लील बरामदे, ज़ालिम आँगन, जीवन की धकापेल से ाके-हारे दिखायी पड़ने वाले, धँसी आँखों वाले छरहरे बाबू लोग, शैतान ैसे दुहरे बदन वाले अधिकारी—इन सभी को अपने में समाये इस बड़ी इमारत का अगला हिस्सा बड़ा आलीशान था। ऐसी गरमी में भी हरा-भरा, भीगा-भीगा-सा लॉन था; फ़व्वारा था। बनावटी अंदाज़ में कमर उचकाकर उस पर घड़ा लिये स्त्री के शिल्प पर यह फ़व्वारा पानी बरसा रहा था। इस इमारत के उस पार साइकिल-रिक्शाएँ सवारी के इंतज़ार में क़तार में खड़ी थीं। बिना किसी ख़ौफ़ के पान-सुपारी चबाते हुए किसान और धोती उठाकर पकड़े शहरी लोग। कृष्णप्पा ने इमारत के अगले हिस्से की दिशा को, अब की दुपहरी वेला को, मन में दर्ज कर लिया। पहला पाठ—मौजूदा पीड़ा को प्रतीक्षा से अधिक सह्य बनाना है। दूसरा पाठ—उस अँधेरे कमरे में देश और काल को भूल जाने की सम्भावना अधिक है, इसलिए काल और अवकाश में वह कहाँ है, इस बात की प्रज्ञा खोये बिना चौकन्ना बने रहना होगा।

भूख के कारण पाँवों में शक्ति नहीं थी। साथ वाले चेचकरू सिपाही से, जो उतना ज़ालिम नहीं लगता था, कृष्णप्पा ने इशारे से पानी माँगा। वहीं कोने में रखी सुराही से सिपाही ने ठंडा पानी दिया। इमारत के अग्र-भाग को बारीकी से देखने के इरादे से पानी पीने का बहाना बनाकर वह वहीं खड़ा रहा। सिपाही उसे उतावली में वहाँ से आगे ले गया। वह जिन कमरों से अब गुज़र रहा था, वे सभी ख़ाली थे। फिर उलझन में पड़ गया गया कि अब वह कहाँ है ! न जाने कहाँ-कहाँ का चक्कर काटकर आख़िर वह जब रुक गया तो पता चला कि सामने वाला दरवाज़ा उसी की कोठरी का है। उसे भीतर ढकेलकर सिपाही ने दरवाज़ा बंद कर दिया।



जब खटमल सारी देह पर रेंगते हुए काटने लगे तो वह चौंका नहीं। बदन रगड़ते हुए सीमेंट के चबूतरे पर बैठ गया। इन खटमलों की बदौलत ही सही, तन की सुध बनी रहेगी। गाँव की आबोहवा का आदी होने के कारण शायद उतना पसीना नहीं बह रहा है। बैठे-बैठे पलकें भारी होने लगीं। कोई सहसा जगा देगा, इस घबराहट में शरीर के लिए आवश्यक नींद ले लेने का विचार आया। दीवार में सिर टिकाकर पलकें बंद करके सो गया। खटमल हैं तो वे काटते रहेंगे, ला-इलाज है—इस बात को समझने की चेष्टा करते-करते कृष्णप्पा को गहरी नींद लग गयी।

जब आँखें खुलीं तो इस उलझन में पड़ गया कि क्या यह वही दिन है या दूसरा दिन? दिन है या रात है? नाक के दोनों नथुनों में बुलाकें पहनकर, जूड़े की छोटी-सी गाँठ में चम्पा का फूल पहनकर, 'शुचि हूँ, चल दूर हट' कहती हुई तथा उसकी ओर दूर से ही कोडबेले फेंकने वाली रुक्मिणियम्मा की याद हो आयी। फिर उसके साथ बीती किसी मसखरेपन की घटना की याद करने लगा। वह किसी सोच में पड़ना नहीं चाहता था। इस बात की याद से ही वह बेचैन हो उठा।

कृष्णप्पा अभी कोख में ही था कि उसके पिता मर गये। बचपन में कृष्णप्पा की कल्पना थी कि सभी की भाँति उसका बापू भी बुढ़ापे में मरा होगा। लेकिन जिस दिन चरवाहे का काम छुड़वाकर स्कूल में दाखिल कराने के लिए महेश्वरय्या लिवा ले जाने वाले थे, उस दिन गाँव के बाहर बड़ के पेड़ के नीचे बिठाकर आँसू बहाते हुए माँ ने बताया था कि उसके बापू की मौत कैसे हुई। बिरादरी में बँटवारा तो हुआ था, लेकिन सुपारी के एक बाग के सिलसिले में झगड़ा चल रहा था—ताऊ के बेटे के साथ।

पुट्टण्ण गौड़ा के मन में वड़ी जलन थी। घास की पयाल में आग लगवाना
दि हरकतें वह करता ही रहता था।

ज़िद्दी होने के कारण वापू इन सवसे दवने वाले नहीं थे। एक अदालत
दूसरी अदालत का रास्ता नाप-नापकर आख़िर वाग़ का पट्टा अपने नाम
रवा ही लिया। उसके दूसरे दिन वापू घर नहीं आया। कोई चरवाहा
दर्दनाक समाचार लाया था। जाकर देखा तो वाँस के झाड़खंड में वापू की
वोटी-वोटी काटकर फेंकी गयी थी। पुलिस-मुक़द्दमा चला। पुट्टण्ण गौड़ा
को फाँसी हुई। इसके वाद माँ अपने भाई के घर आ वसी थी।

यह कहानी सुनने के वाद ही कृष्णप्पा समझ पाया था कि उसकी मामी
हमेशा ग़ुस्से में 'वाप को खाकर पैदा हुआ शनि' कहकर क्यों उसे गालियाँ
दिया करती थी।

आगे ऐसी सावधानी वरती थी कि इस घटना के कारण उसे कोई ऐव
न लगे। अपने वापू की हत्या की वात किसी से कहने की आवश्यकता उसे
महसूस ही नहीं हुई थी। महेश्वरय्या ने भी यह वात पूछी नहीं थी। लेकिन
कृष्णप्पा को महसूस हुआ कि पैदाइश से ही अँधेरा उसे छा जाने की ताक
में है, अतः ज़िंदगी को ज़िद से जीतते जाना होगा।

उसके वापू की हत्या करने लायक़ द्वेष उसकी विरादरी के मन में
क्यों पैदा हुआ? ऐसा द्वेष शायद वह भी दूसरों में पैदा कर रहा होगा
कुछ लोगों की तुलना में अपने को नाचीज, क्षुद्र, तमस के रूप में सम
रखा था, यही वात औरों में शायद जमकर वैठ गयी है। इस तरह उस
जो कुछ देखा है वह सारा—इस फ़र्श की धूल में, इस उमस में, इन खटम
में, इस निर्वात अँधेरे में—केंद्रीकृत हुआ है। क्या वह इसे जीत सकेग
इस सोच में होंठ चवाते हुए वह उठ खड़ा हुआ।

अण्णा जी ने कहा था: 'क्षुद्रता को अगर जीतना चाहते हो तो
रखो कि वह तुम्हारे मन के भीतर नहीं, वाहरी दुनिया में है। उसक
वहीं हैं।' अण्णाजी की इस वात में सच्चाई हो सकती है। लेकिन फ़ि
अपने मन को उससे वरवाद होने से वचाये रखने के उपाय ढूंढ़ नि
वहुत ज़रूरी है। अगर अपने को यहाँ मरना भी पड़ा तो होंठ का

मरना होगा। आख़िरी दम तक अपने मन को इस तमस के हमले से बचाये रखना होगा।

महेश्वरय्या कहा करते थे : 'सावधानी बनना होगा। घोलना नहीं। लचकीली शक्ति से हाथ धो न बैठना। भीतर भी रहे और बाहर भी। फल सा भी ले और देखता भी रहे। हुमका बदन, सख़्त पाँवें, तेज पंजे, आकाश की ओर उठी नुकीली चोंच—काफ़ी दूर से ही उसे ख़तरे की भनक लग जाती है। साथियों के लिए तरसना नहीं। अपने-आप गा लेना है।'

इस तरह सोचते हुए जब काफ़ी समय बीत गया तो लगा कि वह समय की सुधबुध खो बैठा है। इस कोठरी की दीवार के उस तरफ़ कोई दूसरी कोठरी ही होगी—लगी नहीं। आँगन के उस पार से जैसे सुनायी देता है, वैसा यहाँ कुछ सुनायी नहीं देता। दूसरे बदन वाला वह अधिकारी शायद उसे भूल गया होगा। जब वह आँखों के सामने होता है तो लगता है मानो अब-तब वह क्रूरता से हमला कर देगा। लेकिन सहसा उसे नज़र-अंदाज़ करके कहीं और निहारने लगता है—इस बात की याद करके कृष्णप्पा दहल गया। वह अधिकारी, दोनों और तीसरा आदमी उसे भूल-कर शायद किसी दूसरे की तलाश में होंगे या उसे दंड देने में लगे होंगे। मुझमें कुछ दम न पाकर रिहा करने का तय किया होगा और शायद सोचते होंगे कि मुझे कभी का रिहा कर दिया गया है। ख़याल आया कि क्या फिर दंड देने के लिए नहीं ले जायेंगे?

कितना ही रगड़ते रहने पर भी न जाने किसी ओर से घुसकर गदमैल गले की पट्टी, कॉलर, जाँघों की ओट में काटते रहे। यह अँधेरी कोठरी मानो एक गर्भागार की भाँति है। इस गर्भागार में धीरे-धीरे दुबल होते रहने का-सा भान होता है।

ऐसा सोचना नासमझपन है—इस विचार से वह उबरता गया। रह-रह कर की जाने वाली कल्पना, बहुत ही संदिग्ध रूप में उसे कारागार में बंद किये जाने के विधान की कल्पना करते हुए बैठ गया। उसमें भी कुछ हुई। इंतज़ार करते हुए, पता नहीं कितने दिन बीत गये। तीन? चार? गला सूखने लगा। अँधेरे में टटोलते हुए, पसीने में बहे हुए [illegible]

कर लिया।

अनजाने में ही हाथ की उँगलियों से फ़र्श की धूल में वह समय-मत के क्रम के अनुसार चक्र उतारने लगा। लग रहा था, मानो महेश्वरय्या ने ही बैठकर बता रहे हैं। शायद पहले की भाँति बुद्धि-विभ्रम होने है। वह भगवान में विश्वास नहीं रखता। ऐसा विचार कर चक्र का र्माण करते और बदन पर खटमलों को मसलते हुए बैठा। पूर्वमुखी कोण, बीच में बिन्दु, उस पर पहले वाले त्रिकोण के मध्य भाग को दने वाला पूर्वमुखी एक और त्रिकोण, पहले वाले त्रिकोणाग्र से पश्चिम-मुखी दूसरा त्रिकोण लिखकर...महेश्वरय्या की आँखें स्थिर होकर चमक रही थीं। माथे पर सिंदूर का बड़ा-सा टीका। गीले लंबे बाल पीठ पर बिखरे हुए। लाल किनारे वाली धोती पहनकर नंगे सीने पर रुद्राक्ष की माला पहने रहते थे।

समयियों की पूजा हृदय-कमल से ही होती है—महेश्वरय्या ने कहा था। जब कृष्णप्पा ऐसी पूजा की तैयारी करने लगा था तो महेश्वरय्या ने चिंतामणि-गृह का वर्णन किया था। बताया था कि उसके आठ धातुमय प्राकार, ग्यारह रत्नमय प्राकार और छह तत्वमय प्राकार—इस प्रकार कुल पच्चीस-पच्चीस प्राकार होते हैं। एक से बढ़कर एक ऊँचा होता है। हर प्राकार में प्रवेश कर पाना बड़ा कठिन होता है...।

कृष्णप्पा ने कुछ मस्ती में और कुछ मसख़रेपन में कह दिया कि वह ऐसे ही एक व्यूह में है। फिर हँसने लगा। मूलाधार कंद मध्य में मदनागार रूपी त्रिकोण है। वहाँ ऊर्ध्वमुखी स्वयंभू-लिंग है। सर्पाकार में साढ़े तीन फेंटे में कुंडली मारकर कुंडलिनी शक्ति मधुर और अस्फुट आवाज़ कर रही है। लगा कि हँसते समय ऐसी आवाज़ पेट की कुलबुलाहट के साथ निकलती है। पर शिव कामेश्वर है और पार्वती कामेश्वरी है। समभाव से अब इनकी पूजा करने के लिए तैयार हुआ। ध्यान किया : हे भगवती! तुम्हारी संगति के बिना वह परशिव भी संचालन में असमर्थ है। 'समया कहकर भगवती को आँखों के सामने रूपायित करने लगा। महेश्वरय्य द्वारा कंठस्थ कराये गये श्लोकों का मुकुट से नीचे उतरते-उतरते ज़ोर-ज़ो से पाठ करने लगा। दमकता हुआ मुकुट; हरसिंगार फूलों की महक वा

चाल; चेहरे की आभा के उमड़कर बहने के लिए ही मानो रास्ते जैसी माँग; कामदेव को जला चुकी आँखें; भौंरों जैसा मस्त चेहरा; कामदेव के धनुष जैसी भौंहें; शृंगार-विस्मय-भय-हास्य की कौंध सी हुई आँखें; उसकी नथुनी; उसके होंठ; जिह्वा का तांबूल-राग; कंठ-नाल; कंठ-नाल के तीन बल; चार भुजाएँ; हस्त, स्तन, रोमावली; गंगा नदी के स्थिर भँवर की भाँति—शिवजी की आँखों में तप की सिद्धि का बिल-द्वार की भाँति लगने वाली उसकी नाभि; कुच-भार से थक कर मानो धीरे से टूट पड़ने लायक उसकी कमर और मानो उसके बचाव के लिए त्रिवली; हलके चौड़े नितंब, उसके चरण—सभी का ध्यान करते, श्लोकों को याद करते, उन्मत्त होकर गाते बैठ गया। खटमल, अँधेरा कमरा, धूल—इन सभी को घटिया मानते हुए लगा कि वह जीत रहा है। उससे निकलने वाली आवाज सर्पाकार कुंडलिनी की है। इसका अनुभव करने के लिए एकाग्रता के साथ अपने में ही मन को स्थिर करने की चेष्टा की। न, यह बुद्धि-भ्रम नहीं। बार-बार अपने-आप को जता लिया। आखिर उलझन जैसा महसूस होने लगा तो गहरी साँस लेकर उठ खड़ा हुआ।

श्रीचक्र में तीन रेखा मिले हुए चौबीस मर्म-स्थान होते हैं और दो रेखा मिले हुए चौबीस संधि-स्थल होते हैं। फिर सृष्टि-क्रम और संहार-क्रम नामक दो प्रकार होते हैं। संहार-क्रम में लिखना कौल-मत के वामाचारियों का विधान होता है।

अपना समय-मत है तो उस दुहरे बदन वाले अधिकारी का कौल-मत होगा। संमोग, यक्षिणी-सिद्धि, परस्त्री-गमन, बच्चों की जबान काटने वाला महासम्मोहन तंत्र आदि वाममार्गों द्वारा देवी की उपासना करने वाला वह आदमी इस तेलुगू इलाके का मशहूर कापालिक होगा। इसी भाँति सोचते-सोचते कृष्णप्पा को फिर हँसी उमड़ आयी। अँधेरे में बहुत जल्दी थककर सीमेंट के बिस्तर पर बैठे-बैठे पलकें मूँद लीं। पसीने से तर होकर उसकी धोती और अचकन धूल से बेहद गंदे हो गये थे। उन्हें उतार फेंकने को मन हुआ। अचकन उतार सिरहाने रखकर सो गया। उसे महसूस हुआ कि वह बिन पेंदे के अंतराल में तैर रहा है।



पता नहीं और कितना समय बीता होगा ! एक सिपाही हाथ पकड़ कर उसे खींच रहा था। कृष्णप्पा उठ बैठा। याद करने लगा कि वह कहाँ है। पर सिपाही द्वारा खींचे जाने की दिशा में चलता रहा। उर्दू में उसकी गालियाँ सुनकर मालूम हुआ कि वह वही कर्कश आवाज़ वाला सिपाही है।

कमरे के बाहर भी अँधेरा है। लेकिन रात की हवा आरामदेह थी। मनमानी हवा-ख़ोरी करते हुए कृष्णप्पा चला।

बत्तियों से आँगन जगमगा रहा था। एरोप्लेन पर चढ़ाई जाने वाली रस्सी रहट से लटक रही थी। दुहरे बदन वाला अधिकारी एक कुर्सी पर बैठकर बोतल से प्याले में रम ढाल रहा था। फूलों से लदी दो औरतें उसके पाँव के पास बैठी थीं। उनके हाथों में भी प्याले थे। रोशनी में दोनों की साड़ियाँ चमक रही थी। उनके होंठ लाल थे। कानों में चमकती हुई बालियाँ थीं। कलाई में मशहूर हैदराबादी कँकरेदार चूड़ियाँ थीं।

उर्दू में कुछ कहकर अधिकारी ठहाके मारकर हँसा। दोनों औरतें भी आपस में चिमटकर मुसकरा उठीं। उसे भी एक कुर्सी पर बिठाते देखकर कृष्णप्पा को अचंभा हुआ। दुहरे बदन वाला अधिकारी टाँग पसारकर चैन के साथ बैठा था, इसलिए कृष्णप्पा को उसमें कुछ इंसानियत नजर आयी। ऐसा लगने का शायद एक कारण यह हो कि उसने टोपी नहीं पहनी हुई थी जिसकी वजह से बारीक कटे बालों के कारण खल्वाट की भाँति कृष्णप्पा को उसका सिर दिखायी दे रहा था। शैशवावस्था में कपड़े की कुंडली बनाकर बच्चे को उस पर सुलाया जाता है, ताकि उसकी खोपड़ी इस तरह खल्वाट न बने। उसकी खोपड़ी अच्छी थी—उसके लिए माँ ने

ह कारण बताया था।

"पियेगा ?"

यह कापालिक ही है। पूछ रहा है कि पियेगा ! इस ख़याल से अपने सन चेहरे को नरम होते हुए शायद उसने भी देखा होगा।

"अगर तूने पते नहीं बताये तो मेरी फजीहत होगी, समझा ? वह शी है न। वह मेरी कॉन्फ़िडेंशियल रिपोर्ट में 'इनएफ़िशियेंट' लिख गा।"

इस लुत्फ़-भरे मौके पर शायद यह अधिकारी उसकी बात से तृप्त हो जायेगा, इस विचार से कृष्णप्पा ने कहा, "मुझे कुछ पता नहीं। वाक़ई।"

"तब क्या वह तेरी बहन का लौंडा था ? भैंनचोद था ? इतनी दूर आया है उसके लिए ?"

अपने पाँव के पास बैठी औरत को लात मारकर अधिकारी हँसने लगा।

"सुना है कि उसे औरतों की बड़ी चुल थी। यहाँ की भाँति क्या वहाँ र भी गुरु महाराज को सप्लाई करना पड़ता था ? क्या तू उसके पिंप का काम करता था ? मेरे लिए जो लायी गयी हैं न, देख, ये दो औरतें। अव्वल दर्जे की रंडियाँ हैं। जानता है, कैसे टाँग उठाती हैं ? तेरे चूतड थिरक उठेंगे, समझा ! इनमें से एक को तू ले ले। मुझे पते बता दे। वरना मेरी तरक्की गारत हो जायेगी। तू क्या जाने मेरी मुसीबत ? दस बच्चे हैं मेरे। चौबीस घंटे की ड्यूटी। जब कभी जोशी बुलाये, यहाँ हाजिर होना पड़ता है। जोशी ने मंत्री से वादा किया है। वह मंत्री बड़ा देव-भक्त है। और हर हफ्ते तिरुपति जाता है। कम्युनिस्टों का नामोनिशाँ मिटा देने का वादा करके जोशी ने मेरे और तेरे लिए कैसी मुसीबत ढायी है ! ले ले इसे। हें-ह !"

झुककर उसने औरत का आँचल खींचा। ब्लाउज उतारने के लिए आगे बढ़ा तो औरत ने रोका। झूमते हुए वह उठ खड़ा हुआ। आँखें तरेरते हुए कृष्णप्पा को देखकर गरज उठा, "देखो, यह भड़वा कैसे रोब दिखा रहा है ! उतार दो रे इस सूअर के कपड़े।" छूटने की चेष्टा करने पर भी दो सिपाहियों ने कृष्णप्पा को धर-दबाकर उसके कपड़े उतारकर नंगा कर दिया।

"किसी भी हालत में तुझसे पते लेने के लिए कहा है जोशी ने। तू जानता है न, मुझे...!"

झूमते हुए वह सामने आकर खड़ा हो गया। बेंत से शिश्न को कोंचते हुए औरतों की ओर देखकर ठहाका मारकर हँसा, "फ़ोते का कचूमर निकाल दूंगा। होशियार !"

कर्कश आवाज वाला सिपाही भागकर प्याले में और भी ¯म भर लाया। अधिकारी का हाथ पकड़कर उसे धीरे से कुर्सी पर बिठाया। अधिकारी हाँफते हुए बैठ गया और चुहल-भरी आवाज में अँग्रेज़ी में कहा, "पेशाव करो रे, उसके मुँह में।" सिपाही को चुपचाप खड़ा देखकर उर्दू में फिर गरज कर कहा। एक औरत उठकर उसकी जाँघों पर जा बैठी और गले के गिर्द बाँहें डालकर कुछ कहा।

"अरे ओ !" अधिकारी ने किसी को हाँक लगायी। गठीले वदन वाला एक नौजवान सामने आ खड़ा हुआ। अधिकारी ने हँसते हुए कुछ कहा। नौजवान माना नहीं तो अधिकारी खुद उठा और सिकुड़कर बैठी हुई दूसरी औरत को खड़ा कर उसके कपड़े उतार दिये। नौजवान ने भी अपने कपड़े उतारे। कृष्णप्पा ने आँखें वंद कर लीं। वह भाग निकलने के लिए उठ खड़ा हुआ। तपाक से अधिकारी ने कृष्णप्पा को पकड़ लिया और उसके हाथ-पाँव वँधवा कर जमीन पर लिटा दिया। अपनी बेंत से उसके शिश्न को ऊपर उठाया। "फ्लैग हॉइस्ट करवाऊँगा। सेल्यूट !" वह चिल्लाया। सभी हँस पड़े तो वह खुश होकर नंगे नौजवान का फ़ोता सहलाते हुए खड़ा रहा। कृष्णप्पा ने अपनी खुली आँखें फिर वंद कर लीं। वह अधिकारी का हँसना-फुसलाना सुनता रहा। अधिकारी ने कर्कश आवाज वाले सिपाही को फिर बुलाकर पेशाव करने को कहा। कृष्णप्पा ने घवराकर जव आँखें खोलीं तो औरत पर नंगा नौजवान और झुक-झुक कर उन्हें देखते हुए क़हक़हे भरता हुआ अधिकारी दिखायी पड़े। उधर यह नजारा देखते हुए अधिकारी कर्कश आवाज वाले सिपाही को छड़ी से टोक रहा था।

दो सिपाहियों ने जबरदस्ती करछुल डालकर कृष्णप्पा का मुँह खुलवाया। दूसरी औरत अव अधिकारी की पैंट उतार रही थी। कर्कश आवाज

वाला सिपाही अपनी खाकी निक्कर के बटन खोलकर कोसते हुए पास आया। सीने पर उकड़ूँ बैठ गया। दो सिपाही उसे मज़बूती से पकड़े हुए थे, इसलिए कृष्णप्पा हिलडुल न सका। साँस को रोक लिया ताकि मुँह में चू पड़ने वाली चीज़ कहीं वह पी न ले।

अधिकारी ने ठहाके मारकर खुश होते हुए, नौजवान में जोश भरते हुए और नंगी खड़ी दूसरी औरत को मसलते हुए कर्कश आवाज़ वाले सिपाही को बुलाकर पूछा, "हुआ ?" 'हुआ' कहते हुए सिपाही ने उठकर बटन लगा लिये। उसे पेशाब न करते देखकर कृष्णप्पा को ताज्जुब हुआ। इसके बाद कृष्णप्पा से बेखबर नंगी औरतों को बगल में लेकर अधिकारी पीने बैठ गया। कृष्णप्पा के लिए सारा दृश्य धूमिल-सा बनता गया।

जब आँखें खुलीं तो लगा कि आँगन में बड़ी नाज़ुकी से कुछ खिलने की तैयारी चल रही है। कुर्सी वहीं थी। थ्री-एक्स रम की बोतल और प्याले भी वहीं थे। सारी बत्तियाँ बुझाये जाने पर भी धूमिल सपने जैसा लग रहा था। आकाश में टिमटिमाने वाले तारे म्लान होते गये। चहचहाहट की आवाज़। कुछ फलित होते रहने की सूचना। कृष्णप्पा ने लंबी साँस ली। उसने बड़ी ही आरामदेह और तसल्ली देने वाली खुशबू का अनुभव किया। आँगन में खिले गेंदे के फूलों के पौधे दिखायी पड़े। आँगन में उगे हुए हर जंगली पौधे को एहसानमंद होकर निहारते हुए वह उनके खिलने की वेला का इंतज़ार करने लगा। आसमान में सुर्खी छायी। आँगन में सूरज की किरणों को घुसते हुए देखा। उसके बदन पर धोती ओढ़ाई थी—पता नहीं किसने ? शायद कर्कश आवाज़ वाला सिपाही होगा ! सारे आसमान को बुहारते हुए दिन खिल रहा था।

यह वेला आदि-अंत-रहित है। लगा कि शायद वह मर गया है।



अँधेरे कमरे में जब उसे फिर से झोंक दिया जायेगा, तब समय का परिज्ञान नहीं रहेगा। जैसे ही यह दहशत शुरू हुई कि बिना चेतावनी के दरवाज़ा खुला। दफ़्तर में महेश्वरय्या इंतज़ार कर रहे थे। मुँह पर चुप्पी की मुहर लगाये कार में बिठाकर ले चले। एक होटल के सामने कार रुकवायी और कृष्णप्पा को कमरे में ले गये। खुद अपने हाथों से नहला-कर नया कुरता और नयी धोती पहनायी और नारंगी का रस पिलाया।

जब सोकर उठा तो दिन ढला था। महेश्वरय्या ने कमरे में ही खाना मँगवाया। शीशे के जँगले के सामने बैठ कर गाँव की घटिया गलियों को, रंग उड़ी हुई इमारतों को देखते हुए कृष्णप्पा ने भात में दही मिलाकर खाया। महेश्वरय्या ने अपनी भावनाओं को दबाकर धीरे-धीरे कृष्णप्पा को रिहाई की कहानी सुनायी।

जब पता चला कि जोशी बेकार आदमी है तो महेश्वरय्या वारंगल-निवासी एक मशहूर कवि के यहाँ गये। उस कवि का, जिसने पार्वती-मंगल पर महाकाव्य लिखा था, तेलुगू साहित्य में बड़ा नाम था। ख्यात वैदिक घराने में उसका जन्म हुआ था। केवल ख़िताब में ही अष्टावधानी नहीं था वास्तव में भी था। वह कवि बड़ा देव-भक्त था, देवी का उपासक। केव रसिक होने मात्र से उसमें महेश्वरय्या की दिलचस्पी नहीं बढ़ी। यह क गृह-मंत्री का बड़ा चहेता था। पार्वती-मंगल का समर्पण अवधानी ने गृ मंत्री के नाम किया था। मंत्री महोदय ने उस महाकाव्य को भारी-से-भ पुरस्कार दिलवाये थे।

अवधानी की रात की महफ़िल में महेश्वरय्या व्हिस्की की एक बोतल लेकर हाज़िर हुए। बड़ी मीठी आवाज़ में अवधानी अपनी कवि

पड़ता था। महफ़िल में हर कोई प्रशंसा में झूम उठता था। कर्नाटक में गृह को अवधानी का प्रशंसक बताकर जब महेश्वरय्या ने व्हिस्की की बोतल दी तो मुसकराते हुए कवि ने कहा, "अच्छा! तो मेरे मदिरापान की कीर्ति कर्नाटक तक फैल गयी है।"

महेश्वरय्या और कवि महाशय में बड़ी देर तक सवंत्र और वेमन के बारे में बातें चलती रहीं। जैसे-जैसे रात बढ़ती गयी अवधानी की हुमस भी बढ़ती गयी। जब तेलुगू का ज्ञान छोटा पड़ा तो महेश्वरय्या संस्कृत में बातें करने लगे। अवधानी के अन्य प्रशंसक, जिनको संस्कृत का ज्ञान नहीं था, इन दोनों के संस्कृत वार्तालाप से पुलकित होकर व्हिस्की की चुस्की लेने लगे। जैसे ही बोतल ख़ाली होने को हुई, उन लोगों में से वेंकटरमणय्या नामक एक बड़ा व्यापारी अपनी कार से दूसरी बोतल ले आया। उन सबके लिए यह एक बड़ी अहम रात थी। बड़ी देर बाद अवधानी ने महेश्वरय्या के आने का कारण पूछा। महेश्वरय्या ने जब मासूम कृष्णप्पा की गिरफ़्तारी की बात कही तो उसी क्षण गृह-मंत्री को फ़ोन करने का पक्का इरादा लेकर अवधानी उठ खड़ा हुआ। अपनी कार में वेंकटरमणय्या दोनों को घर लिवा ले गया। गृह-मंत्री के नाम एक लाइटनिंग काल बुक की। अवधानी ने चोंगा उठाया और बड़ी बेतकल्लुफ़ी से लगभग पाँच मिनटों तक वार्तालाप चलता रहा। जब सुरीली आवाज़ में अवधानी अपनी नयी कविता गाने लगा तो वेंकटरमणय्या मारे ख़ुशी के निहाल होकर उँगलियों पर खड़ा रहा।

महेश्वरय्या घबरा गये थे कि कहीं अवधानी कृष्णप्पा की बात ही न भुला दें! जैसे ही कविता ख़त्म हुई तो हलका-सा अवधानी को टोककर कहा, "नाम कृष्णप्पा गौड़ा है।" अवधानी ने एक साधारण मामले के अंदाज़ में मंत्री महोदय से कृष्णप्पा की गिरफ़्तारी की बात कही और जवाब में कुछ सुन लिया। फिर बताया कि वह जिस फ़ोन पर बातें कर रहा है, वह गृह-मंत्री के परम भक्त वेंकटरमणय्या का है। फ़ोन का नंबर भी दिया। इससे वेंकटरमणय्या की बाँछें खिली हुई-सी दिखायी पड़ीं। चोंगा नीचे रखकर अवधानी ने महेश्वरय्या से कहा कि अभी दस मिनट के भीतर उनका काम बन जायेगा। वेंकटरमणय्या ने आलमारी से स्कॉच

लकर तीनों के लिए जाम भर दिये। अब तक आधी रात बीत चुकी उसके लिए जो रात बड़ी खौफ़नाक बनी हुई थी, उसी रात सारी वाई होने की बात कृष्णप्पा बड़े आश्चर्य के साथ सुनता रहा। दस मिनट के बाद फ़ोन आया। मंत्री के पी० ए० ने बताया कि फ़ोन जोशी नहीं मिल पा रहा है। दिन निकलते ही मंत्री महोदय खुद उसे न करेंगे। जोशी से सीधा वेंकटरमणय्या के घर फ़ोन आयेगा।

महेश्वरय्या उस रात वेंकटरमणय्या के घर पर ही सोये। दिन निकलने पर भी फ़ोन नहीं आया। नहाकर वेंकटरमणय्या दुकान को चला। अवधानी उठेगा दोपहर के बाद ही। मन-ही-मन देवी का ध्यान करते हुए महेश्वरय्या बाट जोहते रहे।

"आख़िरकार फ़ोन आया। तेरी रिहाई हुई। देख कृष्णप्पा, हमेशा राजा की नजर से बचकर जीना...लेकिन यह तेरे मिजाज के विरुद्ध है। ख़ैर, तेरी क़िस्मत...छोड़ दे अब इस बात को। शाम को लौट पड़ेंगे।" यह कहकर महेश्वरय्या ने गर्म साँस छोड़ी।

भाग तीन

"नागेश ! नागेश !"

बाहर बैठकर अखबार पढ़ता हुआ नागेश जल्दी से कृष्णप्पा के सोने वाले कमरे में आता है। अपनी आवाज़ पर निहाल होने वाले नागेश को सामने देखकर कृष्णप्पा को खुशी होती है। किशोर कुमार ने हॉस्टल में उसकी ऐसी ही सेवा की थी। अब वह इंजीनियर है। तबादले की सिफारिश के लिए आया था। जब नागेश उसके सामने आकर खड़ा हो जाता है तो कृष्णप्पा भूल ही जाता है कि उसे किस-लिए बुलाया था! आखिर नागेश ही पूछता है, "क्या अख़बार पढ़कर सुनाऊँ, गौडाजी ? आज कोई ख़ास खबर दिखायी नहीं पड़ती।"

"इस देश में कौन ऐसी ख़बर होती है भला ?"

खिड़की से बाहर देखते हुए कृष्णप्पा बोला। कृष्णप्पा द्वारा अपनी बात की विशेष प्रतिक्रिया न देखकर नागेश चुप खड़ा रहा। नागेश जैसे व्यक्ति, जिन्हें बातों की वक्त-ज़रूरत का लिहाज़ रहता है, राजनीति के क्षेत्र में बहुत विरले होते हैं। इसीलिए वह कृष्णप्पा का चहेता बना था।

"क्या सीता बैंक को चली गयी ?"

"हाँ, गौडाजी ! वीरण्णाजी ने उनके लिए कार भेजी थी। गौरी भी नर्सरी को गयी।"

"सवेरे-सवेरे कुछ कुहराम मचा था...।"

"स्कूल न जाने की ज़िद !"

कृष्णप्पा का चेहरा नरम पड़ गया।

"उसकी उम्र में मेरा भी मन स्कूल जाने से कतराता था, भैया ! 'महाभारत' सुनाने के बहाने जोयिसजी फुसलाकर लिवा ले जाते थे।"

नागेश कुर्सी खींचकर बैठ गया।

"कहेंगे कुछ ? लिख लूंगा।" उसने आग्रहरहित आवाज़ में पूछा।

"हां, लिख लेना। आज कुछ कहने का मन ही नहीं है, नागेश ! लगा कि पाँव तनिक और भी उठाया जा सकता है। कोशिश की। तुम्हें इसलिए बुलाया था कि क्या हक़ीक़त में उठाया जा सकता है, या सिर्फ़ यह मेरा वहम है ? देखो तो सही।"

कृष्णप्पा पांव खींच लेने की कोशिश में तन्मय हुआ।

"क्या कल से भी आज ज्यादा खींचा जा रहा है, नागेश ?"

झूठ बोलना कृष्णप्पा को भायेगा नहीं, अतः नागेश ने कहा, "मुझे तो ऐसा लगता नहीं, गौड़ाजी ! हाथ कैसा है ?"

कृष्णप्पा ने 'हाथ' कहते हुए नागेश के दिये रबर के गेंद पर उँगलियाँ चलाने की कोशिश कीं। उँगलियों में अपनी सारी ताक़त ले आने की चेष्टा करते हुए होंठ चलाया। गेंद की ठंडी चिकनी बाहरी गोलाई के गिर्द उँगलियाँ मुड़ गयीं। गेंद की नरमी के साथ दबाने की चाह से देह में सन-सनी-सी उत्पन्न हुई और फिर उँगलियों में उतर आयी। गेंद पकड़ में आते देखकर खुशी हुई। नागेश की आंखों में भी यह खुशी चमकते देखकर कृष्णप्पा का मन नाच उठा। गेंद को पकड़े-पकड़े ही अपनी ज़िद के प्रति उसका नरमाया विरोध और स्वीकृति का मज़ा लेते हुए बोला, "मैं बहुत अच्छा लट्टू नचाता था, यार !" वारंगल से लौटने के बाद बोवाई के दिनों वह खेत में धान के पौधे रोपा करता था, यह बात याद आयी। गांव जाने से पहले महेश्वरय्या के साथ गौरी देशपांडे से मिलने गया था। वह परीक्षा के लिए बैठी पढ़ रही थी। बाहर आकर स्वागत किया। कंघी के बिना सिर के बाल बिखरे हुए थे। पढ़ाई के कारण चेहरा उतरा हुआ-सा था। वह बेसहारा सुंदरी की भांति दीख पड़ी। कृष्णप्पा नरक से निकलकर आया था। उसे देखता रहा। अपनी वर्तमान स्थिति को गौरी के लिए बोझिल बन जाने का अहसास हुआ तो कृष्णप्पा का दिल पत्थर बन गया।

"आप महेश्वरय्याजी हैं। गांव जाने से पहले आपसे मिलने की

इच्छा थी।" वह बोला।

अनसूयाबाई ने कॉफ़ी देकर मेहमाननवाज़ी की। कृष्णप्पा के दुबले होने का कारण पूछा। महेश्वरय्या ने संक्षेप में सारा हाल इस तरह कह सुनाया कि कृष्णप्पा को किसी प्रकार का संकोच न हो। क्या उस समय बेचैन होकर गीली आँखों से गौरी उसे देख नहीं रही थी?

"परीक्षा के बाद हमारे गाँव आइयेगा।" कृष्णप्पा ने शिष्टाचारवश कहा।

उस समय उससे आग्रह करते क्यों नहीं बना? उसकी इस हलकी बात से गौरी मायूस हुई थी। ये सभी बारीकियाँ कृष्णप्पा को सता रही हैं। अब कृष्णप्पा को आशंका होने लगती है कि जब उसकी ज़िंदगी मोड़ पर थी, तब पूरी ख़बरदारी के साथ क्या सभी संभावनाओं के लिए वह खुला हुआ नहीं था? उस समय जो बात उसे कहनी थी, वह क्यों नहीं कह पाया था? गौरी के प्रति अपनी भावनाओं को मुँह से न कह पाने के पीछे क्या कोई घमंड था? या साथी के लिए न ललचाने का उसका कोई व्रत था? अथवा वारंगल के पुलिस-थाने रूपी नरक से निकलकर वह अपने-आप को प्रेत जैसा महसूस कर रहा था, यह वजह थी? क्या उसे श्वेत-शुभ्र छवि वाली, बिखरे बालों वाली गौरी के सामने अपनी देह गंदी लग रही थी? उसे चुपचाप खड़े देखकर कृष्णप्पा ने पूछा था, "आगे आप क्या करेंगी?"

उसके प्रश्न से ख़ैरख़्वाही का अंदाज़ पाकर शायद गौरी के दिल को दुख पहुँचा होगा। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

"नागेश! जिसे हम जी-जान से प्यार करते हैं, उसे पाने का साहस क्यों नहीं करते? पाने के बाद क्या उसकी क़ीमत घट जाने के डर से?"

यह प्रश्न नागेश की समझ से बाहर था। किंतु कृष्णप्पा की आलोचना का अनुमान करके कहा, "गौरी देशपांडे को आने के लिए लिखा है—दिल्ली के पते पर।"

नागेश को ललचायी आँखों से निहारते देखकर कृष्णप्पा ने लंबी साँस ली। मन में इच्छा हुई कि उसके आने तक हाथ-पाँवों में कुछ शक्ति आ जाये तो वह गाँव चला जायेगा। कीचड़ में टाँगें गड़ाकर धान के पौधे जमाने लगेगा। उस पीपल के नीचे बैठेगा, जहाँ पहले ढोर चराते समय

"उसकी उम्र में मेरा भी मन स्कूल जाने से कतराता था, भैया ! 'महाभारत' सुनाने के बहाने जोयिसजी फुसलाकर लिवा ले जाते थे।"

नागेश कुर्सी खींचकर बैठ गया।

"कहेंगे कुछ ? लिख लूंगा।" उसने आग्रहरहित आवाज़ में पूछा।

"हां, लिख लेना। आज कुछ कहने का मन ही नहीं है, नागेश ! लगा कि पांव तनिक और भी उठाया जा सकता है। कोशिश की। तुम्हें इसलिए बुलाया था कि क्या हक़ीक़त में उठाया जा सकता है, या सिर्फ़ यह मेरा वहम है ? देखो तो सही।"

कृष्णप्पा पांव खींच लेने की कोशिश में तन्मय हुआ।

"क्या कल से भी आज ज्यादा खींचा जा रहा है, नागेश ?"

झूठ बोलना कृष्णप्पा को भायेगा नहीं, अतः नागेश ने कहा, "मुझे तो ऐसा लगता नहीं, गौड़ाजी ! हाथ कैसा है ?"

कृष्णप्पा ने 'हाथ' कहते हुए नागेश के दिये रबर के गेंद पर उँगलियां चलाने की कोशिश की। उँगलियों में अपनी सारी ताक़त ले आने की चेष्टा करते हुए होंठ चलाया। गेंद की ठंडी चिकनी बाहरी गोलाई के गिर्द उँगलियां मुड़ गयीं। गेंद की नरमी के साथ दबाने की चाह से देह में सन-सनी-सी उत्पन्न हुई और फिर उँगलियों में उतर आयी। गेंद पकड़ में आते देखकर खुशी हुई। नागेश की आंखों में भी यह खुशी चमकते देखकर कृष्णप्पा का मन नाच उठा। गेंद को पकड़े-पकड़े ही अपनी ज़िद के प्रति उसका नरमाया विरोध और स्वीकृति का मज़ा लेते हुए बोला, "मैं बहुत अच्छा लट्टू नचाता था, यार !" वारंगल से लौटने के बाद बोवाई के दिनों वह खेत में धान के पौधे रोपा करता था, यह बात याद आयी। गांव जाने से पहले महेश्वरय्या के साथ गौरी देशपांडे से मिलने गया था। वह परीक्षा के लिए बैठी पढ़ रही थी। बाहर आकर स्वागत किया। कंघी के बिना सिर के बाल बिखरे हुए थे। पढ़ाई के कारण चेहरा उतरा हुआ-सा था। वह बेसहारा सुंदरी की भांति दीख पड़ी। कृष्णप्पा नरक से निकलकर आया था। उसे देखता रहा। अपनी वर्तमान स्थिति को गौरी के लिए बोझिल बन जाने का अहसास हुआ तो कृष्णप्पा का दिल पत्थर बन गया।

"आप महेश्वरय्याजी हैं। गांव जाने से पहले आपसे मिलने की

तब उसकी प्रामाणिकता कृष्णप्पा के लिए एक सवाल बनी थी। लेकिन अब अण्णाजी, जो उसे मात दे गया, शहीद जैसा लगता है। और उमा? लगता है कि उसके सामने जो स्थिति आयी, उसमें समझौता करके जी रही है।

और फिर वह वैरागी? आज तक उसके बारे में कृष्णप्पा की समझ में कुछ आया ही नहीं। कौन जाने कि वास्तव में उसकी भीतरी जिंदगी प्रज्ज्वलित थी, या थोथे साग-सब्जी की तरह खोखली थी! लोगों ने उसे छोड़ा नहीं। जहाँ वह रहता था, वहीं एक मंदिर बनवाया। सपने में आकर प्रश्नों के जवाब देते रहने की अफवाह उसके बारे में फैली है, इससे न जाने कहाँ-कहाँ से लोग आने लगे हैं। लेकिन वह किसी से बोलता नहीं। नियमानुसार सवेरे उठकर वह गली के छोर पर खड़े होकर 'गीता' गाता है, अपना आहार पाता है और पकाकर खा लेता है—इसमें कभी चूक नहीं हुई। लेकिन पहले की भाँति यह अब सरल नहीं रहा है। जिस गली के लिए वह निकलता है, उस गली में बंदनवार बँधे रहते हैं। जहाँ ठहर-कर वह 'गीता' का गायन किया करता है, वहाँ एक प्लेटफ़ॉर्म बनवाकर माइक लगवाया जाता है। वैरागी को लोग अब सिद्धेश्वर के नाम से पुकारने लगे हैं। वैरागी को न तो किसी से एतराज है और न किसी की तलब है। क्या ऐसा नहीं लगता कि अपने बहाने लोगों की जरूरतें पूरी होते देख उसे खुशी होती है? उस पर चढ़ती हुई चरबी को देखने से लगता है कि जो मिल जाये, उसी को पाने के व्रत ने ही उसे बढ़िया आहार मिलने लायक़ बनाया होगा।

कृष्णप्पा कभी-कभी उन दिनों की मानसिक स्थिति को लेकर आशंकित हो जाता है कि उस वैरागी के दिल में जवाब देने की उत्कंठा पैदा करने लायक प्रश्न उसके दिमाग में आया ही नहीं। वह उन दिनों सल्ना उठता था, यह बात सच है। लेकिन कृष्णप्पा को लगता है कि इसका कारण शायद यह था कि उसकी सारी बातें खोखली थीं। इसीलिए वैरागी से प्रश्न नहीं पूछा जा सका था। कृष्णप्पा को वैरागी कुछ हद तक एक मानक जैसा लगता है। जब साँप उसकी गुफा में घुस गया था, तब उसे जिस हिंसा का सामना करना पड़ा था उसे वह सहन नहीं कर पाया था। इससे उसकी

बैठा करता था। सामने वाले अमरूद के पेड़ पर पंचरंगी तोतों के आने की प्रतीक्षा करेगा।

"महेश्वरय्या भी आ जाते तो ठीक रहता।"

"लिखना चाहूँ भी तो उनका पता कहाँ है?"

"हाँ, वे ऐसे ही आदमी हैं। सहसा आ धमकते हैं। उस भाग्यवान पर अब रेस का भूत सवार हुआ है। कल बेंगलूर में रेस का मौसम शुरू होने वाला है न—शायद आ भी जायें।" इतना कह कृष्णप्पा करवट लेने की सोचकर सोया रहा। पता नहीं, करवट लेने की शक्ति कब इस देह में आयेगी? यह भी संभव है कि एक और स्ट्रोक का शिकार होकर वह मर ही जाये। लहू की एक बूंद कहीं अटक गयी होगी। वह हट भी सकती है, वहीं अटकी भी रह सकती है। हर पल चौकन्ना होकर जिये जाना ही अब अपनी क़िस्मत में लिखा है। अचानक यह देह इस अवस्था को आ पहुँची है—बिना किसी चेतावनी के।

कृष्णप्पा की ज़िंदगी में जिन्होंने प्रवेश किया था, उनमें कौन साबुत बचा है और कौन नहीं—इसकी तमीज़ उसे नहीं। बाहरी दिखावे-मात्र से कौन कैसा है, यह कह पाना संभव नहीं। उदाहरण के लिए उमा! अण्णाजी की मौत से उसे जो सदमा पहुँचा था, वह सिर्फ़ कृष्णप्पा ही जानता था। किसी से कुछ कहते न बनकर बीमारी के बहाने वह नैहर चली गयी थी। उस समय उसके पाँव भारी थे, अर्थात अब अण्णाजी का टा बड़ा हो गया होगा। उसे मोटर-साइकिल पर हिप्पीनुमा बाल बढ़ाकर ान दिखाते घूमते हुए कृष्णप्पा ने देखा है। सुना है कि उसके बाद उमा दो बच्चे और हुए। इस रहस्य को आज तक कृष्णप्पा ने छिपाये रखा। अपनी जीवनी लिखवाते समय भी नागेश से यह रहस्य नहीं कहा। ण्णाजी का दिल राजनीति से विमुख होकर तब दाम्पत्य-जीवन का सुख हने लगा था। शायद तभी उसकी हत्या की गयी। अब ख़याल आता है अण्णाजी ने जो चुना था, क्या वह समझदारी थी? लेकिन उसके मर ने के बाद लगता है कि वह उसके प्रश्न और अनुमान से भी ऊपर उठा ा था। उसने एक हीरो को देखा था। कितनी ही क्षुद्रता का शिकार पर भी उसकी बुद्धि तेज़ रोशनी देती रहती थी। जब वह जीवित था,

गांधी बाजार के पास एक पुराने घर में रहा करता था। कंट्रोल रेट पर पाया हुआ घर था। सौ रुपया महीना किराया। पाखाना घर के बाहर। कृष्णप्पा के लिए यह बहुत असुविधाजनक था। इसलिए सदाशिव नगर में किराये के अपने एक फ्लैट लेने की प्रार्थना वीरण्णा ने की। कृष्णप्पा की पत्नी सीता की भी दलील थी कि वह उसके बैंक से बहुत निकट पड़ता है। किंतु जब कृष्णप्पा ने यह कहकर इनकार किया कि एम० एल० ए० की हैसियत से मिलने वाली तनखाह में सौ से अधिक किराया दे पाना असभव है, तब वीरण्णा ने प्रार्थना की, "अच्छा, तो आप मुझे सिर्फ सौ ही किराया देते रहिये। बस।"

"दरअसल उसका किराया है कितना ? शायद सात सौ है न ?"

"उतनी रकम लेकर मुझे क्या करना है भला ? मैं आपको कोई मुफ्त में थोड़े ही दे रहा हूँ ?"

अपनी शारीरिक मजबूरी के कारण कृष्णप्पा सदाशिव नगर वाले फ्लैट में अनचाहे मन से आया था। इस जगह आने का एक कारण यह भी था कि सीता की आये दिन की कुढ़न कम हो जायेगी। पास में ही गौरी के लिए अँग्रेजी नर्सरी थी, जिसे पाकर सीता को बेहद खुशी हुई थी।

देश-भर में कृष्णप्पा कितनी बड़ी हस्ती रखता है, इसका पता सभी लोगों को तब लगा जब उसे स्ट्रोक हुआ। खुद राज्यपाल ने अस्पताल जाकर उसकी खैर-खबर ली थी। कृष्णप्पा हमेशा जिसकी कड़ी आलोचना किया करता था, उसी मुख्यमंत्री ने बंबई से एक स्पेशलिस्ट को बुलवाया था। देश के सभी वी० आई० पी० लोगों ने अस्पताल आकर कृष्णप्पा का कुशल-समाचार पूछा था।

किसी चीज की इच्छा न करके भी हर चीज उसे प्राप्त हो रही थी, इससे खुद कृष्णप्पा को भी आश्चर्य होता था। कृष्णप्पा ने समझा कि वीरण्णा बिना किसी लालच के उसकी सेवा कर रहा है। इसके एवज में वह क्या कर सकेगा भला ? फिर कृष्णप्पा का जो विरोध था, वह व्यवस्था से था, न कि व्यक्तियों से। इस व्यवस्था में वीरण्णा भी क्या औरों की भांति एक व्यक्ति नहीं ?

किंतु कभी-कभी कृष्णप्पा के मन में खटका होता है कि इस प्रकार

कर्म-स्वरूप की तपस्या के प्रति गहरी आशंका होती है। कृष्णप्पा ने अपने आदर्श—जो सभी संभावनाओं के लिए सक्रिय बनकर स्पंदित होते हुए जीने का रहा है—की तुलना में जो देखा था, वह उससे मेल नहीं खाता था।.

उसमें दरार कहाँ है और यह दरार क्यों पड़ी? मरने से पहले इसे जान लेना चाहिए। बस, अब अपने भाग्य में यही तो है। यों सोचते हुए वह अपने पार्श्व में प्राणशक्ति को बहाने की चेष्टा में लग जाता है।

"नागेश, मेरी माँ को लिवा लाने के लिए किसी को भेजना होगा न?"

"क्या मैं ही लिवा लाऊँ, सर?"

"नहीं, तेरा यहाँ रहना जरूरी है। अपने दोस्तों में से किसी को भेज दे।"



घर के सामने कार आकर रुकी। उससे वीरण्णा उतरे। खद्दर सिल्क का क्लोज़ कालर का कोट और पैंट पहने थे। आयु लगभग साठ वर्ष की होगी। बेंगलूर के दो बड़े होटल और तीन थियेटरों के मालिक। उनके पिता एक मामूली ठेकेदार थे। वीरण्णा अपनी करामात से लखपति बने थे। तिरुपति वेंकटरमण के बड़े भक्त थे और देश-विदेशों में उनके मंदिर बनवाने के लिए कमर कसकर काम कर रहे थे। सोशलिस्ट नेता तथा पूंजीपतियों के विरोधी कहलाने वाले कृष्णप्पा की तूती बजते देखकर सभी को आश्चर्य हुआ था। उनकी कृपा के लिए कई मंत्री तक याचना करते रहते थे। वीरण्णा स्वाभिमानी कृष्णप्पा के साथ, जो कभी किसी से कुछ माँगता नहीं था, बड़े अदब के साथ पेश आते। जब कृष्णप्पा को स्ट्रोक हुआ था, तब वह

"न, वीरण्णाजी, कार लेने लायक पैसा मेरे पास है नहीं।"

"धत्, पैसा, पैसा ! क्यों हमेशा पैसे की बात करते हो ? वह ज़िम्मेदारी मुझ पर छोड़ दीजिये।"

"वह सब होगा नहीं। क़र्ज़ा उठाना मुझे पसंद नहीं।"

"पसंद नहीं है तो जाने दीजिये। कर्ज़ा मत उठाइये। आपकी कार मैं ही ख़रीदकर रख लूँगा। मेरा बेटा भी एक फ़िएट की ज़िद किये बैठा है। आपकी मेहरबानी के एवज़ में जब भी आपको ज़रूरत पड़े, मैं अपनी कार दे दूँगा।"

नागेश कमरे से उठकर चला गया। वीरण्णा की मेहरबानियों से उसके दिल को दबते हुए उसने पहचान लिया है। उसके सुभीते के लिए वह बाहर चला गया है।

कृष्णप्पा ने निश्चयात्मक भाव से सिर हिलाते हुए वीरण्णा से 'ना' कहा।

"अच्छा तो अपने लिए न सही। मुझ पर तो कृपा कर सकेंगे न आप ?"

वीरण्णा जैसे लखपति के लिए दस-बारह हज़ार अधिक कीमत देकर एक फ़िएट ख़रीद लेना कौन बड़ी बात है ? इतनी-सी बात के लिए क्या उसके सामने हाथ फैलाने वाला आसामी है वह ? फिर भी कृपा की याचना कर रहा है, इसलिए कृष्णप्पा नरम पड़ गया। फ़ार्म पर हस्ताक्षर कर दिये। वीरण्णा के चले जाने पर नागेश भीतर आया।

"यह भी एक करप्शन है यार, नागेश। इस कार से वीरण्णा कम-से-कम दस हज़ार का तो लाभ उठा ही रहा है। कहता था कि मेरे लिए ख़रीद रहा है। हो भी सकता है...।"

"जाने दीजिये, सर ! क्या यह कार उनके लिए भारी पड़ेगी ? आपकी ज़रूरत के लिए ख़रीद रहे हैं। उन जैसे लोगों का यह फ़र्ज़ भी बनता है।"

नागेश की बात से कृष्णप्पा को तसल्ली हुई। इसीलिए कड़वी बातें कह पाना उससे बन पाया, "अभी तुम्हें तजुर्बा नहीं, नागेश ! मैं नरम पड़ता जा रहा हूँ। भीतर से सड़ता जा रहा हूँ। दस साल पहले ऐसे लोगों

लील से कहीं वह वीरण्णा को स्वीकार तो नहीं करता जा रहा है ! न होता है कि वीरण्णा की विनयशीलता पाजीपन का लक्षण है। हजा- किया हुआ उसका चिकना-चुपड़ा चेहरा, कानों पर निकले हुए बाल क के ऊपरी छोर पर जुड़ी हुई घनी भौंहें, मोटी गरदन, छोटे-छोटे क़दमों उसके इर्द-गिर्द चलते रहने का लहजा, 'माँजी', 'माँजी' की हाँक लगा- कर सब्ज़ीमंडी से लायी हुई साग-भाजी की टोकरी सीता के हाथ में थमाते हुए उसकी प्रशंसा पाने का करिश्मा—सभी कृष्णप्पा को किरकिराने लगते। उसके क्रांतिकारी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर नागेश जैसे युवक जब उसके पास होते हैं, तब बड़ी ही आत्मीयता के साथ वीरण्णा का बरताव करना कृष्णप्पा को अखरता था।

"अब क्या हाल है गौड़ा साहब का ? अच्छा है, दिन-ब-दिन इंप्रूव कर रहे हैं। देश की खुशक़िस्मती है।" यह कहते हुए वीरण्णा भीतर आकर एक कुर्सी पर बैठ गये। जो भी आता, वह उसकी देह की हालत के बारे में अकसर झूठ ही बोला करता। ऐसी शिष्टाचार वाली बातों का कृष्णप्पा जवाब नहीं देता।

"आपको देखने चला आया था, गौड़ा साहब ! आज दोपहर को दिल्ली से कोई स्पेशलिस्ट आने वाला है। उन्हें आपको दिखाऊँगा— एक्सपर्ट ओपिनियन के लिए। माँजी को तकलीफ़ न हो, इसलिए आपकी देखभाल के लिए कल से एक नर्स आया करेगी। अच्छा तो अब मैं चलूँ"

वीरण्णा चले गये। कमरे से बाहर जाने के बाद फिर कोई बात करके लौट आये, "भूल ही गया था, गौड़ा साहब ! आपको एक कार सख़्त जरूरत है। माँजी को घर के काम-काज से निबटकर बैंक पड़ता है। जब असेंबली का सेशन शुरू होगा, तब आपको लिवा ले के लिए भी वाहन चाहिए। टैक्सी से काफ़ी ख़र्च पड़ेगा। यों तो आप कार है, लेकिन वक़्त पर मिल आये तब न ? आप इस फ़ार्म पर एक क्षर कर दीजिये। आपके लिए सरकार को फ़ौरन एक फ़िएट का करनी पड़ेगी। एम० एल० ए० के नाते यह आपका हक़ भी है...।

पहले से भरे हुए आवेदन-पत्र पर कृष्णप्पा के हस्ताक्षर ले पेन तैयार करके वीरण्णा आगे बढ़ा।

"न, वीरण्णाजी, कार लेने लायक पैसा मेरे पास है नहीं।"

"धत्, पैसा, पैसा ! क्यों हमेशा पैसे की बात करते हो ? यह ज़िम्मेदारी मुझ पर छोड़ दीजिये।"

"यह सब होगा नहीं। कर्ज़ा उठाना मुझे पसंद नहीं।"

"पसंद नहीं है तो जाने दीजिये। क़र्ज़ा मत उठाइये। आपकी कार मैं ही खरीदकर रख लूंगा। मेरा बेटा भी एक फ़िएट की ज़िद किये बैठा है। आपकी मेहरबानी के एवज में जब भी आपको ज़रूरत पड़े, मैं अपनी कार दे दूंगा।"

नागेश कमरे से उठकर चला गया। वीरण्णा की मेहरबानियों से उसके दिल को दबते हुए उसने पहचान लिया है। उसके सुभीते के लिए वह बाहर चला गया है।

कृष्णप्पा ने निश्चयात्मक भाव से सिर हिलाते हुए वीरण्णा से 'ना' कहा।

"अच्छा तो अपने लिए न सही। मुझ पर तो कृपा कर सकेंगे न आप ?"

वीरण्णा जैसे लखपति के लिए दस-बारह हज़ार अधिक क़ीमत देकर एक फ़िएट खरीद लेना कौन बड़ी बात है ? इतनी-सी बात के लिए क्या उनके सामने हाथ फैलाने वाला आसामी है वह ? फिर भी कृपा की याचना कर रहा है, इसलिए कृष्णप्पा नरम पड़ गया। फ़ार्म पर हस्ताक्षर कर दिये। वीरण्णा के चले जाने पर नागेश भीतर आया।

"यह भी एक करप्शन है यार, नागेश। इस कार से वीरण्णा कम-से-कम दस हज़ार का तो लाभ उठा ही रहा है। कहता था कि मेरे लिए खरीद रहा है। हो भी सकता है...।"

"जाने दीजिये, सर ! क्या यह कार उनके लिए भारी पड़ेगी ? आपकी ज़रूरत के लिए खरीद रहे हैं। उन जैसे लोगों का यह फ़र्ज़ भी बनता है।"

नागेश की बात से कृष्णप्पा को तसल्ली हुई। इसीलिए कड़वी बातें कह पाना उससे बन पाया, "अभी तुझे तजुर्बा नहीं, नागेश ! मैं नरम पड़ता जा रहा हूं। भीतर से सड़ता जा रहा हूं। दस साल पहले ऐसे लोगों

छाया तक भी मेरे पास नहीं फटकती थी।"

इस बात के लिए नागेश की अपने प्रति और भी श्रद्धा बढ़ते देखकर ख़ुद को कोसते हुए, आँखें मूँदकर कृष्णप्पा ने कहा, "मुझे व्हील-चेयर पर बिठायेगा, नागेश ? बाहर कोई होगा। उसे भी बुला ले मदद के लिए।"



बेंगलूर में अक्तूबर की हवा मनभावन थी। आँगन में सीमेंट के फ़र्श पर नंगे हाथ-पाँवों पर धूप सेंकते हुए तथा उनमें ख़ून बहते रहने के अहसास की कल्पना करते हुए कृष्णप्पा बैठा था।

वारंगल से वापिस गाँव लौटकर तथा मामा से अपनी पुश्तैनी ज़मीन छुड़वाकर माँ के साथ एक छोटी-सी झोंपड़ी में घर बसाया था। गोठ में दो दुधारू मवेशी थे। तड़के उठकर कृष्णप्पा ही उन्हें दुहा करता था। अब जो मरियल जैसी उँगलियाँ हैं, वे ही उन दिनों मवेशी के थनों को फुसला फुसलाकर दूध उतरवाती थीं। ऊपर से नीचे तक दोनों हाथों से दो-दो थ को एक तान में जबरन, फिर भी कोमलता के साथ, दबाकर निचोड़त शुरू-शुरू में हाथ जल्दी ही थक जाते थे। बाद में चितकबरी कावेरी अ पिछली टाँगों को फैलाकर खड़ी हो जाती और थन का भार कृष्णप् एकतानी निचुड़न से धार बनकर उतरने लगता तो उसका आनंद लेते गहरी साँस लेने लगती। माँ दूध गरम करके देती। कृष्णप्पा इसे खेत की ओर जाता। गर्मी के दिनों में जब कुँआ सूख जाता और घुटनों तक पानी रह जाता, तब कृष्णप्पा उसमें उतरता था। वा कीचड़ भर-भरकर उठाकर देता, तो ऊपर शेषप्पा रस्सी से खींच दम-घुटे सोतों को सहलाकर जगाने के लिए कीचड़ उठाने के लि लालायित हो जाते। चंगेरी से इस तरह कीचड़ और पान

लगता तो सहसा ठंडे पानी के स्रोत उछलकर उँगलियों के पोर को छू जाते। तब सारी देह में सनसनी-सी दौड़ जाती।

"क्यों यारो, इस मेमार की पूजा करते हुए बद्दू बन बैठे हो! यह एक पत्थर ही तो है। उठाकर फेंक दो। तुम्हें सताने वाला भूत मठ का एजेंट नरसिंह भट्ट है, जो तुम्हारी सारी बोवाई-कटाई उठाकर ले जाता है।"

कृष्णप्पा अपने आस-पड़ोस के किसानों से कहता है। यह बात जोयिस जी के कानों तक पहुँचती है।

केले के पत्ते काटने के बहाने 'किट्टप्पा' कहते हुए जोयिसजी चौपाल में आ बैठते हैं। कृष्णप्पा का दिया हुआ दूध पीकर इधर-उधर की बातें करते हुए कहते हैं, "किट्टप्पा, सुना है कि तुमने मेमार को निरा पत्थर बताकर उसे उठा फेंकने के लिए कहा है। क्या यह सच है?"

जोयिस की छरहरी देह, ऊबड़-खाबड़ सफ़ेद दाढ़ी, लंबी चोटी, चेहरे पर सदा सौम्य लगने वाली आँखें देखते हुए कृष्णप्पा आहिस्ता से बात करता है। जोयिस के आने के कारण माँ भी पान-सुपारी चबाते हुए चौपाल में आ बैठती है।

"आप भी नरसिंह भगवान के अनुयायी हैं न? फिर कैसे अपने खेत से बेदखल हो गये भला? कौन उसके लिए ज़िम्मेदार है?"

"हम तो ठहरे मियाँ-बीवी दो प्राणी। थोड़ा-सा वज़ीफ़ा मिलता है। गाँव में एक ब्राह्मण तो रहे जो कुछ जोतिष-ओतिष भी जानता हो। इसी विचार से तुम्हारे मामा और गाँव के दो-चार गौड़ा परिवार हमारी गृहस्थी के लिए ईंधन, आटा-दाल, साग-सब्ज़ी, फल-मेवा वगैरह देते रहते हैं। फिर मुझे क्यों खेती चाहिए भला?"

"अच्छा, जोयिसजी, नरसिंह भगवान के मठ का एजेंट भट्ट है न? क्या उसी ने आपको खेत से बेदखल करके खुद की काश्त के लिए नहीं रख लिया?"

"लगान चुकाया नहीं गया था, इसलिए रख लिया। ठीक ही तो है। क्या उसे चुकाया भी जा सकता है?"

"बेशक चुकाया जा सकता है, जोयिसजी!"

"आजकल के क़ानून हम नहीं जानते। लेकिन अदालत की सीढ़ियाँ
कर किसी का उद्धार होते हुए हमने नहीं देखा। ख़ैर, जाने दो। मेरे
ाल का तुम्हारे इस उलटे सवाल से कोई संबंध ही समझ में नहीं अ
ा।"

"संबंध है।"

"तब बता दो। 'शिष्यादिच्छेत् पराजयं' कहा जाता है।"

"देखिये, जोयिस जी, मेमार पर विश्वास रखने के कारण ही ये शूद्र
लोग उस नरसिंह भट्ट से डरते हैं। कह लेते हैं कि अपनी ऐहिक अवस्था
में तनिक भी परिवर्तन संभव नहीं। समझते हैं कि मुर्गी-बकरी खाने वाला
मेमार ही अपने को उभार सकता है।"

"किट्टप्पा, मैं भी मानता हूँ कि तुम्हारे लोग निराकार, निर्गुण ब्रह्म
को समझने लायक़ बनें। धर्म-कर्म के द्वारा ही वे ऊपर उठ सकेंगे, न कि...।"

"मेरे कहने का मतलब यह नहीं, जोयिसजी ! सुनिये। अगर वे लोग
नरसिंह भट्ट का सामना करके अपनी ऐहिक ज़िंदगी को अर्जित कर लेंगे
तो धीरे-धीरे इन भेड़-बकरी खाने वाले भूत-प्रेतों की पूजा से मुक्त हो
जायेंगे। किन्तु नरसिंह भट्ट की लानत-मलामत करके जीना चाहें तो मेमार
में विश्वास आड़े आ जाता है न ! इसलिए मेरे सामने प्रश्न यह है कि उस
मेमार को जड़ से उखाड़ फेंकने से जो हिम्मत बढ़ेगी, उससे नरसिंह भट्ट
की तोंद गलानी होगी या दूसरा काम पहले करके मेमार की आराधना
करने की अवस्था से ऊपर उठना होगा...?"

कृष्णप्पा भाँप लेता है कि नरसिंह भट्ट को एकवचन में भला-बुर
सुनाते देखकर ब्राह्मण जोयिस को कसमसाहट होने लगी है। जोयिस ने ह
कई बार कृष्णप्पा के सामने नरसिंह भट्ट के लालची होने की शिकाय
की है और कहा है कि जब मठ-मंदिर ही धर्म के रास्ते से भटक जाये
क्या हाल होगा ! मठ के स्वामीजी ने खुद एक रंडी को रखकर अ
सारे कारोबार अपने छोटे भाई के सुपुर्द करके जोयिस जैसे धर्म-भ
लोगों के साथ घृणात्मक व्यवहार किया था। अण्णाजी ने उसमें जो वि
ब्रोये थे या वारंगल के थाने में उसने जो नरक देखा था, उसे इस ब्राह्म
सामने बयान करके यक़ीन दिलाना असंभव मानकर कृष्णप्पा ने वह वि

छोड़ दिया था। फिर भी जोयिसजी तथा उनकी पत्नी, कृष्णप्पा के दिल में अपनत्व की भावना उत्पन्न करते हैं। जब शुरू-शुरू में कृष्णप्पा गाँव आया था, उन दिनों कड़े जाड़े में भी जोयिसजी एक धोती पहने तथा दूसरी ओढ़े हुए दिखायी पड़ते। कृष्णप्पा ने उनके लिए जब ऊनी शॉल ला दी थी तो रुक्मिणियम्मा की आँखों में चमक और आँसू उमड़ पड़े थे।

मांस न खाने के कारण कृष्णप्पा जोयिस का और भी आत्मीय बना था। जोयिस की धारणा थी कि इस दुनिया में अब भी वर्षा-पानी, फ़सल आदि जो हो रहा है, वह कुछ ही ब्राह्मणों द्वारा त्रिकाल संध्या-वंदन आदि करते रहने के ही कारण। कृष्णप्पा इस धारणा को प्रेम की वजह से सह लेता है। जोयिसजी समझते हैं कि अपने जप-तप के फलस्वरूप ही कृष्णप्पा इतनी तरक़्क़ी कर रहा है। जोयिसजी की इस धारणा को भी कृष्णप्पा सह लेता। चाहे कितना ही गंदा क्यों न हो लेकिन पूर्व-जन्म के पुण्य-प्रभाव से ही नरसिंह भट्ट को ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ है, कृष्णप्पा इस धारणा की क़दर नहीं करता था। वह जानता था कि अपने जप-तप के फलस्वरूप ब्राह्मण बने नरसिंह भट्ट का निरादर करते देखकर कृष्णप्पा जोयिस के लिए एक पहेली ही बन गया था।

लगान की वसूली के दिन आते कि नरसिंह भट्ट, उसका अमीन, पट-वारी—ये सभी लोग गाँव के किसानों के लिए सिंह-स्वप्न बन जाते। इस बार एक घटना हुई। लगान की अदायगी न किये जाने के कारण वीरे गौड़ा नामक एक किसान के घर नरसिंह भट्ट अपने आदमियों के साथ घुस गया। वीरे गौड़ा के बच्चे को ज्वर था। उसकी पत्नी बच्चे के लिए काँसे के बर्तन में दूध गरम कर रही थी। भट्ट का ख़याल था कि वीरे गौड़ा ने भीतर कहीं सुपारी छिपा कर रखी है। लेकिन भीतर घुसकर देखने पर जब वहाँ कुछ नहीं पाया तो उसका पारा चढ़ गया। शायद गौड़ा ने सुपारी कहीं और रवाना की होगी, इस चिड़चिड़ाहट में दाँत किटकिटाते हुए भट्ट ने नौकरों से भीतर का सारा सामान आँगन में फेंकने के लिए कहा। गौड़ा की पत्नी के गिड़गिड़ाने पर भी उसकी एक न सुनी। चूल्हे पर रखा हुआ दूध भी आँगन में गिरा दिया। इस घटना से गाँव के लोग आतंकित हो गये थे। कानों में बुंदकी पहने, माथे पर भभूत लगाये, किनारीदार धोती पर काला मर्ज़ का

ट पहने, हाथ में लाठी लिये, उभरे दाँतों वाला काला-कलूटा भट्ट वीरे ड़ा को साक्षात यम-जैसा ही दिखायी पड़ा था। और फिर उसी शाम वर-पीड़ित बच्चा भी मर गया।

वारंगल थाने की हिंसा की जड़ें अपने ही इर्द-गिर्द देखकर वीरे गौड़ा के बच्चे को दफ़नाने के लिए खुद कृष्णप्पा चला। उसने वहाँ आये हुए किसानों से कहा था : 'मठ का भट्ट अधिकाधिक लगान वसूल कर रहा है। लगान के अनाज का माप साल-दर-साल बढ़ता जाता है। तुम लोग ज़िद करो कि पिछले साल के माप से ही अनाज देंगे। तब वह तुम पर ज़ुल्म करने के लिए आगे बढ़ेगा। अपने घर की औरतों को पहले ही आगाह कर रखो कि गोबर-पानी मिलाकर उसमें झाड़ू डुबोये तैयार रखें। अगर भट्ट भीतर घुस जाये तो झाड़ू से पिटाई कर दें। इससे बामन हैरान हो जायेगा।'

दूसरे दिन एक ग़रीब गौड़ा के घर भट्ट की सफ़ेद कमीज़ और सर्ज के कोट पर गोबर में डूबे झाड़ू की बौछार हुई। तालुके-भर में यह ख़बर फैल गयी। इस घटना के फलस्वरूप कितनी ही कारवाइयाँ हुईं।

पुलिस की मदद से भट्ट ने बेदख़ल करवाना शुरू किया। संगठि होकर किसान अपने-अपने खेतों को जोतने के लिए गये। क़ानून के अनुसा उन्हें गिरफ़्तार किया गया। यह ख़बर पाकर देश के कई भागों से समा वादी लोग कृष्णप्पा के हुलियूर गाँव आ-आकर गिरफ़्तार होने लगे। घटना के कारण भारत-भर में हुलियूर गाँव 'कर्नाटक का तेलंगाना' से मशहूर हुआ।

इस आंदोलन में किसानों की पूरी जीत तो नहीं हुई, लेकिन मठ नरम पड़ गया। नापने का माप बढ़ाना छोड़कर अपने पाँच बरस माप पर आ गया। इस घटना के फलस्वरूप सारे किसान संगठित हो रैयतों के अनुरोध पर कृष्णप्पा चुनाव लड़कर जीत गया। अब असेम्बली का उसका तीसरा चुनाव था। किसानों की थोड़ी-बहुत स्याएँ सुलझती गयी हैं, उनमें कृष्णप्पा का महत्वपूर्ण हाथ रहा है- इस बात को हर कोई मानता है। पहले वाली ब्राह्मण-विरोधी इनामदारी रद्द की। लेकिन जमींदार वर्ग—ओक्कलिगा और लि में हुकमत होने के कारण जमीन के दख़ल पर सीलिंग

आंदोलन पर जोर देना पड़ा। कम-से-कम जुबानी ही सही, अब सरकार 'जोतने वाला ही जमीन का हकदार' नारे को कबूल तो कर रही है। लेकिन जोतने वाले सभी जमीन के हकदार नहीं बने हैं। इधर जितने मालिक बने हैं, वे औरों को हकदार बनने देना नहीं चाहते।

अण्णाजी ने कहा था कि मनुष्य का स्वाभिमान बढ़ाने के लिए मालियत की यह लड़ाई अनिवार्य है। यह बात अब कृष्णप्पा की समझ में आ रही है। लेकिन फ़िलहाल वह जिस राजकीय शान में सराबोर हुआ है, वह मनुष्य को धीरे-धीरे क्षुद्रता से मुक्त कर सकेगी, इस बात में उसे अभी शंका है। तीनों जून लोगों के बीच उनके बखेड़े सुनते-सुनते वह पक जाता है। उसे तनहाई की कामना होती है। हमेशा संघर्ष में डूबे रहने के कारण हर पल न जाने कहाँ-कहाँ अँखुआने वाली जीवन की छोटी-छोटी खुशियाँ उसकी नजर से चूक जाती हैं। इसकी बेचैनी उसे रहती है। गांधी बाजार वाले अपने किराये के घर में शाम के समय जब कभी तनहाई नसीब होती है तो बाहर कम्पाउंड मे बैठकर निहारने लगता है। निरुद्देश्य संभ्रम में लम्बा लहँगा पहने लड़कियों को घूमते देखकर जलन होती है। आगे की ज़िंदगी में होने वाली संदिग्धताएँ, मध्य-वर्ग के माँ-बाप की परेशानियाँ उन्हें सालती हुई दिखायी नही देती। जूड़े मे चमेली की वेणी पहनकर टोलियों में फुसफुसाहट करती हुई बिजली की बत्तियों के नीचे, पेड़ों तले, उनकी नज़रेबाज़ी को कृष्णप्पा आधा घंटा प्यार से देखा करता है। लड़कों मे शर्माने वाली कुछ लड़कियाँ होती हैं तो कुछ उन्हें छेड़ने वाली। क्या कृष्णप्पा को उसके साथ वाली लड़कियाँ अफ़ीकुन-प्रिंस नहीं कहा करती थीं? लेकिन वह तो हमेशा तनाव में रहा करता था।

सोचने लगता है कि गौरी देशपांडे फ़िलडेल्फ़िया मे क्या कर रही होगी? उसकी चिट्ठी मिले और उसे लिखे काफ़ी दिन हुए। सुना है कि इन दिनों वह भी राजनीति में रुचि लेने लगी है। उसका साथी मार्क्सवादी सोशलिस्ट है। उसकी दलील है कि भारत के लिए पार्लियामेंटरी राजनीति बेकार है। गौरी पहले ऐसी नहीं थी। उसकी जो मौजूदा धारणा है, वह क्या उधार की है या खुद उसी की—कुछ पता नही चलता। फिर भी, उससे शादी की बात न छेड़ने का अब अफसोस होता है। जब लूमिना से

शादी की वात कही थी तो उसने उसे गंभीरता से दिल पर ही नहीं लिया था। लेकिन अब ये वेदनाएँ उतनी तीव्र नहीं रही हैं। डर लगता है कि वह एक विशिष्ट व्यक्ति वनकर खोखला होता जा रहा है। वरना उसका भीतरी ज़िंदगी का तनिक भी ख़्याल न रखने वाली सीता से क्या वह शादी करता ? इस बात पर उसे कसमसाहट होती है। गोपाल रेड्डी के देहांत के बाद अकेला रहना दूभर देखकर ही तो शादी की थी। उसके शुभचिंतक मित्रों ने जब ऐसी औरत से शादी करने की सलाह दी थी जो उसके खान-पान की देखभाल कर सके तो उसी लायक़ औरत से शादी करने की चाह उसके मन में भी हुई थी। अर्थात औरत की संगति में जो तीव्रता होती है, उससे डरकर ही तो सीता जैसी औरत से व्याह किया था। तत्पश्चात उसके व्यक्तित्व में जिस तीव्रता की तलब थी, उसे लेकर कुछ ख़ामी-सी महसूस होने लगी थी। जैसे अण्णाजी कहा करता था, शायद वह फ़्यूडल ही होगा। शादी की जरूरत न देखकर ही शायद लूसिना के साथ तीव्र प्रणय संभव हो सका था। शादी में एक बाँदी की ही कामना की थी, न कि एक सहेली की। इसीलिए शायद गौरी को खो लिया। यही सब सोचते हुए वह सिगरेट सुलगाता है। गली के सभी लड़के-लड़कियाँ ओझल हो जाते हैं। पड़ोस वाला बच्चा पहाड़े रटता है। भीतर सीता किसी बात पर कुढ़ती है। पति का एकांत में मिलना ही दूभर हो गया था, इसलिए इस मौक़े का लाभ उठाकर अपना सारा उफान पति के कानों तक पहुँचाती है। भीतर जाकर, कृष्णप्पा अपना रोज़ का पेय—क्वार्टर-व्हिस्की—लिये टेबिल के सामने बैठ जाता है।

आज की बात कल याद नहीं रहती। दिन-पर-दिन गुज़रते जा रहे हैं। असेंबली में उग्र भाषण, बाहर उग्र भाषण, उसके-इसके ख़िलाफ़ प्रचंड विरोध, दिन निकलते ही तरह-तरह की माँग लिये आ धमकने वाले लोग, किसी के खंडन पर दस्तख़त, किसी के समर्थन पर दस्तख़त—बस यों ही सब बीतता जाता है। इसी बीच एक बड़ा मालदार आदमी कृष्णप्पा का मित्र बना था। गोपाल रेड्डी, जो कोलार की ओर से चुनकर आया था, अमीर होने पर भी मार्क्सवादी था। बेहद सफ़ेद काँछेदार धोती और महीन कुर्ता पहनने वाले सुडौल बदन के इस मार्क्सवादी में, जो बेंज़ कार में

घूमता रहता था, अपने ही वर्ग के विनाश की उत्कटता देखकर कृष्णप्पा उस पर फ़िदा हो गया था। गोपाल रेड्डी जब उसके साथ जेल में था, तब उसकी चुस्ती तथा कष्ट-सहिष्णुता को देखकर चौंक गया था। धन, संपत्ति, ओहदा आदि के साथ बेदरकारी से पेश आने वाला गोपाल रेड्डी सिनेमा, संगीत, साहित्य—सभी में जो उत्कृष्ट हो, उसका हिमायती था। कलकत्ता में अली अकबर खाँ की संगीत-सभा की ख़बर पेपर में पढ़ी तो हवाई जहाज़ से कृष्णप्पा को लेकर कलकत्ता जा पहुँचता। ऐसा पागलपन था उसका! जितनी बेतकल्लुफ़ी से बम्बई के 'ताज' में रह सकता था, उतनी ही सहजता से झोपड़ियों में, जेल में वह रहता था। अलगाव के साथ उपभोग कर सकता था। ताड़ी और मिर्चों के पकौड़े उसे उतने ही पसंद थे, जितने स्कॉच और पनीर। कृष्णप्पा की धारणा थी कि बड़ी भारी संपत्ति जीवन में एक अनोखी रौनक़ ला देती है, वह गोपाल रेड्डी के संपर्क में आकर बदल गयी। देखा कि जहाँ दौलत होती है, वहाँ ज़िंदगी के गुण-लक्षण ही भिन्न होते हैं। कृष्णप्पा के चुनाव के सिलसिले में गोपाल रेड्डी जब हुलियूर आया था, तो वह वहाँ किसी किसान की चौपाल में सोता, सवेरे केले के पत्तल में परोसी गयी काँजी कैरियों के अचार के साथ बड़े मज़े से खा लेता। घास का बोरिया, पत्तल की टोपी, पत्तल की बरसाती, कटहल के समोसे, बम्बू की छड़ी—वे सभी चीज़ें जो नित्य-जीवन में अदना लगती हैं, उसकी निर्लिप्त चाहत में गा उठती थीं—जिस प्रकार उसके भाग की औरत का तन-बदन गा उठता था।

जब गोपाल रेड्डी के गाँव गया, तभी कृष्णप्पा को अपने मित्र की शोभा का दर्शन हो सका था। वहाँ वह मालिक था। उसके पिता एक तानाशाह। नौकर-चाकर उनकी ओर पीठ कर नहीं चल सकते थे। शाही महल जैसे उनके घर में न कहीं बच्चों का रोना सुनायी पड़ता और न कहीं औरतों का हँसना। रेड्डी के पिता जहाँ कहीं उठते-बैठते, वहाँ सन्नाटा छाया रहता। गोपाल रेड्डी ने बड़े पसोपेश के साथ कृष्णप्पा को सिर्फ़ एक दिन के लिए अपने यहाँ ठहराया था। अपनी अमीरी के प्रति कृष्णप्पा की वितृष्णा को देखकर उसके प्रति गोपाल रेड्डी का अभिमान और भी बढ़ गया था। क्या गोपाल रेड्डी जानता नहीं कि ऐसी व्यवस्था की रक्षा के

लिए ही तो पुलिस-थाने हैं, जैसाकि उसने वारंगल में देखा था ?

गोपाल रेड्डी के व्यापक अभिमान से कृष्णप्पा ढीला पड़ गया। निहाल हो गया। पीना सीखा। लड़कियों के साथ सोया। व्यवस्था के प्रति विरोध का कृष्णप्पा का सारा क्रोध, जो शरीर से चू पड़ने वाले पसीने की तरह व्यक्त होता था, अब अपनी तीव्रता और सीमा को खो चुका था। वह समूचा देखने का हामी बन गया था। कृष्णप्पा की विप्लवकारी आतंता के साथ गोपाल रेड्डी अपने चुस्त विचार जोड़ता जाता। एक से दूसरा विचार प्रोत्साहित होता जाता और कृष्णप्पा को अब औरत, शराब, संगीत, महफ़िल, हवाई उड़ान आदि नैतिक रूप से खटकते नहीं थे। साधारण मामलों से अबाधित रहना, पैसे के लिए तरसना, कड़वी बातें करना, देह को औरत, भोजन और शराब से तृप्त करना, तरसे बिना चाह की चीज़ हासिल करना—सभी एक साथ, एकमुश्त मिल जाने के कारण कृष्णप्पा उड़ता गया। अहसास होने लगा कि वह सबसे ऊँची चोटी पर खड़ा है। कल जिस लड़की के साथ सोया था, उसे आज भुला भी देता था। अमिट याद लिये अगर आज तक कोई बची है तो वह चीते की खूबसूरती वाली सिर्फ़ लूसिना। कभी-कभार वारंगल के दिन-रात याद हो आते हैं। लेकिन ज़िंदगी को मुरझा डालने वाले क्षुल्लक मामलों को मनमाने ऐश्वर्य और उदारता की मदद से जला डालने का कमाल गोपाल रेड्डी को हासिल था। कृष्णप्पा ने सोचा कि धन-दौलत से बेदरकार अपने सपने की नयी ज़िंदगी दैनिक स्वरूप में इस प्रकार लापरवाह बनी रहेगी।

एक बार महेश्वरय्या आये थे। दोनों को साथ-साथ देखकर मानो उनके हलक़ में कुछ अटक-सा गया था। औरत के लिए लार टपकाने वाले महेश्वरय्या को शायद अपनी ऐय्याशी से कोई गिला नहीं था। ज़िद करके पूछने पर उन्होंने कहा था, "कृष्णप्पा, यह बहुत दिन टिकने वाला नहीं है, रे ! क्या तेरा मन फिर से पीपल के नीचे बैठकर ढोर चराने को करता है ?" वाक़ई उनके कहे अनुसार वह टिका नहीं। गोपाल रेड्डी कैंसर से मर गया। उसके बाद कृष्णप्पा कई दिनों तक खोया-खोया-सा रहा। तब शुभचिंतकों के अनुरोध पर सीता से शादी की थी।

गोपाल रेड्डी के साथ जो सुख देखा था, वह अब भ्रम-जैसा लगता है।

उससे भी अधिक पढ़ा-लिखा बुद्धिमान था वह। अच्छा खिलाड़ी। संगीत में सूक्ष्म रुचि रखने वाला। साथ वाली औरत से यों पेश आता कि खुद औरत ही भूल जाती कि वह कीमत पर आयी है। अपनी अमीरी के फेर में न पड़ने वाला समझकर ही शायद उसने मुझसे दोस्ती बढ़ायी थी। मेरे जैसे गवाह के सामने दौलत को नाचीज मानकर उसे फूंकने में उसे रिहाई का अतीव सुख मिला होगा। दोस्त बनकर भी वह मेरे साथ एक पूजनीय भावना से पेश आया करता था। अपने तनाव को ढील देने के लिए ऐसी आँखों की जरूरत थी। महेश्वरय्या, अण्णाजी, गौरी की तरह उसने भी उसमें अलौकिकता को देखा था। भीतर-ही-भीतर रगड़ खाकर जो चीज़ जल उठी थी, उससे वह सेंक लिया करता था। घुटती हुई यातनाओं को उसने अपनी मैत्री के जरिए गाने लायक बनाया था। इससे कृष्णप्पा के खुद के भीतरी जीवन में जो कसैलापन—असहनीय कसैला स्वाद—था वह कम होता गया। गोपाल रेड्डी की मौत से लगा था कि वह यतीम हो गया है।

"नागेश !"

नागेश, जो उसे धूप में बिठाकर स्वयं भीतर बैठा था, सामने आ खड़ा हुआ।

"भीतर ले चल। धूप तेज हो गयी।"

नागेश उसे ठेलते हुए कमरे में ले गया।

"दराज में बटुआ है, दे !"

नागेश ने जब बटुआ ला दिया तो दो सौ रुपये निकालकर उसके हाथ में थमा दिये। नागेश कुछ न समझकर कृष्णप्पा का मुँह ताकने लगा।

"तेरे पास कपड़ों का दूसरा जोड़ा दिखायी नहीं पड़ता। सिलवा ले।" उसने कहा।

"न, गौड़ा साहब।"

"ले ले रे, मुझसे नखरे मत कर !"

"आपके बटुए में तो इतनी ही रकम है।"

"रे नागेश, सुन। दायाँ हाथ अभी हिलता है। उस पर भी स्ट्रोक होने से पहले...।" मसखरी में कही हुई अपनी बात से नागेश को मायूस

होते देखकर कहा, "पागल कहीं का ! तू जानता नहीं। मेरी बीवी जो है न, बड़ी कंजूस है। मेरी तनख़्वाह से बचा-बचाकर बैंक में दस हज़ार जोड़-कर रखा है। अब चुपचाप ले ले ये पैसे।"

कृष्णप्पा नागेश की हालत जानता था। ग़रीब ब्राह्मण-परिवार। बाप सदा चिड़चिड़ाने वाला एक मुनीम था। बड़ा भाई इंजीनियर। उसकी पत्नी पहले दर्जे की कंजूस थी। अतः भाई से मिलने वाली मदद नाममात्र थी। घर में ब्याहने वाली छह बहनें। पढ़ाई अधूरी छोड़कर जुलूस-बुलूस के पीछे राजनीति में समय खपाने वाले बेटे के प्रति माँ बेचैन रहती। नागेश का सोना—पार्टी के दफ़्तर में। खाना—जहाँ मिल जाये। कॉफ़ी-सिगरेट का इंतजाम हो जाये तो ठीक। वह सपना देखा करता है कि आने वाली समता-व्यवस्था में उसकी हालत सुधर जायेगी। समय गुज़ारना उसकी आदत-सी बन गयी है। एच० एम० टी० में नौकरी दिलवाना चाहें तो वह 'ना' कहता है। नौकरी की बात को इंसल्ट मानकर उसे ग़ुस्सा आ जाता है। उसकी राय में सभी की भाँति उद्योगी बनकर जिये जाना घटियापन है। वह कोई ऐसा होनहार भी नहीं। लेकिन कृष्णप्पा के व्यक्तित्व से प्रभावित युवकों में यह भी एक था। कृष्णप्पा को इस बात का अफ़सोस होता रहता है कि उसके राजनैतिक विचार तथा जीवन-क्रम ने जादू डाल कर कुछ युवकों को फँसा लिया है। ऐसे लोगों की उम्र बढ़ने की बात याद आती है तो दिल घबराता है।

"नागेश, तुझे एक कहानी सुनाऊँ !" सहसा जोयिस की बात याद आ जाने से वह कहता है। नागेश नोटबुक में सारी बातें दर्ज करता चलता है।

हुलियूर के किसान जब गोबर में झाड़ू डुबोकर भट्ट के पीछे पड़ गये तो हर रोज उसे जनेऊ बदलने की नौबत आ गयी। ब्राह्मण पर इस प्रकार का हमला होते देखकर व्यथित जोयिस से मज़ाक करने का मन होता, 'आपके बनाये जनेऊओं की तो अब बिक्री बढ़ गयी है, फिर रंज क्यों ?' लेकिन कृष्णप्पा कहता नहीं, खुद को रोक लेता है। जब उसकी माँ भी घबरा जाती है तो कृष्णप्पा धीरे-से कहता है, "मुझे आप अपने बेटे की तरह मानते हैं न, जोयिसजी ?"

"कैसी बात करते हो? वरना मैं क्यों तुम्हें नसीहत देने आता ?"

"मरते हुए बच्चे के लिए रखा दूध बिखराना बड़ी ग़लती है, या ऐसे ब्राह्मण को झाड़ू से मारना ?"

"दोनों गलत हैं। अपने किये पाप के लिए भट्ट नरक को जायेगा। लेकिन उसका ब्राह्मण-जन्म जो है न, उसे झाड़ू से पिटवाकर तुम क्यों पाप मोल लेते हो ?"

कृष्णप्पा की माँ ने, जो जोयिस की बातें सुनती बैठी थी, तवाकू में चूना मलकर मुँह के हवाले किया। फिर बेचैनी के साथ अपनी सम्मति प्रकट की। उसके साथ कृष्णप्पा को बातें करना बेकार-सा लगा। खेद हुआ कि उपनिषद् पढ़ा हुआ दरिद्र ब्राह्मण भी कितना भोंदू है!

"जाति के बहाने आपको भी भट्टजी के पक्ष में बातें करते देखकर खेद होता है, जोयिसजी!"

वास्तव में कृष्णप्पा को खेद के साथ बातें करते देखकर जोयिसजी चौंक जाते हैं।

"जब तक इस माया-प्रपंच में फँसे हैं, तब तक ये जाति-पाँति सभी सच ही तो हैं न ?"

"तब क्या आप मानते हैं कि मैं कोई पाप करके शूद्र पैदा हुआ हूँ? आपको और ताईजी को क्यों मेरे साथ बेटे-सा लगाव है ?"

रुक्मिणियम्मा को कृष्णप्पा 'ताई' कहा करता था।

"भट्ट जैसे पाखंडियों के कारण हमारे पूर्वजों का सारा पुण्य मानो पानी में चला गया है। तुम्हें बताने से क्या प्रयोजन भला? ऐतिह्य है कि खुद आदि शंकराचार्य ने कालटी से बदरी जाते समय मार्ग में एक दिव्य प्रभा को देखकर इस नरसिंह भगवान की प्रतिष्ठापना की थी। मठ कैसा था, अब क्या हो गया है? वैदिक धर्म कहता है कि मूक मवेशियों की भी हिंसा नहीं करनी चाहिए...।"

जोयिस की आँखें गीली हो गयीं। उभरी हड्डियों वाले उनके सीने पर रुद्राक्ष की माला लटकती देखकर कृष्णप्पा का दिल पिघल गया।

"दूर से देखने पर हिंसा की तरह प्रतिहिंसा भी घिनौनी लगती है, जोयिसजी! लेकिन जब झाड़ू लेकर पिटाई के लिए आगे बढ़ते हैं तो

को दिखायी नहीं पड़ता कि उनमें कितना स्वाभिमान जगा रहता है ! ड़े-मकोड़े की भाँति वे लोग सहते रहे हैं, उसी की वजह से मठ भी ता गया। आपके भट्ट के लिए भी छोटे कीड़े खाने वाला बड़ा कीड़ा बन ना संभव हो गया।''

हैरान होकर जोयिसजी उठ खड़े हुए। मसख़री के अंदाज़ में कृष्णप्पा उन्हें मनाने की चेष्टा की, ''ब्राह्मणों के प्रति अभी हम लोगों में सम्मान है, जोयिसजी। झाड़ू से मारेंगे सही, लेकिन मन-ही-मन मेमार का दंड भी भरेंगे।''

''मैं जानता हूँ कि तुम बड़े निष्ठावान हो। वह भट्ट कहाँ—तुम कहाँ ! लेकिन...।''

आगे कोई बात सूझ न पायी तो जोयिसजी उठकर चले गये। कृष्णप्पा इस घटना को भूलता नहीं। उसके स्वास्थ्य-लाभ के लिए गाँव के लोगों ने मेमार के यहाँ दंड बँधवाने की मनौती की थी। यह ख़बर सुनकर शायद सारी बातें याद आ रही होंगी।

नागेश बोला, ''और भी लात लगानी चाहिए, सर, बामनों को। तभी इस जाति-व्यवस्था का नाश किया जा सकता है।''

कृष्णप्पा हँसने लगा। सकपकाकर नागेश ने वजह पूछी।

''भेड़-सुअर खाने वाले हम-जैसे गौड़ा लोगों से कहता है कि तेरे जैसे 'पुलिचाए' खाने वाले निरीह लोगों को लताड़ें—इसकी कल्पना कर हँसी आयी। हमारी जाति के ज़मींदारों को क्या तू लायक़ समझता है ?''



''अरे नागेश, इस बार की 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ़ इंडिया' पढ़ी है कृष्णप्पा संभ्रम से पूछता है। शाम के समय कृष्णप्पा को मि

पार्टी के बीस एम० एल० ए० लोगों की बातें सुनते हुए नागेश बाहर बरांडे में बैठा था। वह "क्या है, मर ?" कहते हुए कमरे में आ जाता है।

"देख !" कहते हुए कृष्णप्पा 'चौकली' देता है। उसका चेहरा खुशी से खिला देखकर नागेश पढ़ने लगता है।

लँगोटीधारी बैरागी की एक बड़ी फ़ोटो के नीचे 'सर्प सिद्धेश्वरानंद' लिखा था। बैरागी की दाढ़ी और जटाएँ बढ़ी हुई थीं। वह फ़ोटो में हँस रहा था। एक अजीब बात यह थी कि बैरागी फ़ोटो में पेड़ की टहनी पर अंग खुजाते बदर की तरह लगता था। पोपला मुँह पूरे आकार में खोलकर वह परम सुखी जैसा दिखायी पड़ता था।

"मैं कहा करता था न ! हमारे जिले का बैरागी, मौनी, यही है। जरा जोर से पढ़ !"

अनुमान था कि लिखने वाले ने मिर्च-मसाला लगाया होगा, फिर भी लेख कृष्णप्पा को बहुत भाया। लेख में बताया गया था कि सिर्फ़ गीता-पठन मात्र के लिए मुँह खोलने वाला बैरागी धीरे-धीरे कैसे मशहूर हुआ। भक्तों के सपने में आकर बोलते रहने की प्रतीति फैलने से जैसे ही लोगों की भीड़ बढ़ने लगी तो एक दिन सहसा बैरागी गुफ़ा में चला गया। बाहर निकला ही नहीं। दो-तीन दिन के पश्चात पहाड़ी पर जमा भीड़ में से एक आदमी ने गुफ़ा में झाँककर देखा कि महात्मा क्या कर रहे हैं ? साँप की भाँति फुफकारने की आवाज गुफ़ा से सुनायी पड़ी। उसने ऐलान किया कि महात्मा भगवान शंकरजी की जटा के सर्प का रूप धारण करके तपस्या में बैठे हैं। हर रोज लोग गुफ़ा के मुख पर भोग चढ़ाकर इंतजार करते रहते। थोड़ा-सा खाकर बैरागी बाकी भोग बाहर फेंक देता। भक्तगण उस प्रसाद का एक-एक कण आपस में बाँट लेते। कुछ दिन बाद लोगों ने देखा कि बैरागी भोग स्वीकार नहीं कर रहा है। लोगों ने गुफ़ा के मुँह में झाँककर देखा तो अँधेरे में कुछ दिखायी नहीं पड़ा। लेकिन जोर का फुत्कार सुनायी पड़ा, मानो बिल में आकर झाँकने वाले का वह पीछा कर रहा हो। भक्तों ने समझ लिया कि अब महात्माजी सर्प ही बन गये है। तब से दूध रखना शुरू किया।

इस प्रकार जब तीन सप्ताह बीत गये तो गुफ़ा से उज्ज्वल प्रकाश

लिये एक दिन महात्माजी वाहर आये। अव वे 'गीता' का पठन नहीं करते। वोलते भी नहीं। कभी-कभी खिलखिलाकर हँसते हैं या पेड़ पर चढ़कर वैठ जाते हैं।

इस सर्प-सिद्धेश्वरानंद के दर्शन के लिए देश-भर से हज़ारों लोगों की भीड़ हर रोज़ लगी रहती है। यहाँ कई करिश्मे होते रहने की कहानियाँ चल पड़ी हैं। कभी-कभी सर्प-सिद्धेश्वरानंदजी गुफ़ा में चले जाते हैं—अपने सर्प-रूप को लौटने के लिए। लोगों की धारणा है कि सर्प-रूप में उन्हें देखना नहीं चाहिए। अगर देख लिया तो मौत निश्चित है। कुछ दिनों के पश्चात महात्माजी खुद ही वाहर निकलते हैं—हँसते हैं, पेड़ पर चढ़कर वैठ जाते हैं।

"कैसा लगता है रे तुझे?"

कृष्णप्पा कुतूहल से पूछता है।

"सव ढकोसला है, वस।"

"यह वैरागी पागल भी हो सकता है, तत्व-ज्ञानी भी हो सकता है। क्या तुझे ऐसा अनुमान नहीं होता, नागेश?"

"ऐसी वातों पर विश्वास करके ही हमारे देश की यह हालत हुई है।"

"ठीक है।"

"हमें चाहिए खाना—अध्यात्म नहीं।"

कृष्णप्पा को चुप देखकर नागेश उसका मज़ाक करने का साहस करता है।

"पता नहीं क्यों, जव से गौड़ाजी ने विस्तर पकड़ा है तव से लगता है कि इन पाखंडी-ढोंगी लोगों में विश्वास वढ़ता जा रहा है!"

"अण्णाजी भी यही कहा करता था, भैया।"

सोच में डूवकर कृष्णप्पा धीरे-से कहता, "नागेश, मान ले कि कोई अकेला जानता है कि भगवान वास्तव में है। मैं विश्वास की वात नहीं करता—वास्तव में जानता हूँ। यों जानकारी रखना अगर संभव हो तो ऐसे आदमी का रिलीजस वनना कोई वड़ी वात नहीं। वैंक के रखे पैसे की भाँति—सूद की गारंटी। लेकिन भगवान है या नहीं, इस उलझन में भी

भगवान पर विश्वास करने की जो बात है न, वह वास्तव में दिलेरी है। इसी तरह राजनीति में अपने आंदोलन से प्रगति होगी, उस प्रगति में सब-कुछ सहलता से धीरे-धीरे बनता जायेगा—इस विचार ने ग़रीबों का पक्ष लेकर क्रांति के लिए काम करना एक अलग विधान है। बहुत सारे लोगों का विधान है यह। लेकिन वारंगल से लौटने के बाद राजनीति में उतरने से पहले मुझमें यह विश्वास कर पाना संभव नहीं हो सका था कि आने वाली अपनी सारी प्रगति भलाई ही करती जायेगी। आज भी यह संभव नहीं हो पा रहा है। लेकिन इर्द-गिर्द की क्षुद्रता तथा दुख-दारिद्र्य को देखकर इसके विरोध में जूझने की अनिवार्यता मेरे लिए स्वयंसिद्ध है। दैनिक जीवन में ही चमक लाने की मेरी मंशा रही है, वह सफल नहीं हो पायी। उस दिन लताड़ खाने वाला वीरे गौड़ा आज मेरे प्रयत्न से दूसरों को लताड़ रहा है। लेकिन यह बात कहते समय अगर कोई आवाज़ निकलती है कि समाज की गतिशीलता में कोई अर्थ नहीं है, तो यह भी बहुत मामूली-सी सहल बात बन जायेगी। कुछ भी न कर सकने वाला निठल्ला और कुछ न करने की ठानकर सारी व्यवस्था को यथावत बनाये रखने वाला ज़ालिम आदमी भी यही बातें करता है। मेरे कहने का मतलब यह है, नागेश...।"

नागेश कुछ समझ न पाकर कृष्णप्पा को देखता है। लिखने के लिए उसे पेंसिल उठाते देखकर कृष्णप्पा उसे इशारे से रोकते हुए कहता है, "मैं जो भी कहना चाहता हूँ उसमें अयथार्थ न निकले, इस ख़याल से कहते नहीं बना है, नागेश! पैदा हो जाने पर कर्म में लगना ही पड़ता है, जूझना पड़ता ही है, जीवन को क्षुद्र बनाने वाले तामस को ठेलते ही रहना पड़ता है। यों कहने की सुविधा से मुक्त न होने लायक कि अपनी क्रियाओं का परिणाम यों भी हो सकता है, त्यों भी...।"

अपनी बात अधूरी छोड़कर कृष्णप्पा मुँह फेरकर कहता है, "बाहर जो लोग बैठे हैं, उन्हें भीतर लिवा ला।"

हाल ही में जो दल-बदल की गड़बड़ मचने वाली थी, उनमें उनकी क्या भूमिका हो, इसकी चर्चा करने के लिए उसके पक्ष के एम० एल० ए० आये थे। अपने क्रांति के रास्ते पर किसी से गठबंधन न करके आगे बढ़ने की

हिमायत करने वाले वे उग्रवादी लोग थे। कुछ लोग सत्तारूढ़ पक्ष के छल-छिद्रों का लाभ उठाकर अलग मंत्रिमंडल की रचना की मदद करने और इस प्रकार मदद करते समय एक टाइम-वाउंड मिनिमम प्रोग्राम के लिए वद्ध रहने की दलील देते। इनमें भी कुछ लोग मौजूदा मुख्यमंत्री के समर्थन की इच्छा रखते थे और वाक़ी लोग मुख्यमंत्री के प्रतिस्पर्धी की मदद करना चाहते थे। 'उस' गुट वालों का मुख्यमंत्री से पहले ही साँठ-गाँठ हो जाने का गुमान 'इस' गुट वालों को था। 'इस' गुट वालों को गुमान था कि प्रतिस्पर्धी पानी की तरह पैसा वहा रहा है, उससे शायद 'उस' गुट वालों का समझौता हुआ है। वीरण्णा, जिसका कृष्णप्पा पर काफ़ी असर था, इसका लाभ उठाकर 'उस' गुट को मदद दिलवाने की चेष्टा कर रहा था। राजनीति को ही वेढंगा कहने वाले उग्रवादी लोग प्रायः ज़वान लड़ाने की तलव रखने वाले तथा अधपके किंतु आदर्शवादी युवक थे। वाक़ी लोग लोकमंगल के लिए पसीना वहाये हुए, पसीना वहाकर थके हुए, पाजी थे। एक गुट की दलील थी कि क्रांति के विस्फोट मात्र से परिवर्तन संभव है, तो दूसरे गुट का कहना था कि सत्ता में भागीदार वनकर ही जनता को क्रांति की दिशा में लाया जा सकता है।

कृष्णप्पा में इस वाद-विवाद में पड़ने की हिम्मत नहीं थी, फिर भी उनके साथ चर्चा करने के लिए वह राज़ी हुआ था।



सहयोगियों का आपस में चाहे कितना ही मतभेद क्यों न हो, किन्तु उसकी वात की वे सभी क़दर करते थे। कृष्णप्पा को इसकी तसल्ली थी। ज़िंदगी और मौत की दहलीज पर होते हुए भी कृष्णप्पा का असर घटा नहीं था। दिल्ली के डॉक्टर ने मुआइना करके वताया था कि एक्सटेन्सिव डैमेज कुछ

नहीं हुआ। अब सिर्फ फ़िज़ियोथेरपि की ज़रूरत है। इन बातों पर जब कृष्णप्पा खुश हो उठा था, उसी रात गौरी देशपांडे का तार आया—'इतवार की शाम हवाई जहाज से आ रही हूँ।' उसे अमेरिका से दिल्ली लौटे छह महीने से अधिक समय बीत चुका था। उसे देखे बहुत वर्ष बीत चुके थे। पता नहीं, अब कैसी दिखायी देती होगी! आशा थी कि दिल्ली लौटते ही उससे मिलेगी। जब वह मिलने नहीं आयी तो सोचा था कि शायद वह उसके बारे में उदासीन हो गयी होगी। अब आ रही है, दो दिन में ही। अर्थात बीमार पड़ने के बाद उसकी आत्म-रति तीव्र हुई थी। शायद बिना किसी उतावली के वह यों सोचता रहा होगा—कृष्णप्पा को इस बात की घिन हुई।

सीता ने जो पेन ला रखा था, कृष्णप्पा उससे अपने मसौदे के विसर्जन में लगा था। उसी समय महेश्वरय्या आ धमके। कृष्णप्पा ने हुँकारते हुए उनकी बातें सुन ली। नागेश बीमारी का हाल बता रहा था। महेश्वरय्या बोलते ही नहीं। अपनी भावना को जाहिर करने वाले आदमी भी नहीं थे। उनके दिल पर जो बीता था, उसकी कल्पना करके कृष्णप्पा अधीर हो उठा। सत्तर की आयु में अपनी वजह से उन्हें ऐसा दुख नहीं होना चाहिए था।

सीता गरम पानी में कपड़ा भिगोकर कृष्णप्पा की देह पोंछ रही थी। कल से यह काम करने के लिए नर्स आयेगी। बैंक जाने की उतावली में भुनकते हुए की जाने वाली सीता की सेवा कृष्णप्पा को भाती नहीं थी। आज उसके चेहरे पर जो तमतमाहट है, उसकी वजह कुछ और है। अपना कोई जिगरी व्यक्ति घर आ जाये तो उसे किरकिरी होती है—बेसहारापन महसूस होने लगता है।

"घोड़े की दुम का पीछा करते हुए आया होगा। उस भलेमानुस का मुखड़ा देखे वर्षों बीत गये!" पीठ पोंछते हुए सीता कहती है।

कृष्णप्पा का पारा एकदम चढ़ गया। वह क्या करने जा रहा है, इसका भान होने से पहले ही दाहिने हाथ से, जिसमें अभी चेतना बाकी थी, पत्नी को एक थप्पड़ रसीद कर दिया। वह दर्द से अधिक यातना सहती हुई 'दैया री' कहकर रोने लगी। कृष्णप्पा को अपने बारे में, उसके बारे में

ी घिन हुई कि उसका मर जाने को मन हुआ। "औरत जात पर हाथ
ाने वाले क्रांति करने चले हैं !" सीता की कुड़वुड़ाहट शुरू हुई। पीट
कने के बाद कृष्णप्पा के मन में भी यह वात उठी। वह सुन्न होकर इंत-
ार में बैठा रहा। पत्नी ही उसे कपड़े पहनाती रहती है। माह-भर की
ढ़ी काली-सफ़ेद दाढ़ी में दाहिने हाथ की उँगलियाँ फेरते हुए चुपचाप
बैठा रहता है। स्ट्रोक के बाद वढ़ी हुई दाढ़ी थी यह। नागेश को ही, जो
उसे लेनिन के रूप में देखने की चाह रखता है, यह दाढ़ी भाती है। इस
तरह न जाने क्या-क्या सोचते हुए झींकता है। रोती हुई सीता को भूलने
की चेष्टा करता है, लेकिन भूलते वनता नहीं। वह कुड़वुड़ाते हुए धोती
और कुर्ता पहनाकर दाहिने हाथ में कंघी थमा देती है। उसकी पहिएदार
कुर्सी को कमरे में ठेलकर चौके में चली जाती है। गौरी विटिया चौके में
अड़कर बैठी है। अब उसकी धपाधप पिटाई होनी है।

महेश्वरय्या भीतर आकर बैठ गये। बोले कुछ नहीं। साल-भर में
ही कितने बूढ़े हो गये हैं, उनका मुँह घूरते हुए सोचा। उनकी चाल और
चेहरे पर पहले वाली दृढ़ता नहीं थी। आँखों के नीचे गालों के पास चमड़ा
लटक रहा था। पहनावे में पहले जैसी सफ़ाई नहीं थी। माथे पर सिंदूर
नहीं था।

"कहाँ ठहरे हैं ?"

"तुम्हारे गांधी वाज़ार वाले पुराने घर गया था। वहाँ ख़वर मिली
कि तुमने वह घर छोड़ दिया है। रास्ते में होटल में ट्रंक रख तथा वह
नहाकर आया हूँ।" उन्होंने कृष्णप्पा को प्यार-भरी नज़रों से देखा।

"लेकिन वहाँ जो लोग आते थे, उनमें से कोई यहाँ नहीं आत
किसानों को यहाँ पहुँचने के लिए वसों की विशेष सुविधा नहीं। यह
लोगों की वस्ती है न ? आते भी हैं तो दाँतों तले उँगली दवा लेते हैं। प
की तरहज़ मीन पर वैठकर वतियाते नहीं...।"

कृष्णप्पा को संजीदगी से वातें करते देखकर महेश्वरय्या उसकी
काटते हुए वोले, "क्या तुम्हें अव इतनी भी सुविधा नहीं चाहिए ?"

फिर दोनों मौन वैठे रहे। गौरी ज़ोर-ज़ोर से रोती हुई कमरे म
आयी। वहाँ महेश्वरय्या को देखा तो ठिठककर चुप हो गयी औ

पिता की बगल में आकर सिसकने लगी। महेश्वरय्या ने थैली से चॉकलेट की एक बड़ी पुड़िया निकालकर उसके हाथ में थमाते हुए कहा, "माँ के हाथ में देना। अब तुम एक खा लो।" एक चॉकलेट छीलकर उसके मुँह में रखी।

महेश्वरय्या कुछ कहने की चेष्टा में दिखायी पड़े। अगर वे निश्चल होकर बैठ जाते हैं और किसी वस्तु को घूरकर देखने लगते हैं तो समझ लें कि वे कुछ कहने की तैयारी में हैं। यह जताने के लिए कि अब कुछ कहने के लिए उनसे मेरा कोई अनुरोध नहीं—कृष्णप्पा सवेरे का अख़बार पढ़ने लगा। हाथ-पाँव की कसरत भी शायद उनकी तल्लीनता में खलल डालेगी—इस क़दर माहौल में तनाव आ गया।

तन-बदन में चौकन्ना होकर बैठने वाले पक्षी को दिखाकर महेश्वरय्या कहते हैं, "हमें उसी तरह रहना चाहिए। सारी दुनिया आँखों के सामने तो रहती है लेकिन हम कुछ भी देख रहे नहीं होते। देखने के माने हैं प्रवेश करना, पकड़ना—रूप के साथ पकड़ना।"

पेपर पढ़ते हुए वह महेश्वरय्या की बातों को पचा रहा होता है कि सहसा कोई ऊँची आवाज़ में 'नमस्ते गौड़ा साहब' कहते हुए आ टपकता है। कृष्णप्पा और महेश्वरय्या ने चौंककर देखा कि सामने पंचलिंगय्या खड़े थे। चिकमगलूर में कॉफ़ी के बगीचों के मालिक!

"यह क्या, गौड़ाजी? छिः छिः! यह क्या हुआ आपको? कैसे हट्टे-कट्टे थे!"

कृष्णप्पा सकुचाते बैठा रहा।

"यहाँ के एक स्पेशलिस्ट मेरे जाने-पहचाने हैं। कार में अभी लिवा लाऊँगा।"

पंचलिंगय्या का अनुरोध टालते हुए कृष्णप्पा ने पूछा, "न, न! मुआइना करवा लिया है। कैसे आना पड़ा?"

"उडुपि में एक मेडिकल कॉलेज है न। उसके संचालकों के मन में आपके प्रति बड़ा सम्मान है। मुँहमाँगा डोनेशन देने के लिए तैयार हैं, लेकिन मेरे लड़के की एडमीशन के लिए आपकी बात चाहिए। सभी कहते हैं कि लाख मिन्नतें करने पर भी गौड़ा साहब की ज़बान हिलती नहीं।

इसीलिए तो आपकी हर बात का इतना वजन होता है...है न ? यह ख़बर सुनकर बेहद ख़ुशी हुई। लेकिन आपने तो बिस्तर पकड़ा हुआ है !"

कृष्णप्पा ने कुछ इस अंदाज में देखा कि उनकी बात कुछ समझ में नहीं आयी। पंचलिंगय्या हँस पड़े। अपने पीछे खड़े बेटे को दिखाकर कहा, "यही है। फ़र्स्ट अटेम्प्ट में ही पास किया है। परीक्षा के दिनों में तबीयत कुछ ठीक नहीं थी वरना फ़र्स्ट-क्लास ले लेता। मेरे पास जो पैसा है, उसे लेकर क्या डूब मरना है ? इकलौता बेटा है। पैसा लेकर क्या करूँ भला ? आप जैसे लोगों द्वारा किये जाने वाले किसी भले काम में या विद्या-दान में सारा पैसा बहा देने की बात ठान ली है...है न ? क्या आपको पता ही नहीं ? सारे बेंगलूर शहर में फुसफुसाहट हो रही है। कल गोल्फ़ क्लब में भी यही बात हो रही थी। ताज्जुब होता है कि आपको ख़बर तक नहीं ! सुना है कि आप ही मुख्यमंत्री बनने वाले हैं। ख़ुशी की बात है। तब तो आपके साथ इस तरह घुलकर बातें करते बनेगा ही नहीं...आप शायद जरूरी बातों में व्यस्त थे। शाम को आकर फिर मिलूँगा। अब आप न 'हाँ' कहिये, न 'ना'। ख़ुद आपका कहना ठीक नहीं रहेगा। चीप हो जायेगा। क्या मैं जानता नहीं ? उसके लिए अलग तरीक़ा है। मैं वीरण्णा जी से बात करूँगा। शाम को मिलूँगा...बड़े अच्छे डॉक्टर हैं, भैया ! शाम को लिवा लाऊँगा....।" वह हाथ जोड़कर हँसते हुए बेटे के साथ कमरे से बाहर निकल गये।

"देखिये, अब ऐसे ही लोग मेरे पास आते हैं।"

उदासी से कृष्णप्पा को बोलते देख महेश्वरय्या ने मुसकराकर कहा, "इन दिनों अपना मन एक ओर टिकाना ही असंभव हो गया है, भैया ! लंपट की तरह भटकता रहता है निगोड़ा।" पल-भर के लिए चुप रहकर कहा, "तुम्हारा फिर से उस पेड़ के नीचे बैठने को मन करता होगा, भैया ! अमरूद के पेड़ पर आने वाले परिंदों की प्रतीक्षा करते बैठने की चाह करने लगा होगा। जानते हो, मैं क्या कहना चाहता था ? मैं यों ही सोचा करता था। जब तुम्हें स्ट्रोक हुआ, तब मुझे कुछ महसूस होना चाहिए था न ! लेकिन अब मेरे मन को घोड़ों का लालच है। लगता है कि हमेशा मन को कुछ-न-कुछ उद्रेक चाहिए। पीने बैठा तो सात-सात दिनों तक पीता रहता हूँ या इस तरह बनने लगता हूँ। देखो, अभी मुझे देखो न ! मन कैसे भटक

रहा है। अभी-अभी सोचते हुए कुछ कहने जा रहा था तो वे सज्जन चारों उँगलियों में अँगूठियाँ पहने हुए आ गये।...ऐसी कोई बात नहीं। मुझे लगता है कि तुम ठीक हो जाओगे। यही बात कहना चाहता था।"

आख़िरी बात फीकी आवाज़ में कही गयी थी।

"मेरा मन रखने के लिए तो आप नहीं कह रहे हैं न?"

कृष्णप्पा को सजीदगी से देखते हुए महेश्वरय्या बोले, "नहीं।" फिर उमंग में आकर कहा, "देखो, घोड़ों के फेर में ख़ुद को ही नज़र नहीं आता, बिलकुल नज़र नहीं आता। दरअसल बुद्धि क्षीण हो गयी है। अब की बात अगले ही क्षण भूल जाती है।"

"आप यहीं आकर रह जाइये।"

"तुम्हारी पत्नी को तकलीफ़ होगी, भैया!"

"आइये।"

"ठीक है।" महेश्वरय्या खड़े हो गये। "आज अपनी किस्मत आज़मा रहा हूँ। रात में आऊँगा।" फिर वह चले गये।

कृष्णप्पा में चुस्ती आ गयी। लहर में 'नागेश' कहकर पुकारा। नागेश को उदास देखकर पूछा, "क्यों रे?" उसने कहा, "कुछ नहीं, सर!" फिर अनुरोध किया, "बता रे!"

"वही। मेरी दीदी कलर्क थी न, उसकी नौकरी गयी।"

"उसके लिए क्यों परेशान होता है? वीरण्णा से कहकर उनके थियेटर में नौकरी दिलवा देंगे।"

"आपसे ऐसे काम करवाने को मेरा मन मानता नहीं, सर!"

"शाबास! कम-से-कम तुझ अकेले को तो ऐसा लगता है न! गौरी देशपांडे शायद कल रात आयेगी?"

"हाँ!"

"उसे कहाँ ठहराएँ, यही दिक्कत है। घर में भी ठहराया जा सकता है, लेकिन सीता नाहक हो-हल्ला मचायेगी। अकेली को होटल में ठहरने के लिए कैसे कहा जाये? कहाँ ठहराएँ उसे?

"वीरण्णाजी का गेस्ट-हाउस है न, सर!"

"देखा न! कैसे मैं धीरे-धीरे वीरण्णा के जाल में फँसता जा रहा हूँ।"

"आपको कौन बाँध सकता है, सर ?"

"तू जानता नहीं। ये सभी मेरी अवनति के लक्षण हैं।"

नर्स आयी। वीरण्णा ने एक संजीदा आँखों वाली लड़की को ही तैनात किया था। उसने बिना आहट कैनवास शूज़ में टहलते हुए कृष्णप्पा के बाएँ हाथ-पाँव की तरह-तरह से मालिश की। ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर यों ताड़न किया कि चोट न आये। व्हील-चेयर को ठेलते हुए मन भरने लायक़ बातें करके ख़ुश किया।

गोपाल रेड्डी की मैत्री के दिनों में पूरे एक साल तक लूसिना हमसाथी रही थी। उसकी याद कृष्णप्पा को आती है। लूसिना दिल्ली में नर्सिंग की ट्रेनिंग ले रही थी। उसकी कहानी करुणामय थी। मध्य-वर्ग की लड़की थी। एक व्यापारी का बेटा उसे धोखा देकर कलकत्ता से दिल्ली ले आया था। उससे शादी करने का वायदा करके अपने मित्रों से उसे बाँट लेने की कोशिश की थी। कुछ दिनों तक जैसे-तैसे सहती रही। जब वह हद से बाहर हो गया तो उस लड़के के शिकंजे से लूसिना एक रात भाग निकली। अब कहाँ जाये, कुछ समझ न पाकर एक संसद-सदस्य के निवास का दरवाज़ा खटखटाया। वहाँ गोपाल रेड्डी और कृष्णप्पा ठहरे हुए थे। भय-भीत लड़की को रेड्डी ने धीरज देकर बँगले के एक कमरे में सोने के लिए कहा। सारी रात लूसिना डरी रही कि दोनों में से कोई-न-कोई उसके कमरे में आयेगा। दिन निकला। वह अहसानमंद होकर इन्हें ढूंढते हुए डाइनिं हॉल में आकर रोयी। रेड्डी ने उसे नर्सिंग कॉलेज में दाख़िल करवाया धीरे-धीरे उसका मन कृष्णप्पा की ओर आकर्षित हुआ। कृष्णप्पा को भं उसके प्रति मोह हुआ। लेकिन रेड्डी की ऋणी होने के कारण वह उ पसंद करेगी या नहीं, इस आशंका से उसे दूर ही रखा। छुट्टियों में ए बार पत्र लिखकर वह बेंगलूर आयी। कृष्णप्पा उन दिनों रेड्डी के बँ में ही रहता था। एक रात धीरे से दरवाज़ा खोलकर लूसिना कृष्णप्पा बग़ल में आकर सो गयी।

"तुम ऐसा क्यों करती हो ?" कृष्णप्पा ने पूछा।

"तुम पर मेरा मन आ गया है। क्या इतना भी नहीं जानते ?"

"तब क्या मुझसे शादी करोगी ?"

"पढाई के लिए आगे विलायत जाने की इच्छा है। अगर तुम जिद करोगे तो शादी करूँगी।"

उससे लिपटे हुए कृष्णप्पा को हँसी आयी।

"क्या तुम जानती हो कि मैं दूसरी लड़कियों के साथ भी सोया करता हूँ?"

"हाँ, जानती हूँ। लेकिन कल जो आयी थी न? वह कौन अच्छी है, जो तुम उसके साथ सोये थे!" बिगड़कर लूमिना ने उसके गाल पर हलका-सा थप्पड़ मारा।

"तुम तो जीने में सोयी थी न! सोचा कि तुम जानती नहीं हो।" इतनी सहजता से किसी भी लड़की ने उससे बातें नहीं की थीं।

"मैं गोबर-गणेश नहीं हूँ। जब तक मैं यहाँ रहूँगी, तब तक अपने पास किसी को फटकने न देना। नर्सिंग में दाखिला पाने के बाद जब से तुम पर मन फिदा हुआ था, किसी को अपने पास फटकने नहीं दिया। समझे?"

"समझा।"

लूमिना को भी सुख पाते देख कृष्णप्पा को पाप की भावना ने कचोटा नहीं। पहले वह औरत की संगति करने से पहले खूब पी लिया करता था। नशे में अपनी देह की प्यास बुझा लेना और रात का व्यभिचार भुलाने के लिए सवेरे रेड्डी के साथ बेतुकी अमूर्त बातों की चर्चा छेड़ने की चेष्टा किया करता था। लेकिन लूमिना का सिर्फ रहना-भर ही आरामदेह लगा था। अब महसूस होता है कि उन दिनों सम्भोग में भी अपनी संजीदगी बरकरार रखने की चेष्टा करने वाला वह कैसा अड-बड-सा लगता था। उसकी कोमल गरम योनि, छोटे पर सख्त स्तन, मोटे होंठ, गेहुँआ रंग, उसके नितम्ब का तिल, प्रशान्त आँखें, पीठ के नीचे तक लटकने वाले लंबे काले बाल—इन सबका उस देवी के नख-शिख-वर्णन के साथ तुलना करता जिसका वह यारवदा जेल में ध्यान किया करता था। संस्कृत के वे श्लोक धीरे-से गुनगुनाकर लूमिना में गुदगुदी पैदा करता। कृष्णप्पा ने समझा था कि सम्भोग के माने हैं उतावली में विसर्जन। लूमिना ने सिखाया कि देह के सभी अंग-प्रत्यंग कामना, उद्रेक, तृप्ति के फव्वारे होते हैं। सम्भोग मैथुन बन गया। मनचाहे विस्तार वाला संगीत बन गया।

लेकिन धीरे-धीरे ऐसा व्यामोह बढ़ता गया कि लूसिना के बिना वह रह नहीं सकेगा। फलस्वरूप उसकी तृप्ति की तीव्रता भी घटती गयी। वह क्यों अपने पिता से द्वेष करती है? जैसे ही यह जानने का कुतूहल बढ़ा, लूसिना को किरकिरी होते हुए उसने देखा। एक दिन लूसिना ने बताया कि उसका बाप ही उसे चाहता था और माँ उससे जलती थी। घर नरक बन गया था। तब क्या उसका बाप उसके साथ सोया था? कैसे पूछे! कृष्णप्पा को मन-ही-मन घुटते देखकर लूसिना ने एक बार उदास होकर कहा था, "तुम्हें किसी अलग ढाँचे का मर्द समझा था।"

"अलग ढाँचे से मतलब...?"

"क्या यह लमहा काफ़ी नहीं? मेरा भूत लेकर तुम क्या करोगे?"

"तुमसे शादी करनी है न, इसलिए।"

"मुझे शादी से चिढ़ है।"

"गौरी भी यही बात कहा करती थी।" परेशान होकर जब यह बात कृष्णप्पा कहता तो लूसिना कुछ और ही समझ लेती।

"क्या तुम्हारे साथ ऐसा सब-कुछ करना वह जानती थी?"

कलियों जैसी लूसिना की चूची को चूमते हुए तथा उसकी बातों में छिपी शरारत को पहचान कर कहता, "तुम बिलकुल गौरी जैसी ही हो। लेकिन वह सीरियस भी रहा करती थी, पर तुम बड़ी शरारती हो।" उसे जो निराशा हुई थी, कृष्णप्पा उसे भुलाने की चेष्टा करता।

"यह सब-कुछ करते हुए क्या राजनीति की भी चर्चा करने वाली लड़की तुम्हें चाहिए?"

"मेरी बात तुम्हारी समझ में नहीं आयेगी।"

कृष्णप्पा को ईर्ष्या होती है कि ये सारी बातें लूसिना ने कहाँ सीखी होंगी? किस मर्द ने इसे सिखाया होगा?

"शादी की बात छेड़ते ही तुम्हारी देह का सारा रोमांच लुप्त हो गया और मेरा भी ठंडा पड़ गया।"

लूसिना उठकर शॉवर लेने जाती है। कृष्णप्पा भी उसके पीछे जाता है। उसके साथ शॉवर के ठंडे पानी में खड़ा होकर उसके बदन में साबुन लगाता है। फिर चुस्त बनता है। कहीं उसकी असहाय अवस्था का वह

नाजायज़ फ़ायदा तो नहीं उठा रहा है—इस आशंका को दबाने के लिए उसे चूमते हुए पूछता है। औरत और मर्द के इस संबंध में तालमेल संभव है या नहीं, इसकी आलोचना करते हुए अण्णाजी की दलील याद करता है। अपने भीतर पैठे हुए कृष्णप्पा को कुछ और ही सोचते हुए पाकर लूसिना गुस्सा करती है। इस प्यार से बढ़कर भी उसके पास कोई और चीज़ है, लूसिना को इस बात का अहसास कराने का रास्ता न पाकर कृष्णप्पा हैरान होता है।

इन दिनों कृष्णप्पा खुश था कि अब वह वास्तव में अण्णाजी का हमसाया बन गया था। लूसिना ने जितने जोश के साथ उसकी देह के तारों को छेड़ा था, उतने ही जोश के साथ वह विलायत चली गयी थी। एक साल बाद उसने अपनी शादी की बात लिखी थी। पति डॉक्टर एड्डी प्रिनो की प्रशंसा में लिखा था कि उसके पुराने संबंधों को जानकर भी वह कितना उदार बना हुआ है। इन सारी बातों को पगुराते हुए कृष्णप्पा कुढ़ता है कि शुद्ध पतिव्रता सीता कितनी ऊपर है! कौन जाने कि लूसिना के साथ शादी होती तो वह भी ऐसी ही हो जाती!

कृष्णप्पा नर्स की ओर देखते हुए पूछता है, "तुम्हारा नाम? भूल ही गया।"

"ज्योति।" मुसकराते हुए वह कहती है।

"क्या तुम्हारी शादी हो चुकी है? मेरी उत्कंठा माफ़ हो।"

औरत के साथ इस तरह अदब से बातें करने की कला कृष्णप्पा ने गोपाल रेड्डी से सीखी थी। कृष्णप्पा की धारणा थी कि शिष्टाचार से तीव्रता घटती है, पर गोपाल रेड्डी ने हँसी उड़ा-उड़ा कर उसका निवारण किया था।

"नहीं! करना चाहती हूँ। मेरा बॉय-फ्रेंड इंजीनियरी पास करके दो साल से नौकरी के लिए भटक रहा है। पाँच साल से हम इंतज़ार कर रहे हैं। बिना नौकरी के वह शादी नहीं करना चाहता।"

कितने अलग-अलग तरीकों से औरत इस देह में प्राण-संचार कराती है, इस पर आश्चर्य करते हुए कृष्णप्पा ज्योति के चिकित्सक-स्पर्श के लिए अपनी देह सौंपता है।

"क्या मैं उसकी नौकरी के लिए कहीं कोशिश करूँ?"

ज्योति के चेहरे पर, जो उसकी उँगलियों को आहिस्ता-आहिस्ता मोड़ कर मालिश कर रही थी, खुशी की लहर दौड़ते देखकर कृष्णप्पा के मन में उसके प्रति वात्सल्य भाव उभड़ पड़ता है।

"वीरण्णा नामक एक बड़े ठेकेदार मेरे मित्र हैं। उन्होंने ही तुम्हें यहाँ तैनात किया है। उन्हीं के यहाँ तुम्हारे बॉय-फ्रेंड को नौकरी दिलवा देंगे। चलेगा न?"

ज्योति की आँखें तर हो जाती हैं।

"नौकरी न पाकर उसका कॉन्फ़िडेंस ही जाता रहा है। अगर तीन-सौ रुपया महीना भी मिल जाये तो काफ़ी है हमारे लिए। मेहरबानी करके...!"

कृष्णप्पा उसकी अगली बात काटता है।



वह मन-ही-मन कामना करता है कि उसकी संगति में उसके प्रेमी की देह खिल उठे। काम-वासना के संदर्भ में दूसरे पुरुष भी सुख पायें, अपने मन में ऐसी भावना को उठते देख कृष्णप्पा चौंक उठता है। आज तक उसका ख़याल था कि काम-वासना के संदर्भ में अन्य पुरुष की सफलता की कामना न करने लायक़ ईर्ष्या उसमें रही होगी। लेकिन अब जो खूबसूरत औरत उसके सामने खड़ी थी, वह दूसरे आदमी की संगति में सुख पाये, ऐसी वांछा उमड़ आयी। कृष्णप्पा को इसकी खुशी हुई।



उस रात महेश्वरय्या घर में खाना वगैरह खाये बिना ही चादर तानकर सो गये थे। नागेश की मदद से व्हील-चेयर पर कृष्णप्पा महेश्वरय्या के कमरे में गया। नागेश को बाहर भेजकर दरवाज़ा बंद कर लिया और महेश्वरय्या को उठाया। महेश्वरय्या ने पी हुई थी, आँखों में सरूर था, लेकिन चेहरा उतरा हुआ था। सवेरे-सवेरे उनके काँपते हाथों को कृष्णप्पा ने देखा था।

"क्या बात है ? क्यों ऐसे बन गये हैं ?" कृष्णप्पा ने पूछा।

कृष्णप्पा का पूछने का अंदाज़ ऐसा था मानो वह अपने-आप से पूछ रहा हो। सहानुभूति और दया के अंदाज़ में उनके साथ बातें कर पाना कृष्णप्पा के लिए संभव ही नहीं था। कृष्णप्पा जानता है कि अगर महेश्वरय्या को कहीं भनक भी लग गयी कि वह दया-भावना को पनपने दे रहा है तो उन्हें बड़ा रंज होगा। इसकी वजह यह नहीं कि वे उसके सामने छोटे हो जायेंगे। उसकी तरह खुद को ठोस, दृढ़ दिखाने की ज़रूरत महेश्वरय्या को नहीं थी। कृष्णप्पा जानता था कि 'मंकुतिम्मन कग्ग' काव्य की पंक्ति 'पहाड़ की तलहटी की घास बनो' उन्हें बहुत भाती है। उनका व्यक्तित्व ऐसा था कि किसी की भी नज़र बचाकर, नीची आवाज़ में, बिना किसी खास रंग के *अपने-आप गा लेने वाले पक्षी की तरह जी सकें। 'यक्षगान'* के लंगूर की तरह लचकते, कुलाँचें मारकर हँसते हुए, मुस्टंडे के सामने आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए, अपने आभ्यंतर की रक्षा करके जिये जाने वाली जीवन-कला ही सार-तत्व था उनका। वारंगल थाने में दुहरे बदन वाला अधिकारी जब कृष्णप्पा की रिहाई के लिए बहानेबाज़ी करने लगा था तो उसके सामने मुँह की खाकर भी अपने प्रति बिलकुल क्षुद्र-जंतु की भावना

"क्या मैं उसकी नौकरी के लिए कहीं कोशिश करूँ?"

ज्योति के चेहरे पर, जो उसकी उँगलियों को आहिस्ता-आहिस्ता मोड़ कर मालिश कर रही थी, ख़ुशी की लहर दौड़ते देखकर कृष्णप्पा के मन में उसके प्रति वात्सल्य भाव उभड़ पड़ता है।

"वीरण्णा नामक एक बड़े ठेकेदार मेरे मित्र हैं। उन्होंने ही तुम्हें यहाँ तैनात किया है। उन्हीं के यहाँ तुम्हारे बॉय-फ्रेंड को नौकरी दिलवा देंगे। चलेगा न?"

ज्योति की आँखें तर हो जाती हैं।

"नौकरी न पाकर उसका कॉन्फ़िडेंस ही जाता रहा है। अगर तीन-सौ रुपया महीना भी मिल जाये तो काफ़ी है हमारे लिए। मेहरबानी करके...!"

कृष्णप्पा उसकी अगली बात काटता है।



वह मन-ही-मन कामना करता है कि उसकी संगति में उसके प्रेमी की देह खिल उठे। काम-वासना के संदर्भ में दूसरे पुरुष भी सुख पायें, अपने मन में ऐसी भावना को उठते देख कृष्णप्पा चौंक उठता है। आज तक उसका ख़याल था कि काम-वासना के संदर्भ में अन्य पुरुष की सफलता की कामना न करने लायक़ ईर्ष्या उसमें रही होगी। लेकिन अब जो ख़ूबसूरत औरत उसके सामने खड़ी थी, वह दूसरे आदमी की संगति में सुख पाये, ऐसी वांछा उमड़ आयी। कृष्णप्पा को इसकी ख़ुशी हुई।



उस रात महेश्वरय्या घर में खाना वगैरह खाये बिना ही चादर तानकर सो गये थे। नागेश की मदद से व्हील-चेयर पर कृष्णप्पा महेश्वरय्या के कमरे में गया। नागेश को बाहर भेजकर दरवाजा बंद कर लिया और महेश्वरय्या को उठाया। महेश्वरय्या ने पी हुई थी, आँखों में सरूर था, लेकिन चेहरा उतरा हुआ था। सवेरे-सवेरे उनके काँपते हाथों को कृष्णप्पा ने देखा था।

"क्या बात है? क्यों ऐसे बन गये है?" कृष्णप्पा ने पूछा।

कृष्णप्पा का पूछने का अंदाज ऐसा था मानो वह अपने-आप में पूछ रहा हो। महानुभूति और दया के अंदाज में उनके साथ बातें कर पाना कृष्णप्पा के लिए संभव ही नहीं था। कृष्णप्पा जानता है कि अगर महेश्वरय्या को कहीं भनक भी लग गयी कि वह दया-भावना को पनपने दे रहा है तो उन्हें बड़ा रंज होगा। इसकी वजह यह नहीं कि वे उसके सामने छोटे हो जायेंगे। उसकी तरह खुद को ठोस, दृढ दिखाने की जरूरत महेश्वरय्या को नहीं थी। कृष्णप्पा जानता था कि 'मंकुतिम्मन कग्ग' काव्य की पंक्ति 'पहाड की तलहटी की घास बनो' उन्हें बहुत भाती है। उनका व्यक्तित्व ऐसा था कि किसी की भी नजर बचाकर, नीची आवाज में, बिना किसी खास रंग के अपने-आप गा लेने वाले पक्षी की तरह जी सकें। 'यक्षगान' के लंगूर की तरह लचकते, कुलाँचे मारकर हँसते हुए, मुस्टंडे के सामने आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए, अपने आभ्यंतर की रक्षा करके जिये जाने वाली जीवन-कला ही सार-तत्व था उनका। वारंगल थाने में दुहरे बदन वाला अधिकारी जब कृष्णप्पा की रिहाई के लिए बहानेबाजी करने लगा था तो उसके सामने मुँह की खाकर भी अपने प्रति बिलकुल क्षुद्र-जंतु की भावना

पन्न कराके, उसको मस्का मारकर, कृष्णप्पा को रिहा करवा लिया था। ने के अनुभवों ने जव कृष्णप्पा को हक्का-वक्का कर दिया था, तव टंकी की अदा में दुहरे वदन वाले अधिकारी को राक्षस वनाकर तथा ुद विदूपक वनकर किस चाल से वाज़ी मारी थी, इस वात के लिए महेश्वरय्या ने अभिनय करके उसे हँसाया था। कृष्णप्पा में जड़ जमाये वैठे आत्माभिमान को नष्ट करने वाली जो क्रूरता थी, वह महेश्वरय्या की राय में कालानुक्रम में फूलती जाने वाली और फूलकर फूट निकलने वाले राक्षस की भाँति ही थी। उसके प्राणों की सूक्ष्म जड़ों को जो आघात पहुँचा था, उससे कृष्णप्पा संभल गया था। उमंग में आकर महेश्वरय्या द्वारा किये जाने वाले इस विदूपकी अभिनय को देखकर गोपाल रेड्डी ने कृष्णप्पा से कहा था, "मखौली को देखो ! कैसे जलते दीप को वचाता है। अपने गाँव के किसानों में भी मैंने यह गुण देखा है। मेरे पिताजी की नज़र चुराकर रह जाते हैं और जव कभी नज़र में पड़ भी गये तो वहुत ही कनीज़ होने का स्वाँग रचते हैं...।" कृष्णप्पा इस ढंग को मानता नहीं। यह उसके स्वभाव के विरोध में पड़ता है।

कृष्णप्पा ने सोचा था कि महेश्वरय्या हारने वाले व्यक्ति नहीं। वीमारी के कारण जव सभी रास्ते दुर्गम लग रहे हों, तव महेश्वरय्या को भी इस तरह मुंह लटकाये देखकर कृष्णप्पा हैरान हो गया। इसीलिए जव महेश्वरय्या से उसने पूछताछ करके देखा तो पता चला कि उन्हें अपनी हालत पर अभी पूरी-की-पूरी पकड़ है।

महेश्वरय्या उठ वैठे और कुछ सोचकर वोले, "न ! तुमसे कहना ठीक नहीं होगा। इससे तुम्हें आफ़त आ सकती है।"

सहसा कृष्णप्पा जान गया कि महेश्वरय्या वेसहारा हैं। मदद की आवश्यकता होने पर भी मुंह नहीं खोल रहे हैं। इससे कृष्णप्पा को अपनी अवहेलना-जैसी लगी। ग़ुस्सा भी आया।

"आप मेरी तौहीन कर रहे हैं !"

सिर हिलाकर वड़ी करुणा-भरी निगाह से देखते हुए महेश्वरय्या सारी वात कह सुनायी।

इधर उनके लिए जुए के विना जीना असंभव हो गया है। कई व

देवी की पूजा के लिए बैठकर देखा। दौड़ता हुआ घोड़ा ही दिखायी पड़ता। उनकी सारी पूँजी इसी में उड़ गयी। जिंदगी तबाह होती गयी। कुछ दिन पहले किन्हीं मित्रों से दस हजार रुपये उधार ले आये। अपनी खोयी हुई सारी पूँजी वापिस जीतने का विश्वास लेकर इस बार जुआ खेलने आये थे। लेकिन वह दस हजार भी गगार्पण हो गया था।

कृष्णप्पा को खुशी हुई थी कि कम-से-कम वह इतने काम लायक तो बना। महेश्वरय्या ने उस पर जो धन बहाया था, उसका कोई हिसाब नहीं था। आज तक कृष्णप्पा उसके लिए एक कौड़ी भी खर्च नहीं कर पाया था।

"जानता हूँ कि तुम दोगे। लेकिन कल उसे भी दाँव पर लगा दूँगा।"

"लगाइये! आप जीत भी तो सकते है?"

महेश्वरय्या की आँखें विश्वास में चमक उठीं।

"हाँ! हार भी सकता हूँ।"

"हारिये।" हँसते हुए कृष्णप्पा ने कहा।

"न! धारवाड़ के पास वाली बस्ती में मेरा छोटा-सा बाग है। एक झोंपड़ी है। सोच रहा हूँ कि अपनी जिंदगी के बाकी दिन वहीं बिताऊँ। इस जुएबाजी से पिंड छुड़ाऊँ।"

"कल अगर हार गये तो ऐसा ही कीजिये।"

महेश्वरय्या को निहाल होते देखकर कृष्णप्पा का समाधान हुआ। दोनों पहले की तरह एक-दूसरे को परस्पर देखकर हँसे। किंतु पल-भर बाद ही चिंताक्रांत होकर महेश्वरय्या ने 'भो' के साथ कहा, "तुम्हें इससे आफत आयेगी।" वह सामने वाला किवाड़ घूरने लगे।

"आने दीजिये!" कृष्णप्पा ने नागेश को हाँक लगायी। अपनी व्हील-चेयर कमरे में ठेलवाकर पत्नी को बुलवाया। कमरे के दरवाजे बंद करवा लिये।

"सीता, बैंक के खाते में दस हजार हैं न। वह मुझे कल सवेरे चाहिए।"

पत्नी को नाम से कृष्णप्पा कभी नहीं पुकारता था। उसे आश्चर्य हुआ।

कसलिए ?"

हेश्वरय्या को देने हैं।"

खुद समाजवादी होकर घोड़े की पूँछ में पैसा बाँधना...!"

"वह सब रखो ताक पर। पहले दे दो।" कृष्णप्पा गरज उठा।

"नहीं। किसी को देने के लिए यह पैसा नहीं है।"

कृष्णप्पा को हाथ उठाये देखकर वह पीछे हट गयी।

कृष्णप्पा के मन में आया कि छलांग लगाकर उसका हाथ खींच ले कन देह ने साथ नहीं दिया। तब उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये औ ठ काँपने लगे।

सीता नरम पड़ गयी और बोली, "जयमहल उपनगर में ट्रस्ट-बोर्ड ने मेरे नाम एक प्लाट सैंक्शन किया है। उसे ख़रीदने के लिए वह पैसा निकाल रखा है...।"

कृष्णप्पा की आँखों में आँसू बह निकले। दाहिने हाथ से पोंछते हुए सिसकी भरकर कहा, "कैसा प्लाट ?"

"वीरण्णा ने दस्तख़त करवाये थे। मंजूर हुआ है।"

यह बात दबी आवाज़ में कहकर सीता ने सिर झुका लिया। इस जयमहल उपनगर के प्लाटों के मुद्दे पर कृष्णप्पा ने असेंबली में हो-हल्ला मचाया था। खुले नीलाम में चालीस-पचास हज़ार पर जाने वाले प्लाटों की क़ीमत सात-आठ हज़ार तय करके जब अख़बार में समाचार छपा था तो कृष्णप्पा को पता चला था कि वे प्लाट मंत्रियों और उनके संबंधियों में बँट जायेंगे। अब मंत्रिमंडल ने उसकी पत्नी के नाम भी एक प्लाट देकर उसका मुँह बंद करने की चेष्टा की है। अपनी कसमसाहट को दबाकर कृष्णप्पा ने कहा, "सीता, तुम्हें यह प्लाट नहीं लेना चाहिए।"

"क्यों ? खुद तो मेरे लिए कुछ करते-धरते नहीं। फिर प्लाट ख़रीदन हमारा हक़ है। आप बीच में टाँग मत अड़ाइये।"

"सीता, यह प्लाट हमें नहीं चाहिए। मैं तुम्हें अलग प्लाट दिल दूंगा।" कृष्णप्पा ने तसल्ली देते हुए कहा।

"हाँ-हाँ, दिलवा देंगे ! कल कुछ उलट-फेर हो गया तो मैं और आप बेटी ख़ाक छानते फिरेंगे ?"

कृष्णप्पा ने आँखें मूंद ली।

"जाओ, चली जाओ। मेरे पास फटकना नहीं। जाओ!" वह दबी आवाज़ में तीखेपन से चिल्लाया।

सीता के चले जाने के बाद नागेश को हांक लगायी। मुंदी आंखों से ही कहा, "अभी वीरण्णा के यहाँ जाकर दस हज़ार रुपये ले आ। ऑटो-रिक्शा में चला जा। बटुए में पैसे होंगे। ले ले।"

नागेश चला गया और करीब पौने घंटे में लौटकर एक बड़ा-सा लिफ़ाफ़ा कृष्णप्पा के हाथ में थमा दिया। रुपयों के साथ वीरण्णा की एक चिट्ठी भी थी :

"इसमें पंद्रह हज़ार है। और ज़रूरत हो तो कल कहलवा भेजना। आपका विधेय, वीरण्णा।"

'ठेल' कहकर वह महेश्वरय्या के कमरे में गया। वे उठ बैठे थे। लगता था कि कृष्णप्पा के आने से पहले वे ध्यानमग्न थे।

"पंद्रह हज़ार हैं इसमें। ज़रूरत हो तो कल और भी दे सकूँगा।" उनके जवाब की प्रतीक्षा किये बिना नागेश से चेयर ठेलवाकर अपने कमरे में जाकर सो गया।



जब कृष्णप्पा सीता से लड़ रहा होता है तो इसकी भनक बच्ची को लग जाती है। बिना चूं-चां किये उसे जो कुछ खाने को दिया जाता है, वह खा लेती है। सिर के उलझे बालों में माँ कुढ़ती हुई कंघी चला रही होती है तो उसे चुपचाप सह लेते देख कृष्णप्पा को बड़ा रंज होता है। सज-धज कर दो चोटियाँ बाँधकर वर्दी पहने वह स्कूल के लिए निकली तो 'गौरी' कहकर पास बुला लिया। पास आने के लिए वह हिचक रही थी।

एक बार फिर बुलाया। वह पास आकर खड़ी हो गयी। उसकी पीठ पर हाथ रखकर सहलाया। अपनी ओर उसका मुंह घुमाकर देखा। उसी की तरह आँखें, किन्तु माँ जैसी छोटी-सी नाक। गुस्से में माँ द्वारा मरोड़े जाने के कारण होंठ सूज गये थे। अब ठीक हैं। नाक बह रही है। भावशून्य होकर खड़ी मासूम बच्ची के चेहरे पर उसकी उम्र से बढ़कर प्रगल्भता उमड़ी हुई देखकर कसमसाहट हुई। लगा कि बच्ची को एक टाँग पर नाचते हुए या आलमारी में रखा सामान बिखराकर माँ से डाँट सुनकर लापरवाही से भाग जाते हुए देखकर न जाने कितने दिन हो गये।

गौरी के स्कूल चले जाने के बाद सफ़ेद रेशमी अचकन पहने, माथे पर भभूत लगाये वीरण्णा आये। बहुत मामूली ढँग से पूछा, "क्या और भी ज़रूरत थी?"

कृष्णप्पा ने 'ना' कहा। रात को गौरी देशपांडे आने वाली है। उसे स्टेशन से लिवाकर गेस्ट-हाउस में ठहराने की व्यवस्था करने, ज्योति के बॉय-फ्रेंड और नागेश की बहन के लिए कोई नौकरी का इंतजाम करने के लिए कहा। वीरण्णा ने ऐसे हामी भरी मानो वे कोई उतनी महत्व की बातें नहीं। वीरण्णा ने बताया कि पंचलिंगय्या उनके पास आये थे। गौड़ा जी के हाथों ऐसा काम करवाना अनुचित मान कर वे खुद ही सीट दिलवाने का आश्वासन दे चुके हैं।

"आपको जल्द तंदुरुस्त होना होगा।"

बात तो मामूली थी, लेकिन कहने का अंदाज़ अर्थगर्भित था। कृष्णप्पा ने कहा, "आपके दिल में कोई ख़ास बात घूम रही है। बताइये।"

"नाहक आपका सिर खाना अनुचित मानकर कहा नहीं था। भारी जिम्मेदारी ढोने के दिन अब दूर नहीं हैं।"

"हाँ, मैंने भी सुना है। लेकिन दलबदलुओं के साथ मेरा मिलाप नहीं हो सकेगा।"

"कोई ज़रूरत नहीं। खुद अपना ही मंत्रिमंडल रचाइये। आप नया भू-शासन लाना चाहते हैं न? लाइये। उसके पक्ष में मत देने वाले देंगे। समझ लीजिये कि बहुमत मिला नहीं कि त्यागपत्र हाज़िर। आपको समझाने के लिए ज़रा ज़बान लंबी कर रहा हूँ। गुस्ताख़ी माफ़ हो।"

"वीरण्णा ! एक और बात। प्लाट के लिए सीता से आपने क्यों दस्तखत करवाया।"

"आप भी मज़ाक करते हैं। क्या वे इस देश की प्रजा नहीं हैं ?"

ठिठोली करते हुए वीरण्णा ने यह बात कही थी, लेकिन कृष्णप्पा का गंभीर चेहरा देखकर खुद भी संजीदा होकर बोले, "गौडा साहब, आप चाहे कितना भी महान क्यों न बनें, लेकिन औरतों को इसका अहसास तभी होता है जब ऐसा कुछ मिलता रहे। नाहक उन पर कुढ़ने का प्रयोजन ? क्या खुद के लिए वे यह सब चाहती हैं ? औरत की जिम्मेदारी होती है नीड़ का निर्माण करना और आपका काम है विशाल आकाश में उड़ान भरते जाना। यही तो धर्म है न ?"

"आप चाहे जो कहिये। यह भी घूसखोरी ही है।"

"हे भगवान, कैसी बातें करते हैं ! आपकी पत्नी ने अपने पसीने की कमाई से एक प्लाट खरीद लिया तो आप उसे घूसखोरी कहने लगे। स्पीड-मनी आदि के नाम पर हम जैसे लोगों को जो बिज़नेस करना पड़ा है, उसे आप क्या कहेंगे ? हर किसी को अपना-अपना धर्म भला होता है न ?"

"नहीं ! मेरा कहने का मतलब यही है कि आप जो कह रहे हैं, वह गलत है।"

"गलत है तो गलत ही सही। उसे सुधारें कैसे ? मेरे सुधरने पर ? या देश के सुधरने पर ? अब पी० डब्ल्यू० डी० को ही लीजिये। उसके सुधरे बिना क्या मेरा सुधर जाना संभव है ? आप ही बताइये। कौन इस चप्पे-चप्पे को सुधार सकेगा ? आप जैसे लोग। इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि आप नेता बनें, मंत्रिमंडल की रचना करें। अच्छा तो थियेटर के पास काम है। मैं चलूँ।"

वीरण्णा चले गये। हाथ बाँधकर खड़े वीरण्णा उसकी प्रशंसा करते समय भी ऐसे दिखायी पड़ते थे मानो उसकी सारी ज़िम्मेदारी वे खुद ढो रहे हैं। उसकी अस्वीकृति, कुढ़न तथा गुस्से की प्रशंसा करके बाज़ी मारने की चालबाज़ी थी। लेकिन कृष्णप्पा को यह वहम हरगिज़ नहीं था कि वीरण्णा ये सब-कुछ खुद के लिए कर रहे हैं। मौजूदा मुख्यमंत्री द्वारा ही उन्होंने किसी जलाशय के तामीरात का ठेका हासिल किया था। वीरण्णा के अति-

रिक्त कोई भी ठेकेदार वह ठेका ले सकता था।

वीरण्णा की थाह न पाकर जब कृष्णप्पा हक्का-बक्का-सा ह्वील-चेयर पर बैठा था, तभी ज्योति आयी। बिना आहट के इर्द-गिर्द टहलते हुए उसने बिस्तर पर नया शीट बिछाया। गुलदस्ते में गुलाब के फूल सँवारकर रखे, जो वह खुद ले आयी थी। कृष्णप्पा को बड़ी सतर्कता से उठाकर लिटाया। बदन की मालिश करती हुई बड़ी उमंग के साथ कल रात देखे सिनेमा की कहानी कहने लगी। सिनेमा के नायक-नायिकाओं की विरह-कथा के क्रम में ही अपने सुख की आकांक्षा को भी, जो उसके दिल में कुम्हला रही थी, पिरोती रही। अपने नायक को नौकरी मिलने की प्रतीक्षा में वह कैसे अनखिली कली बनी रही है—इसका कृष्णप्पा को आश्चर्य हुआ। आज वह खुश थी कि उसके बॉय-फ्रेंड को नौकरी मिलने जा रही है। शायद आज की रात वह उसके लिए खिल उठेगी। उसके लक़वाग्रस्त भुजा, बाहु, बग़ल, कमर, पाँव, उँगलियों पर कोमल हथेली के द्वारा उसके दिल की उमंग लयबद्ध होकर उतर रही थी। कृष्णप्पा को अहसास हुआ कि वह आसपास की सारी तंदुरुस्ती को अपनी साँसों में भर रहा है।

गुलदस्ते में सजाये गये फूलों में से ऊपर की ओर उठा हुआ खिलता गुलाब कृष्णप्पा को बहुत भाया। नमी के कारण चिकनी पंखुड़ियों में सुर्खी छायी थी मानो दृष्टि को भीतर की ओर आकर्षित करने के लिए पंखुड़ियों के छोरों को मरोड़ तथा उन्हें घुमावदार बनाकर संकुचित होते हुए केन्द्र-बिन्दु को छिपाये रखने वाला पंखुड़ियों का नाजुक कसाव हो। आह्वान और रहस्य, उसके रंग-रूप जैसे रूखे पत्ते, नुकीली काँटेदार टेढ़े-मेढ़े डंठल—तन्मयता से गुलाब को निहारते हुए वह ज्योति की मधुर बातें सुनता रहा। शीतल ज्वाला की तरह दमक रहा था गुलाब। वह कुछ कहने और कुछ छिपाने की चेष्टा में दिखायी पड़ता था। इसलिए कृष्णप्पा के लिए उसे निहारना दूभर हो गया। ज्योति का चेहरा देखा। सहज भाव से पाँवों को दबाते-सहलाते हुए अपनी बात पर आप ही मुसकराती हुई दिखायी पड़ी। 'अनायासेन मरणं' वाली बात, जो वह कभी-कभी चाहता था, अब याद कर ली। न—अब जड़ीभूत देह में जोश भरने को मन करता है। पेड़ पर चढ़ने की, कुंए में उतरकर कीचड़ निकालने की, तैरने की, बाग़ में पौधे लगाने

की, फूलों जैसे चूज़ों को हथेली पर धरने की—न जाने कैसी-कैसी कामनाएँ होती हैं ! वीरण्णा की बात अनसुनी करना क्या उसका ढोंग नहीं था ? आशा तो है कि अधिकार के नशे में जड़ीभूत यह देह शायद फिर से चेतना का फ़व्वारा बन जाये। माँ द्वारा आँचल में छिपाकर कटहल की कचौड़ियाँ लाने की बात भी याद आती है।

ज्योति अपना काम कर जा चुकी थी। शाम को फिर आने वाली थी। नागेश को मुँह लटकाये सामने से गुजरते हुए देखकर पूछा, "क्या है, नागेश ?" नागेश ने कोई जवाब नहीं दिया। उसे आँख चुराते देखकर फिर बुलाया। नागेश ने बड़ी उधेड़बुन में अपनी जेब में तहाकर रखी दस पैसे की 'चिगारी' नामक पत्रिका निकाली और उसे कृष्णप्पा के हाथ में देते हुए कहा, "कुत्ते, हरामजादे ! अंटसंट कुछ लिख दिया है। दिल पर मत लीजिये।"

कृष्णप्पा ने पत्रिका पढ़ी। आज तक किसी ने उस पर ऐसा अभियोग नहीं लगाया था। 'मुख्यमंत्री-पद के लिए कृष्णप्पा गौड़ा का षड्यन्त्र' शीर्षक के अंतर्गत आरोपों की तालिका थी। पत्नी के नाम पर जयमहल उपनगर में प्लाट खरीदना, वीरण्णा नामक ठेकेदार को जब मौजूदा सरकार ने करोड़ों का लाभ देने वाला जलाशय की तामीरात का ठेका टेंडर में फेर-बदल करके दे दिया तो उस संबंध में गौड़ाजी की आवाज़ क्यों नहीं उठी ? बड़े ज़मींदार स्वर्गीय गोपाल रेड्डी और सोने के अंडे देने वाले वीरण्णा जैसे व्यक्ति ही क्यों गौड़ाजी के आत्मीय हैं ? अपने नाम पर फ़िएट कार ख़रीदकर उसे वीरण्णा के व्यभिचारी पुत्र की निशाचर-वृत्ति के लिए दे देने की बात क्या सच है ? गौड़ाजी की पत्नी, जो एक बैंक में मुंशीगिरी करती हैं, उनकी मैनेजर के ओहदे पर तरक्की होने की ख़बर क्या सिर्फ़ अफ़वाह है ? सत्ताधारी पक्ष में तोड़फोड़ होने लगी है तो मौजूदा मुख्यमंत्री, क्रांतिकारी के नाम से विख्यात गौड़ा को अपना नेता चुनकर सरकार बचाने की कोशिश में लगे हैं और उस नाटक के नेपथ्य में एम० एल० ए० लोगों को वीरण्णा किस दाम पर ख़रीद रहा है ? मुख्यमंत्री के विरोधी वामपंथी दल के साथ मिलने की रुझान, जो गौड़ा के दल ने दिखायी थी, उसे भी ऊँचे दाम पर वीरण्णा द्वारा ख़रीदे जाने की बात क्या सच

विचारवादी के नाम से ख्यात गौड़ाजी महेश्वरय्या नामक शक्ति-संप्रदाय के एक व्यक्ति द्वारा वामाचार की पूजा-पाठ करवाकर मुख्यमंत्री-पद को हथियाने की कोशिश कर रहे हैं, यह कहाँ तक सच है ? पत्नी की पिटाई करना, मजबूर औरतों का भोग करना, नशेबाजी करना, कोपावेश के लहजे में लोकप्रियता हासिल करके उसे भ्रष्ट-व्यवस्था की हिमायत में उपयोग करना—क्या ये सभी क्रांतिकारी के लक्षण हैं ? किसी जमाने में जो सच्ची लगन के साथ कृषकों के हित में दिन-रात एक किया करता था और जिसने एक कृषक-परिवार में जन्म लिया, ऐसा आदमी भ्रष्टाचारियों के हाथ की कठपुतली कैसे बन गया ? लेख का अंत बड़े विषादपूर्ण उद्गार से हुआ था। आख़िरी वाक्य बड़ा ही मार्मिक और बड़े-बड़े अक्षरों में छपा था। उसका आशय था कि गौड़ाजी की भावनाएँ, उनके बारे में फैली अफ़वाहें किस प्रकार उनकी बीमारी को हरण करने का साधन बनी हैं।

यह सब पढ़ते समय कृष्णप्पा के चेहरे का रंग उड़ते देखकर नागेश ने उनमें उमंग भरने की चेष्टा की, "नागराज ने ही यह सारा लिखवाया है, सर !"

"नागराज मेरा विरोध जरूर करता है, लेकिन गुमनाम होकर लिखने वाला आदमी वह नहीं।" कृष्णप्पा ने संजीदगी से कहा।

"उसी ने लिखा है। आप तो जहाँ सफ़ेदी देखी, वहाँ दूध मान बैठते हैं...।"

"उन्हें बुला ले। जाते-जाते ज़रा पैन और पैड देते जाना।"

नागराज कृष्णप्पा की जवानी के दिन याद दिलाने लायक़ था—अपने उग्र और निष्ठुर व्यक्तित्व में, अपनी कुढ़न आदि में। फ़र्क़ इतना ही था कि कृष्णप्पा राजनीति में अनिच्छा से आया था—जीवन की सफलता का कोई अन्य मार्ग न पाकर। नागराज को राजनीति के सिवा कुछ दिखायी ही नहीं देता था। उसकी धारणा थी कि क्रांति के बिना जीवन की सफलता का कोई मार्ग ही नहीं। एक के बाद एक चारमीनार के कश खींचते हुए यों बातें करता कि सुनकर लोग फड़क उठें। वही बात उसी अंदाज़ में उसी आवेश के साथ अगर कृष्णप्पा कहता है तो सहयोगी मित्र सह लेते हैं, लेकिन नागराज का मुंह खुलते ही उस पर भड़क उठते हैं। वह

एक धनी फ़ौजदारी के वकील का बेटा था। दिल्ली स्कूल ऑफ़ इकोना-मिक्स में पढ़ते समय मार्क्सिस्ट बना था। कम्युनिस्टों को रूस-समर्थक और [illegible] का विरोधी होने के कारण उसे सोशलिस्ट दल में पनाह लेनी पड़ी थी। सोशलिस्टों से भी उसे एलर्जी थी। बिना किसी हिचक के कहा करता था कि वह अस्थायी तौर पर ही उस दल में है। [illegible] भारी बहुमत से चुनकर आया था। इसीलिए सभी लोग [illegible]। कृष्णप्पा के नायकत्व का उसे प्रतिस्पर्धी मानकर प्रायः सभी लोग कृष्णप्पा से उसकी चुगलखोरी करते। कृष्णप्पा का गुरुत्व—वह किसी को भी अपनी बराबरी का नहीं मानता था—नागराज को अखरता था। पार्टी-मीटिंग में कृष्णप्पा को फ्यूडल कहकर उसकी निंदा भी की है। [illegible] के साथ किसी भी बात के लिए राज़ी न होने वाले नागराज से कृष्णप्पा कहा करता, "तुम्हारी दलील ऐसी लगती है जैसे आकाश का बँटवारा हुए बिना धरती के बँटवारे से कोई प्रयोजन नहीं।" नागराज बड़े [illegible] से जवाब देता है, "आपका न कहना ठीक ही है, एनिमी से बढ़कर क्रिमिनल इंटलेक्चुअल होता है।" मन-ही-मन कृष्णप्पा ने चाहा भी है कि वह नागराज धीरे-धीरे [illegible] जाये और समझौते की राह पकड़कर [illegible] करे। किन्तु [illegible], मुरव्वत आदि से बिल्कुल मुँह मोड़कर नागराज आज तक [illegible] की तरह जिये जा रहा था। अपने मकसद से [illegible] हुआ, अपने [illegible] को भरसक एक ही मकसद तक सीमित रखकर, [illegible] जीते नागराज को देखकर कृष्णप्पा को ईर्ष्या होती थी। [illegible] देखकर हैरानी होती थी।

कृष्णप्पा ने जो लिखा था, उसे दुबारा पढ़ लिया। फिर [illegible] रखकर नागराज की प्रतीक्षा करने लगा। बिना [illegible] पैंट पहने, [illegible], [illegible] आँखों से [illegible] वाला नागराज कुर्सी खींचकर बैठ गया। कृष्णप्पा ने [illegible] बंद करके अपने आने का इशारा किया।

"आपकी तबीयत कैसी है?" यह पूछकर नागराज ने [illegible] तक नहीं थी। [illegible] कृष्णप्पा ने अपने [illegible]

"देखा है।" नागराज ने कहा।

"लोग मुझसे कहते हैं कि यह तुम्हीं ने लिखा है।"

"आपका उन पर विश्वास न करना-भर काफ़ी है।"

नागराज ने वड़ी सहलता से सीधी वात कही थी। उस रात की मीटिंग में भी आखिर तक चुप्पी साधे रहकर अंत में कहा था, "पार्लियामेंटरी राजनीति का यही तो हाल होता है। हम चाहे किसी भी दल से मिलकर सरकार वनायें, लेकिन कर कुछ नहीं पायेंगे। यह व्यवस्था सत्ताधारी वर्ग का साधन होती है। दूसरे किसी ढंग से उसका उपयोग कर पाना पार्लियामेंटरी राजनीति में संभव ही नहीं।" इस वात पर सभी लोग चिढ़कर उस पर भड़क उठे थे, "तव आप कौन तीर चला रहे हैं?"

"मैं? जव हमारा दल सरकार रचाने लगेगा, तव मैं उससे वाहर रहूँगा। असेम्वली की सदस्यता से भी इस्तीफ़ा दे दूँगा। इस वारे में अभी मेरी धारणा अस्पष्ट है।" उसने कहा था।

"पार्लियामेंटरी राजनीति के संवंध में अगर आपकी यह धारणा है तो उसके लिए यों टकटकी वांधकर वैठना नैतिकता की दृष्टि से उचित नहीं। यह अपने-आप को धोखा देना है।" इस संदर्भ में कृष्णप्पा ने उसे छेड़ा था।

"आपके कहने में सच्चाई है। मैं अपने वर्ग की भ्रांतियों से अभी तक छुटकारा नहीं पा सका हूँ।" नागराज ने सरलता से कहा तो सभी लो हँस पड़े थे। लेकिन यह वात कृष्णप्पा के दिल में उतर गयी थी। अ रह-रहकर याद आती है।

आज भी उस वात को याद करके विना किसी आवेग के कृष्ण वोला, "नागराज, यह लेख पढ़ने के वाद तुमसे पूछने का मन हुआ। वारे में क्या तुम्हें भी ऐसा लगता है? मैं पसोपेश में पड़ गया हूँ, इस पूछ रहा हूँ।"

"यहाँ व्यक्ति का प्रश्न अहम नहीं। इस व्यवस्था में कौन वि प्रामाणिक है, सिर्फ़ यही रिलेटिव है। मुझे भी लग रहा है कि यह व्य आपको अपने शिकंजे में फँसाने लगी है। आपका एक इमेज है व्यवस्था को अव इमेज की जरूरत है—खुद को वचाने के लिए।"

"अच्छा, तो तुम्हारी राय में मुझे क्या करना चाहिए? मैं तुम्हारे विचारों को मानता नहीं, लेकिन वास्तव में मुझे तुम्हारी एड्वाइज़ की जरूरत है।"

"हमारे दल का राजनैतिक मार्ग अगर ठीक बना रहता तो वीरण्णा जैसे लोगों का आपको 'लीक' करने का मन हो ही नहीं सकता था। है न?"

कृष्णप्पा को सहसा गुस्सा चढ़ आया, "नागराज, वीरण्णा ने मेरी जो मदद की है, वह सच है। लेकिन मैंने उनके लिए याचना नहीं की थी। तुम धनी खानदान में पैदा हुए हो। मेरी तरह जन्म लेकर बढ़े होते तो देखता कि तुम मेरे जितना भी प्रामाणिक बने रहते या नहीं!"

नागराज को गुस्सा नहीं आया।

"आप व्यक्तिवादी बनकर बोल रहे हैं। आप में सैद्धान्तिक क्लैरिटी नहीं है। मैंने वह सवाल उठाया ही नहीं। अगर मैं प्रामाणिक होता तो क्या यहाँ रहता, बताइये?"

"देश के प्रधानमंत्री तानाशाह बनने की ताक में हैं। उनके दल वाले सत्तारूढ़ होंगे तो जनता के जो सिविल राइट्स हैं, वे नष्ट हो जायेंगे। इस समय जो मुख्यमंत्री हैं, वे रिएक्शनरी हैं। अगर उनकी मदद से हम मिनिमम टाइम-बाउंड कार्यक्रम निर्धारित कर सरकार की रचना करें तो कुछ-न-कुछ कर दिखाने की जो उम्मीद है, क्या वह थोथी है?"

"नहीं, देश की हालत जब और बिगड़ जायेगी तभी पार्लियामेंटरी व्यवस्था के प्रति जो भ्रम है, वह दूर हो सकेगा। यह पैबंद लगाने वाला काम मुझे पसंद नहीं।"

पल-भर के लिए खामोश रहकर कृष्णप्पा बोला, "तुम्हारे विचार मैं नहीं मानता। बसे-बसाये घर में आग लगाकर हाथ सेंकने वाली अराजकतावादी धारणा है तुम्हारी। लेकिन व्यक्तिगत रूप से मेरी कुछ समस्याएँ हैं—वे मेरी प्रामाणिकता से ताल्लुक रखती हैं। इसीलिए तुम्हें बुलवा लिया। अगर तुम्हें भी लगता हो कि मैं किसी के फंदे में फँसता जा रहा हूँ तो यह लो। जिम्मेदारी की सदस्यता से यह मेरा त्याग-पत्र है। इसे लेते जाओ। एकाध घंटा ठंडे दिमाग से सोचो और तुम्हें उचित लगे तो यह

चिट्ठी स्पीकर के नाम पोस्ट कर देना।"

फिर वह काग़ज उसके हाथ में थमा दिया। नागराज ने खड़े होकर बिना किसी भावुकता के कहा, "आप व्यक्तिवादी हैं, इसलिए प्रामाणिकता के नाम पर बेहद परेशान होते हैं। यह एक प्रकार का सिक्ली इंडल्जेंस है...अगर प्रामाणिकता का प्रश्न है तो आप मुझसे महान हैं...मेरी तुलना में आप ही लोगों के क़रीब हैं। इसीलिए आपका व्यक्तित्व मेरे लिए महत्व का है। आप नेक और पाक हैं या नहीं, इस बात के लिए त्यागपत्र देना मेरी निगाह में इर्रेलेवेंट है। बुर्जुआ समाज में पाक बने रहना कहाँ संभव है? अब भी इस मुद्दे पर स्पष्टीकरण की ज़रूरत है कि पार्लियामेंटरी मार्ग उचित है या नहीं!"

कृष्णप्पा को काग़ज़ लौटाते हुए नागराज ने फीकी आवाज में अपनी बात जारी रखी, "इसीलिए आपका अनुभव महत्व का है। मैं ठहरा अभी कच्चा आदमी। इस मुद्दे पर जब आप किसी नतीजे पर आ जायें तो मुझे कहला भेजना। फ़ासिस्टों को रोकने के लिए क्या आपको पार्लियामेंटरी मार्ग वास्तव में अनिवार्य लगता है? मेरी यह कुढ़न भी हो सकती है या यह भी कि मेरा एड्वेंचरिस्ट इंडल्जेंस हो। इसलिए आपका मार्ग-दर्शन चाहिए, क्योंकि आप जनता के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलते रहे हैं।"

बात करते हुए लगा कि नागराज उलझन में पड़ गया है। वह खड़े-खड़े विदा लिये बिना ही चला गया।

नागराज की बातें कृष्णप्पा को गहरे तक सालने लगीं। ज़िंदगी और मौत की देहलीज़ पर बैठे हुए तय करना है कि उसका मुख्यमंत्री बनना क्या फ़ासिस्टों के षड्यंत्र को भंग करने के लिए अनिवार्य है? यह कामना जो उसके मन में पैदा हुई है, क्या मरते समय अधिकार के ज़रिए चेतना पाने की कोशिश तो नहीं है? अथवा वारंगल थाने में अधिकार का जो क्रूर स्वरूप देखा था, यह उसे नष्ट करने की इच्छा से तो नहीं? वीरण्णा के वर्ग-हित के द्वारा क्या फ़ासिस्टों का विरोध कर पाना संभव है? यों अपने-आप से प्रश्न करते समय वह कहीं ख़ुद के व्यक्तिगत हित को बढ़ावा तो नहीं दे रहा है?

'नागराज, तुम घुग्घू हो, एकदम घुग्घू ! जीवन के संकीर्ण रूप को तुम नहीं जानते। आज रात ज्योति और उसका प्रेमी देह के रहस्यमय सुख को लूटें, इसीलिए मैंने वीरण्णा के वर्ग-हित को नजरअंदाज किया।' यह बात चिल्लाकर कहने को मन हुआ। 'खाकर, पीकर, सोकर, सम्भोग में देह से देह सटाकर, प्रेत या परमात्मा के बहाने अव्यक्त पर धावा बोल-कर, इस क्षणिक जीवन में जब कमरे में रहने वाले प्राण नरम पड़ जायेंगे तो घोड़ी की दुम पकड़कर भटकते हुए उद्रेकित होते रहना—इनके बिना और रखा ही क्या है रे मूर्ख ?' ज्योति द्वारा सहलाये गये पाँव को उठाने की कोशिश में कृष्णप्पा ने साँस रोक ली।



इस समय साढ़े पाँच बजे हैं। छह बजे गौरी हवाई जहाज से उतरेगी। नागेश ने उसकी सफेद साड़ी में ली गयी तसवीर देखी है। पहचान लेगा। वह अपनी भावनाओं को दबाकर संजीदगी से पूछेगी, 'कृष्णप्पा गौड़ाजी की तबीयत कैसी है ?' नागेश जानता है कि वीरण्णा की कार में उसे सीधे यहाँ लिवा लाना है। यहाँ से गेस्ट-हाउस को ले जाना है। रास्ते में उसके बारे में नागेश सारी बातें बता देगा—स्ट्रोक की बात, मुख्यमंत्री बनने की सम्भावना की बात, लालच में न आने की बात, सिद्धांत की खातिर मान जाने की संभावना। हवाई अड्डे से यहाँ आने में लगभग आधा घंटा तो लगेगा। अगर हवाई जहाज के आने में देर हो गयी तो ? कपड़े बदलने के लिए कहीं गौरी पहले गेस्ट-हाउस जाना चाहेगी तो ?

बाहर कार के रुकने की आवाज आयी। क्या फ्लाइट जल्दी आ गयी ? भीतर कोई आ रहा है। यह औरत के कदमों की आहट नहीं।

"नमस्ते !"

जो सज्जन सामने आकर खड़े हुए, उन्हें देखकर कृष्णप्पा का सारा मजा किरकिरा हो गया। वीरण्णा के साथ नरसिंह भट्ट और रामे गौड़ा आये थे। नरसिंह भट्ट ने बच्चे के लिए चूल्हे पर रखा दूध घूरे में उँडेल दिया था और रामे गौड़ा? उसने पहले चुनाव में कृष्णप्पा को हराने के लिए ज़मींदारों की ओर से चुनाव लड़ा था।

तीनों बैठकर बक-झक करते रहे—आप महान नेता हैं, देश-सेवा की ख़ातिर भगवान आपको जल्द स्वस्थ करे, आदि-आदि। नरसिंह भट्ट ने कहा कि भू-शासन के बारे में उसका ज्ञान नहीं के बराबर है, 'बलाच पृथिवी' वाली बात अब उचित नहीं; कृष्णप्पा गौड़ा के आंदोलन के फल-स्वरूप आज उसके लिए भी मठ की थोड़ी-सी ज़मीन का पट्टेदार बनना संभव हो सका; अब स्वामीजी और उसके बीच बनती नहीं, आदि। पूजा-पाठ से बच्चों का गुजारा हो पाना क्या संभव है? उन्हें पढ़ाना भी होगा, इसलिए भट्ट ने शिवमोगे में घर लिया है। उसे शक्कर की बीमारी है, हर रोज सुई लगवानी पड़ती है। मठ की सारी ज़िम्मेदारी अपने बहनोई को सौंपकर शहर में आ बसा है। गुरु महाराज की सेवा की थी। उसके एवज में काश्त के लिए दस एकड़ उर्वर जमीन रख ली थी। उससे भी क्या गुरु महाराज बेदख़ल कर दें? भट्ट के बेटे को ही दीक्षा दी जा सकती थी। बड़ा ही शुभ लक्षणों वाला लड़का है। ख़ैर, जाने दें। अपने भांजे को ही दे दें। लेकिन क्या उनकी सेवा के एवज में थोड़े-से बाग़ भी न दे? कृष्णप्पा गौड़ा के आंदोलन के फलस्वरूप जो भू-शासन बना था, उसके बिना नरसिंह भट्ट को वह उर्वर ज़मीन भी नसीब न हो पाती। रामे गौड़ा का भी यही हाल था। उस शासन के कारण मठ की ज़मीन का पट्टेदार बना था। न जाने किस-किस ने उसके कान भरे थे कि कृष्णप्पा गौड़ा चुनकर आयेंगे तो उनके हाथ में ठीकरा थमा देंगे। अब तो हर कोई हक़ीक़त जानता ही है।

"कैसे आना हुआ?"

कृष्णप्पा थक गया था। पर वीरण्णा ने अपनी बात रखी, क्षेत्र के सभी काश्तकारों ने मिलकर कृष्णप्पा के सम्मान में एक बड़ी सभा का आयोजन किया है। सात दिनों तक हर रात यक्षगान चलेगा। दिन में भाषण होंगे—कृषकों की समस्याओं पर। पहले दिन कृष्णप्पा गौड़ा को एक लाख की निधि

समर्पित की जायेगी। हर कृषक से दो-एक रुपया इकट्ठा करके इतनी पूँजी जमा की गयी है। पहले दिन की सभा के लिए मुख्यमंत्री ही प्रमुख भाषण-कर्ता होंगे। कृष्णप्पा गौडा की लोकप्रियता इतनी अधिक है कि मुख्यमंत्री का शत्रु कहलाने वाले चन्द्रय्या ने भी सभा में शरीक होने की इच्छा व्यक्त की है...सारांशतः देश के दीन-दलित कृषकों के लिए यह एक भारी मेला भी बनने वाला है। दिल्ली से कृष्णप्पा गौडा के दल के नेताओं ने भी इसमें शरीक होने की स्वीकृति दी है। गौडाजी को चौकाने के लिए ही इतने दिनों तक उनके स्वाभिमानी अनुयायियों ने परदे के पीछे ये सारी तैयारियाँ की हैं।

वीरण्णा की शालीन बातों के साथ हीरे की अँगूठी पहने हुए भट्ट और नये दाँत लगवाये हुए रामे गौडा सिर हिलाते हुए यथोचित अपनी भावनाओं का पुट दे रहे थे। बातों के बीच कृष्णप्पा ने कहा, "वीरण्णा, गौरी देशपांडे का जहाज पहुँचा या नहीं, जरा पूछताछ करेंगे?"

वीरण्णा उठ खड़े हुए। बाहर कार की आवाज सुनकर कहा, "शायद वे आ गयी हैं। उन्हें गेस्ट-हाउस को भेज दें?" फिर वह वहीं बैठ गये।

"मुझे उनसे अभी मिलना है। अच्छा, हम लोग फिर बैठेंगे।" कृष्णप्पा ने दाहिना हाथ उठाकर नमस्कार किया। भट्ट, गौडा और वीरण्णा प्रणाम कर चले गये।



कृष्णप्पा को अपनी आँखों पर ही विश्वास नहीं आया। गौरी सामने खड़ी थी—नीली जीन्स पर महीन लखनवी टॉप पहनकर। पीठ पर बिखरे लंबे बालों को रूमाल से बाँध रखा था। बालों में कहीं-कहीं सफेद रेखाएँ दिखायी पड़ीं। वैसे वह पहले वाली गौरी ही थी। वही सुडौल गठन, वही

चमकने वाली आँखें। भावावेग को दबाने की चेष्टा करते हुए गौरी हँसकर बोली, "अब आप वाक़ई अफ्रिकन-प्रिन्स की तरह लगते हैं। बल्कि दाढ़ी के कारण अफ्रिकन गॉड की तरह लगते हो। बंद कमरे में रहकर कुछ गोरे भी हो गये हो...।"

कृष्णप्पा मूक बना व्हील-चेयर पर बैठा था। उसकी आँखों से आँसू उमड़ रहे थे। कृष्णप्पा ने इस बात की तनिक भी परवाह नहीं की कि इस उद्वेग को देखकर गौरी जान लेगी कि पहले जैसा तनाव और मग़रूरपन अब उसमें नहीं रहा। जब वह अमेरिका के लिए निकल रही थी, तब कृष्णप्पा उससे कह सकता था कि 'मुझे तुम्हारी जरूरत है। मत जाओ।' पर उसने कहा नहीं था। उन दिनों उसमें इतनी चुस्ती नहीं थी और उसे अपनी जरूरत का ठीक-ठीक पता तक नहीं चल पाता था। अब कृष्णप्पा सिर्फ़ दाहिना हाथ मात्र उठा सकता है। उठाया भी। दाहिने तरफ़ खड़े होकर उसका मस्तक अपने पेट से टिकाये गौरी सिर के बालों में उँगलियाँ चलाने लगी। उसका पेट भीग गया। कृष्णप्पा के दाहिने हाथ ने उसे कस कर लपेट लिया। "दिल्ली लौटते ही क्यों नहीं आयीं?" उसने पूछा। "जानती नहीं थी कि मेरा आना तुम्हें भायेगा या नहीं!" संजीदगी से यह बात कहकर उद्वेग कम करने के लिए मजाक किया, "इंतजार कर रही थी कि ज़रा साहब का ग़रूर उतर जाये।"



दोनों हँस पड़े। कुर्सी पर बैठकर गौरी ने कमरे का मुआइना किया। गुलाब के फूलों पर उसकी नजर टिकी देखकर कृष्णप्पा को उसके घर के गुलाबों का चमन याद आया। गौरी भी उस दिन की सोच में डूबी थी, जब दालान में बैठे-बैठे कृष्णप्पा गुलाबों का चमन निहारने लगा था। मानो

कृष्णप्पा के मुँह की बात छीनकर गौरी बोली, "नजप्पाजी का देहांत हो गया। अब माँ दिल्ली में मेरे साथ ही रहती हैं।"

"काम में मन लगता है?"

"हाँ! रिवों पर लिखी मेरी एक पुस्तक छप रही है।"

लज्जा और संजीदगी-मिश्रित उसी पुराने लहजे में गौरी बोल रही थी। अपने चेहरे को कृष्णप्पा की आँखों द्वारा समूचा निगलते देख गौरी कमसिन लड़की की तरह जर्द पड़ गयी। कृष्णप्पा का ध्यान दूसरी ओर खींचने के लिए बोली, "अमरीका में मैंने एक सोशियोलॉजिस्ट से शादी की थी। शादी से मतलब उसके साथ थी। बड़ा सज्जन था। मार्क्सवादी। कैंपस में मार्टिन लूथर किंग के आंदोलन में हिस्सा लिया था। मैंने भी। जानते हो, मुझे भी अब राजनीति से रुचि होने लगी है! अपना ही एक कुनबा है दिल्ली में। प्रधानमंत्री के डिक्टेटर बनने का डर है हमें। आपको यहाँ खबरदारी बरतनी होगी कि कहीं प्रधानमंत्री का दल सत्तारूढ़ न हो जाये। नागेश ने सब-कुछ बताया है। परिस्थिति बहुत ही उत्तेजक है ..यह बात न कहकर जाने क्या-क्या बक गयी! क्या मैं सिगरेट पी सकती हूँ?"

पहले वाली गौरी ही है। जो बात गहराई से घर कर जाती है, उसे छिपाने के लिए कुछ-का-कुछ बोल देती है। महज छेड़ने के इरादे से ही कभी-कभी उलटी बात कह देती है। पैक से सिगरेट निकालकर गौरी ने सुलगाया और पूछा, "क्या आप अब भी पीते हैं?"

"छोड़ दिया है। अब दोगी तो एक कश खींचूँगा।" कृष्णप्पा ने कभी सोचा भी नहीं था कि गौरी सिगरेट पीयेगी। 'इफ यू डोंट माइंड' कहते हुए अपने लिए सुलगाया सिगरेट कृष्णप्पा के होंठों में खोंस दिया। यह इस बदली हुई गौरी को अपनाने की चेष्टा कर ही रहा था कि गौरी बोली, "क्या आप अभी तक पयूडल ही बने हैं? आइ होप, नाट। मुझे सिगरेट पीते देखकर शॉक लगा?"

उसने गरदन को पीछे की ओर झटका दिया और बालों को हाथ से पीठ पर बिखराकर हँस पड़ी। गौरी की यह अदा भी अनोखी थी। क्या यह उसे अस्वाभाविक लगा? अगर हाँ, तो क्या इसके लिए उसका स्वभाव ही कारणभूत है? कृष्णप्पा सोच में पड़ गया। गौरी उसे शरारती निगाह

चमकने वाली आँखें। भावावेग को दवाने की चेष्टा करते हुए गौरी हँसकर वोली, "अव आप वाक़ई अफ्रिकन-प्रिन्स की तरह लगते हैं। वल्कि दाढ़ी के कारण अफ्रिकन गॉड की तरह लगते हो। वंद कमरे में रहकर कुछ गोरे भी हो गये हो...।"

कृष्णप्पा मूक वना व्हील-चेयर पर वैठा था। उसकी आँखों से आंसू उमड़ रहे थे। कृष्णप्पा ने इस वात की तनिक भी परवाह नहीं की कि इस उद्वेग को देखकर गौरी जान लेगी कि पहले जैसा तनाव और मग़रूरपन अव उसमें नहीं रहा। जव वह अमेरिका के लिए निकल रही थी, तव कृष्णप्पा उससे कह सकता था कि 'मुझे तुम्हारी ज़रूरत है। मत जाओ।' पर उसने कहा नहीं था। उन दिनों उसमें इतनी चुस्ती नहीं थी और उसे अपनी जरूरत का ठीक-ठीक पता तक नहीं चल पाता था। अव कृष्णप्पा सिर्फ़ दाहिना हाथ मात्र उठा सकता है। उठाया भी। दाहिने तरफ़ खड़े होकर उसका मस्तक अपने पेट से टिकाये गौरी सिर के वालों में उँगलियाँ चलाने लगी। उसका पेट भीग गया। कृष्णप्पा के दाहिने हाथ ने उसे कस कर लपेट लिया। "दिल्ली लौटते ही क्यों नहीं आयीं?" उसने पूछा। "जानती नहीं थी कि मेरा आना तुम्हें भायेगा या नहीं!" संजीदगी से यह वात कहकर उद्वेग कम करने के लिए मज़ाक किया, "इंतज़ार कर रही थी कि ज़रा साहव का ग़रूर उतर जाये।"



दोनों हँस पड़े। कुर्सी पर वैठकर गौरी ने कमरे का मुआइना किया। गुलाव के फूलों पर उसकी नज़र टिकी देखकर कृष्णप्पा को उसके घर के गुलावों का चमन याद आया। गौरी भी उस दिन की सोच में डूवी थी, जव दालान में वैठे-वैठे कृष्णप्पा गुलावों का चमन निहारने लगा था। मानो

से गौर करके गौरी ने बच्ची को सहलाते हुए कहा, "आपकी ही जैसी आँखें हैं।"

कृष्णप्पा ने बच्ची को माँ के डर से फिर गूँगी होते हुए देखा। सामान्यतया किसी का भी स्पर्श पसंद न करने वाली बच्ची आज एक अजनबी—और वह भी पैंट पहने औरत—की गोद में आकर भी चुप थी।

"स्वीट चाइल्ड !" गौरी ने दूसरा सिगरेट सुलगाया। जाहिर न होने पर भी कृष्णप्पा ने गौरी को उद्विग्न होते देखा।

"अब तुम गेस्ट-हाउस जाओ। कल आना। तुम्हें आराम की ज़रूरत है।" कृष्णप्पा ने कहा। उसका अनुमान था कि पत्नी भीतर सिसक-सिसक कर रो रही होगी। उसे जो रोना सुनायी दे रहा है, क्या वह गौरी को भी सुनायी दे रहा होगा ? और नागेश को भी ? लेकिन बिहार में किसान लोग, जो उसे जुलूस के साथ ले गये थे, शायद उसी की कल्पना में डूबकर नागेश उत्साह से खिल रहा था। उसका चेहरा देखकर कृष्णप्पा को सब-कुछ बेतुका-सा लगा।

"आपको भी।" गौरी उठ खड़ी हुई और 'बाई' कहकर नागेश के साथ चली गयी। बच्ची को सहलाते कृष्णप्पा चुपचाप बैठा रहा। अनजाने में ही उसके जड़ीभूत बाएँ हाथ की उँगलियाँ और बाईं टाँग कसरत करने लगी थी। पत्नी का रोना भी ऊँची आवाज़ में सुनायी दे रहा था। कृष्णप्पा के मन में मरने की चाह फिर अंकुरित हुई।



दूसरे दिन सवेरे जलती मशाल की तरह दिखायी देने वाले लाल गुलाबों का गुच्छा लिये, सफ़ेद साड़ी और सफ़ेद ब्लाउज़ पहनकर खुश होती हुई ज्योति कमरे में दाखिल हुई। कल से उसका बाय-फ्रेंड काम

से देख रही थी। सहसा गंभीर होकर बोली, "अमेरिकन मेल के बारे में जो मेरा भ्रम था, वह जल्दी ही टूट गया। आपको मैंने फ्यूडल कहा। औरतों के बारे में वे लोग भी फ्यूडल ही होते हैं। एड्डी मार्क्सिस्ट है न ? फिर भी अनजाने में वह फ्यूडल बनकर ही रहा। अब भी हममें फ्रेंड्स का नाता समझिये।"

कृष्णप्पा के चेहरे का रंग उड़ते हुए गौरी ने ग़ौर किया। वह पूछना चाहती थी कि उसके दिल को दुखाया तो नहीं। किन्तु पूछा नहीं। अमरीका में उसने शादी की थी, इस बात पर कृष्णप्पा के दिल को चोट पहुँचते देखकर उसे खुशी हुई। लेकिन उसे जाहिर न करके पूछा, "आपकी पत्नी और बेटी कहाँ हैं?"

पल-भर के लिए कृष्णप्पा कुछ बोल नहीं पाया। मुंह लटकाये धीरे से बोला, "मैं किसी भी क्षण मर सकता हूँ, गौरी ! नाहक झूठ-मूठ का स्वाँग क्यों रचाऊँ ? पत्नी कहलाने वाली एक है ज़रूर, लेकिन मैं उसे पीटता रहता हूँ।"

शायद गौरी को उसकी वेदना का अहसास हो गया। वह चुप्पी साधे रही।

"नागेश !" कृष्णप्पा ने हाँक लगायी। नागेश बड़े उतावलेपन से अंदर आकर बड़बड़ाने लगा, "सम्मान-समारोह के संदर्भ में वे लोग आपकी एक जीवनी का भी प्रकाशन करने वाले हैं। मैंने अभी से लिखनी शुरू कर दी है। बिहार के अखिल भारतीय किसान सम्मेलन के आप सभापति बने थे न, उस समय...।"

उसकी बात काटकर कृष्णप्पा मुसकराते हुए बोला, "लिख यार, लिख। सीता को बुला, गौरी को भी लिवा ला।" गौरी को चौंकते देख कहा, "अपनी बेटी का नाम तुम पर ही रखा है।"

कुछ देर बाद नागेश गौरी को लिवा लाया और बताया, "सीता माँ जी को सिरदर्द है—सोयी हैं। सर, आप मलेनाड़ के एक क़स्बे में जन्म लेकर अखिल भारतीय किसानों के नेता बने—आपकी जीवनी में इस मुद्दे पर ज़ोर देना होगा।"

नागेश के उत्साह से कृष्णप्पा को हिचक हुई है। यह बात बड़ी सूक्ष्मता

में गौर करके गौरी ने बच्ची को सहलाते हुए कहा, "आपकी ही जैसी आँखें हैं।"

कृष्णप्पा ने बच्ची को माँ के डर से फिर गूँगी होते हुए देखा। सामान्यतया किसी का भी स्पर्श पसंद न करने वाली बच्ची आज एक अजनबी—और वह भी पैंट पहने औरत—की गोद में आकर भी चुप थी।

"स्वीट चाइल्ड !" गौरी ने दूसरा सिगरेट सुलगाया। ज़ाहिर न होने पर भी कृष्णप्पा ने गौरी को उद्विग्न होते देखा।

"अब तुम गेस्ट-हाउस जाओ। कल आना। तुम्हें आराम की ज़रूरत है।" कृष्णप्पा ने कहा। उसका अनुमान था कि पत्नी भीतर सिसक-सिसक कर रो रही होगी। उसे जो रोना सुनायी दे रहा है, क्या वह गौरी को भी सुनायी दे रहा होगा? और नागेश को भी? लेकिन बिहार में किसान लोग, जो उसे जुलूस के साथ ले गये थे, शायद उसी की कल्पना में डूबकर नागेश उत्साह से खिल रहा था। उसका चेहरा देखकर कृष्णप्पा को सब-कुछ बेतुका-सा लगा।

"आपको भी।" गौरी उठ खड़ी हुई और 'बाई' कहकर नागेश के साथ चली गयी। बच्ची को सहलाते कृष्णप्पा चुपचाप बैठा रहा। अनजाने में ही उसके जड़ीभूत बाएँ हाथ की उँगलियाँ और बाईं टाँग कसरत करने लगी थी। पत्नी का रोना भी ऊँची आवाज़ में सुनायी दे रहा था। कृष्णप्पा के मन में मरने की चाह फिर अंकुरित हुई।



दूसरे दिन सवेरे जलती मशाल की तरह दिखायी देने वाले लाल गुलाबों का गुच्छा लिये, सफ़ेद साड़ी और सफ़ेद ब्लाउज़ पहनकर खुश होती हुई ज्योति कमरे में दाख़िल हुई। कल से उसका बाय-फ्रेंड काम

पर जा रहा है। कृष्णप्पा के कुछ भी कहने से पहले वह बोली, "वे बाहर हैं। धन्यवाद के लिए ऑटो-रिक्शा में बैठे हैं।"

कृष्णप्पा की अनुमति पाकर वह बाहर भागी। फिर सुन्दर मूंछों और खिलाड़ी जैसे गठन वाले अपने प्रेमी को भीतर ले आयी। 'एडविन' कहकर उसका परिचय कराया। कृष्णप्पा ने जलन और खुशी से उसकी ओर दाहिना हाथ बढ़ाकर 'कांग्रेचुलेशन्स' कहा। उत्साहपूर्ण हस्त-लाघव के साथ धन्यवाद देकर एडविन काम पर चला गया। तन्मय होकर फूलों को गुलदस्ते में सजाती हुई ज्योति की चाल में तृप्ति की थकावट को पहचान कर मुसकराते हुए कृष्णप्पा ने पूछा, "काम मिलने की खुशी को कल सेलेब्रेट भी कर लिया!"

अपने ही अंदाज़ में उसने हामी भरी। फिर कृष्णप्पा की नीरव हँसी को भाँपकर फूल सजाती हुई ज्योति लाल-सुर्ख हो गयी। बनावटी गुस्से से कृष्णप्पा को देखा। बिस्तर के पास छोटे क़दमों से जाकर उसके गालों पर चिकोटी भरते हुए बोली, "डोंट बी नॉटी।" फिर सहसा अपनी हरकत से घबराकर आँखें छिपाती हुई ज़बान काट ली।

"पेन के लिए तैयार हैं?" अपने पेशे के रूखे लहजे में उसने पूछा। धोते-नहलाते समय ज्योति के कुशल हाथों की दृढ़ता, मार्दवता और व्याव-सायिक तजुर्बे पर फ़िदा होकर कृष्णप्पा अपने-आपको नन्हें बच्चों की तरह सौंप देता। शौच-क्रिया से वह ख़ुद ही घिन्नाता था, पर ज्योति उसे बिलकुल मामूली तौर पर निभा लेती थी। गरम तौलिए से उसका बदन पोंछकर सारी देह पर पाउडर लगाती। इस्त्री किये हुए कपड़े पहनाती। बालों में कंघी करके कुर्सी पर बिठाती। बिस्तर पर सफ़ेद चादर बिछाकर कृष्णप्पा को बाहर ठेलकर ले जाती। इस सारी गदगी, बदबू, क्षुल्लक विवरों से बँधे रहने पर भी वह सदा शुभ्र-श्वेत दिखायी पड़ती। आज वह कृष्णप्पा को भेंट में देने के लिए चंपा की खुशबू वाला कोलोन लायी थी। उसने वह उसकी काँखों, गरदन और सीने पर लगाया। उसकी भीनी ख़ुशबू कृष्णप्पा को मस्त करने लगी। उस ख़ुशबू का मजा लेते हुए वह आँखें मूंदे बैठ गया।

"इसकी गंध से शायद आपके सिर में दर्द होने लगे।" उसने आशंका व्यक्त की। कृष्णप्पा बोला, "नहीं। जोयिस नामक मेरे एक अध्यापक थे

गाँव में। उनके घर के पिछवाड़े में चंपा का एक पेड़ था। बड़े सवेरे बंदर की तरह मैं उस पर चढ़ जाता। जोयिस के भगवान की पूजा के लिए चँगेरी भरकर फूल तोड़ दिया करता था।"

आँखें मूँदकर जो बातें याद आती रहीं, उन्हें ज्योति से इसलिए नहीं कहा कि वह उसकी समझ में नहीं आयेंगी। एकादशी के दिन जोयिस और उनकी पत्नी रुक्मिणियम्मा खाना नहीं खाते थे। उस दिन उनके उतरे हुए चेहरे देखने में कृष्णप्पा को मजा आता। रुक्मिणियम्मा उस दिन कृष्णप्पा से बात भी नहीं करती थीं। लेकिन दूसरे दिन सूर्योदय से पहले ही जोयिस जी के घर से जैसे ही झांझ-शंख की आवाज कानों में पड़ती, कृष्णप्पा चौकड़ी भरते हुए उनके पिछवाड़े खड़ा हो जाता—सिकते डोसों की मध को सूँघते हुए। तपे तवे पर डोसे के आटे की घोल 'चुँय' की आवाज करती। जब आवाज थम जाती तो इसका मतलब होता कि भगवान को डोसों का भोग चढ़ाया जा रहा है। कुछ देर बाद पिछवाड़े के चबूतरे पर पत्तल बिछाकर तीर की तरह आने वाले कृष्णप्पा की प्रतीक्षा रुक्मिणियम्मा मुसकराते हुए करने लगती। गरम-गरम डोसे परोसकर नारियल की चटनी डालती। कृष्णप्पा के ही घर से हर माह मिलने वाले नारियल से बनी खूब करारी चटनी। कृष्णप्पा भर-पेट डोसे खा लेता और पत्तल उठाकर उस जगह को गोबर से लीप देता। ताई चबूतरे पर खड़ी होकर पानी डालती। नीचे खड़ा कृष्णप्पा हाथ धो लेता और झट वहाँ से खिसकाने की ताक में रहता। तभी चोटी में तुलसी-दल पहने जोयिसजी गीला अँगोछा ओढ़कर जाड़े में काँपते हुए बाहर निकलते। पूरब की ओर मुँह कर आँखें मूँद कहते, "अठारह का पहाड़ा बोल रे, किट्टी।" पहाड़ा बोलते-बोलते कृष्णप्पा आहिस्ता से वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो जाता—उन्नीस का पहाड़ा बोलने के डर से।

ज्योति ने जब धूप में ह्वील-चेयर को रोक दिया तो महकती देह में सूर्य की किरणों ने प्रवेश करके गुदगुदाया। इसी बीच नागराज की कही बात याद आयी। यह केवल व्यक्तिगत नैतिकता का प्रश्न नहीं है। लेकिन उसका मन खोखला बनकर भूतकाल में भटकते हुए सुख पाने की चेष्टा करने लगा। महसूस हुआ कि जिस फंदे में वह उलझता जा रहा है, उससे बाहर

नहीं निकल पायेगा। अभिनंदन की तैयारी चल रही है—गौड़ा, भट्ट और वीरण्णा की मसलहत में। इस मसलहत को भी क्या ऐतिहासिक अनिवार्यता कहा जा सकता है? समूह की भलाई के नाम पर जब कृष्णप्पा खुद की भलाई कर लेगा, तब नागराज क्या कहेगा भला? इसे बेमतलब की बात कहेगा। अथवा कहेगा कि आप लोग जिस वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, वह इस समाज को अमुक दूरी तक प्रगति के पथ पर ले जायेगा—अधिक नहीं। और कहेगा कि अपनी भलाई की खातिर उसके व्यवहार में चौंकाने वाली कोई बात नहीं। सफ़ाई और गंदगी वाली बात को बेतुकी कहेगा। भू-शासन द्वारा भट्ट और गौड़ा ने लाभ उठाया है। भूमिहीन मज़दूरों के पक्ष में व्यवस्था ला पाना पार्लियामेंटरी मार्ग से संभव नहीं। जब वह उसके लिए कटिबद्ध होगा तो यही गौड़ा और भट्ट उसके विरोधी बन जायेंगे। जैसे इन लोगों ने पहले हरवाहों का पक्ष लेने पर विरोध किया था। बड़े-बड़े फ़्यूडल ज़मींदारों का ख़ात्मा हो जाने पर अब कैपिटलिस्ट ज़मींदार उसकी राजनीति के फलस्वरूप ही सिर उठाकर हिमायती बने हैं। चक्र को अभी घुमाना हो तो वास्तव में ख़ुद को खेतों में पसीना बहाने वाले लोगों के पक्ष में खड़ा होना पड़ेगा...मौजूदा क्राइसिस में नव-उपनिवेशवादी शक्तियाँ देश में जो फ़ासिज़्म का निर्माण कर रही हैं, उसका विरोध करना इन पूंजीवादी ज़मींदारों के वर्ग-हित के लिए शायद अनिवार्य होगा। अगर ऐसी बात है तो उन लोगों का भी उपयोग कर लेना होगा...इस दिशा में नागराज के सोचते रहने की भी संभावना है। कृष्णप्पा का सिर चकराने लगता है। ज्योति अपनी शादी के बारे में बता रही है। शादी में कैसे-कैसे कपड़े ख़रीदेगी, मंगल-सूत्र कैसा होगा, आदि के बारे में। कृष्णप्पा उसकी बातों का रस लेते हुए हाथ और पांव की मालिश करवाते बैठा रहता है।



अच्छा हुआ कि सीता के बैंक चले जाने पर गौरी देशपांडे आयी। वह साड़ी पहनकर, बालों का साधारण जूड़ा बांधकर, कांख में एक बैग लटकाकर आयी थी। नागेश द्वारा लाकर रखी कुर्सी पर बैठ गयी। ज्योति से 'हलो' कहकर परिचय कर लिया। कृष्णप्पा अवाक बनकर फटी आंखों से गौरी को ही देखता रहा। कल रात कुछ ही सफेद बाल दिखायी पड़े थे, लेकिन आज चेहरे पर ढलती उम्र के लक्षण भी दिखायी दे रहे थे। पहले जिन आंखों में चमक रहा करती थी, उनके गिर्द अब महीन झुर्रियां, छरहरी तंदुरुस्ती थी। लेकिन ज्योति की तुलना में यह प्रौढ़ा है। उसकी उम्र पचास है, अतः गौरी की उम्र चालीस के आसपास की होगी। उमंग के साथ उसकी चुस्त निगाह भले ही इर्द-गिर्द दौड़ रही हो, लेकिन निद्राहीन रातों ने, एकाकीपन के डर ने उसकी आंखों को किरकिराया है। वैवाहिक बंधन को तोड़ते समय उसके मुंह से अनाप-शनाप बातें निकली होंगी, उसके दिल ने कड़ी आलोचना की होगी। अपने पेशे में निपुणता पाने के लिए उसने परिश्रम के साथ जो दिन-रात विताये थे, उनमें शायद उसकी पिछले दिनों की शरारत रिस गयी है।

गौरी ने एक सिगरेट सुलगाकर कृष्णप्पा के होंठों पर लगा दिया और दूसरा जलाकर ज्योति से क्षमा-याचना करते हुए पूछा, "उनके सिगरेट पीने में आपको कोई एतराज तो नहीं है न?"

"है! लेकिन एक बार चल सकता है।" ज्योति कृष्णप्पा के तलुए को दोनों हाथों में लेकर मालिश करने लगी। एक दूसरी औरत के प्रवेश के कारण वह सिकुड़ी हुई लग रही थी।

"उन्हें बाग में बिठाने से ठीक रहेगा न?" गौरी ने पूछा।

"जल-चिकित्सा ठीक ही होती है। लेकिन यहाँ बाथ कहाँ है ?" ज्योति ने कहा।

"वेट ए मिनिट। मैं जहाँ ठहरी हूँ, उस गेस्ट-हाउस में बाथ है। मैंने भी इस थेरपि का ट्रेनिंग लिया है—फ़िलडेल्फ़िया में। हम दोनों यह काम आपस में बाँट सकती हैं न ?"

ज्योति चुप रही, क्योंकि गौरी के इस प्रश्न का जवाब देना उसके हक़ में नहीं था। अपनी योजना को कार्यरूप देने के लिए गौरी ने बाहर दालान में बैठे वीरण्णा से बात की। गेस्ट-हाउस में कृष्णप्पा को आराम भी मिल सकेगा। सवेरे ज्योति को कार में वहाँ लाने से काम बन जायेगा। सवेरे का काम वह कर लेगी तो बाक़ी काम गौरी ख़ुद देख लेगी। वीरण्णा, जिन्हें कृष्णप्पा के स्वास्थ्य-लाभ की बड़ी चिंता थी, इस बात को मान गये। सभी जानते थे कि कृष्णप्पा का सीता से दूर रहना जरूरी है। दूसरे ही दिन कृष्णप्पा के जाने की बात तय हो गयी।

कृष्णप्पा की माँ शारदम्मा को दोपहर के समय कोई लड़का गाँव से लिवा लाया। सिगरेट पीने वाली गौरी को देखकर शारदम्मा हक्की-बक्की होकर बेटे के सामने जा बैठी। चौधराइन की तरह साड़ी पहनकर बैठी सत्तर साल की बूढ़ी माँ से कृष्णप्पा ने तुनककर कहा, "यहाँ आने में इतने दिन क्यों लगाये ? अकेली वहाँ क्या करती रही ? यहाँ आकर रहते नहीं बनता था ?"

हँसते हुए बुढ़िया बोली, "मैं क्यों तेरे लिए रोटी सेंकते बैठूँ भला ? भाँवर पड़ी हुई बहू क्या नहीं है ?" उसके बात करने के लहजे में शरारत थी। फिर उस रात की बियारी के लिए बेटे की पसंद का कुँदरू का साग-साँबर बनाने के लिए रसोई में चली गयी।

"माँ, माँ !" कृष्णप्पा ने माँ को हाँक लगायी। वह रसोईघर का मुआइना करके गाँव से जो नींबू, कुँदरू, चकोतरा, कचनार आदि ले आयी थी, उन्हें सूप में सजाकर रख रही थी। "आयी, गला मत फाड़ !" कहकर कैरियों का अचार लिये, जो वह गाँव से लेती आयी थी, कमरे में दाख़िल हुई।

"कबूतर के ख़ून में मालिश करने से चंगा हो जायेगा, बेटा ! जोयिस-

जो बता रहे थे कि साँझ के समय सिर पर किसी परिंदे के उड़ने से ऐसा होता है। उन्होंने भी कबूतर के खून में मालिश करवाने को कहा है। हाँ, तुम्हारी भाग्यवान ताई इस दुनिया से उठ गयी, बेटा ! एक दिन के लिए भी बिस्तर नहीं पकड़ा और न ही कुछ हुआ था। खाना खाकर कपास की डलिया लिये एक दिन चौतरे पर बैठी थी। भगवान के लिए बत्तियाँ बट रही थी तो सहसा वहीं पाँव तानकर आँखें बंद कर लीं। अब बेचारे जोयिस-जी अकेले रह गये हैं। मरने से पहले उनकी घरवाली ने जो अचार डाला था, उसमें से तेरे लिए कटोरा भरकर भेजा है। तुझे भाता जो है न !"

शारदम्मा ने आँसू पोंछ लिये। कृष्णप्पा का सिसक-सिसककर रोने को मन हुआ। इधर जब से देह कमज़ोर हो गयी है, भावनाओं पर नियंत्रण ढीला पड़ गया है। बड़ी कठिनाई में अपने को रोक लिया। कहीं माँ भी अकेलेपन में आँख न मूँद लें, इस भय से बोला, "अब तुम यहाँ से नहीं *जाओगी। यहीं रहना होगा।"*

बनावटी गुस्से से शारदम्मा बोली, "यहाँ क्या धरा है जो मैं रहूँ ? इस घर के इर्द-गिर्द कहीं मुट्ठी-भर मिट्टी भी नहीं मिलती। दो दिन से ज्यादा मैं यहाँ नहीं रहूँगी, बेटा। तुम्हारी जो खेती है, उसे बचाये रखना होगा कि नहीं ? किसी हलवाहे को काश्त के लिए देंगे तो कल उन पर वह अपना ही हक जताने लगेगा। न जाने कैसा कानून तुम्हीं ने बनवाया है ! इसे भी भोगना पड़ेगा।"

'मुट्ठी-भर मिट्टी कहीं नहीं मिलती।' माँ की यह बात कृष्णप्पा को चुभ गयी। गांधी बाज़ार वाले घर में यहाँ से अधिक चहल-पहल थी। माँ उसे बहुत पसंद करती थी।

माँ-बेटे को आराम के साथ बैठकर अपने गाँव के बारे में गपशप करते देख गौरी को खुशी हुई। सहसा माँ को चौके की याद आयी। अनधुले बर्तन पड़े थे। माँ के भाव को ताड़कर गौरी खुद उठी। चौके में गयी। रसोईघर सँवार दिया।

"यह कैसी औरत है, बेटा ! तम्बाकू पीती है !" शारदम्मा बोली।

"क्या तुम तम्बाकू खाती नहीं ?" हँसते हुए कृष्णप्पा ने कहा।

"हाँ, भली भी तो लगती है।" वह फिर गाँव की बातें करने लगी।

लड़की रजोवती हो गयी ? ढोरों को कैसी बीमारी हुई ? इस बार लों की बीमारी कैसी रही ? किसके घर बच्चा हुआ ? किसकी शादी समधियों के बीच हाथापाई हुई ? वगैरह-वगैरह। बातों के बीच गरम स छोड़कर बोली, "बेचारे जोयिसजी तो कभी-कभी चूल्हा ही नहीं लाते, बेटा ! मैं ही जाकर दूध दुहकर दे आती हूँ। वही गरम करके पी ते हैं, बस।"

"ससुराल में सब लोग कैसे हैं ?"

"हाय ! वह भी एक लम्बी रामकहानी है।" माँ ने लम्बी पोथी खोल दी।

शाम को जब सीता काम से लौटी तो बच्ची को अपनी दादी की गोद में सोये देखकर उसे ख़ुशी हुई। लेकिन कमरे में गौरी को देखा तो कुढ़ते हुए सीधे रसोईघर में चली गयी।

कृष्णप्पा से गौरी बोली, "बेचारी ! उनकी भी ग़लती नहीं। सभी ने मिलकर उन्हें इनसिक्यूर बना दिया है।"

कृष्णप्पा मान गया। अपनी हिचक का इस प्रकार विवरण देने के कारण वह गौरी के प्रति कृतज्ञ हुआ। गौरी ख़ुद उठकर सीता से बातें करने के लिए रसोईघर में चली गयी।



"सलाम आलेकुम, गौड़ा साहब ! अब हमारे नेता की सेहत कैसी है ?" उनके दल का रहमान टोपी उतारकर नाटकीय अंदाज में करके कुर्सी खींचकर बग़ल में बैठ गया। मैसूर के अमीर ख़ान रहमान बड़े सलीके का आदमी था। लम्बा कोट पहनकर ख़ुशमि बड़े अदब के साथ किंतु बिना दीनता से बातें करने वाला रहमान

का बड़ा चहेता था। सारी मिल्कियत ठाठ-बाट की जिंदगी में फूंककर अब वह बीड़ी कार्मिक संघ का प्रेसिडेंट बना है। घर आये मेहमानों को जल-पान करवाकर उदारता का रिवाज आज भी निभाता आ रहा है। उसका रंग गोरा-चिट्टा था। कुछ मजाक में और कुछ मगरूरपन से जब वह पुरखों को फारस का बताकर अपनी तूती बजाने लगता तो उसे सुनते हुए कृष्णप्पा को बड़ा मजा आता।

कृष्णप्पा और रहमान की गहरी दोस्ती की एक पृष्ठभूमि है। तीन साल पहले चिकमगलूर में एक दंगा हुआ था। नमाज के वक्त मसजिद के सामने से बैंड-बाजे के साथ गणेश का जुलूस गुजर रहा था। उसे मुसलमानों ने पथराव के जरिए रोका। इसके प्रतिशोध में मुसलमानों की झोंपड़ियों में आग लगायी गयी। दूसरे क्षेत्रों में भी दंगा-फसाद शुरू हो गया और अफवाह फैली कि मसजिद में हथियार और बारूद छिपाकर रखे गये हैं। फलस्वरूप कई लोग मारे गये। एक मुस्लिम दम्पति को, जो अपने चार बच्चों के साथ कार में बाजार से गुजर रहे थे, पेट्रोल छिड़ककर भरे-बाजार जिंदा जला दिया गया। 'कुरान-शरीफ' की प्रतियां चौक में आग में झोंकी गयीं।

इस संदर्भ में जब सभी लीडर शांति, संयम और बंधुत्व की घिसी-पिटी बातों से हमदर्दी जता रहे थे, तब कृष्णप्पा चिकमगलूर मौके पर गया था। वहां से लौटकर मुसलमानों पर हिंदुओं ने जो जुल्म किया था, उसकी अपने वक्तव्य के जरिए खुलेआम निंदा की थी। उसके वक्तव्य से सभी लोग भौंचक्क रह गये थे। कृष्णप्पा को धमकी देने वाले पत्र हर कहीं से आने लगे। उसके दल वाले ही कृष्णप्पा की निंदा करने लगे कि मुसलमानों का समर्थन करना तो सत्ताधारी दल के पक्ष में जाता है। ऐसी हालत में इस तरह का वक्तव्य देकर हिंदुओं के पक्ष को भी खो देना बेवकूफी नहीं तो और क्या है? कई समझौतों के फलस्वरूप कृष्णप्पा नरम पड़ने लगा था। पर इस घटना से फिर भड़क उठा। वह पहले जैसा ही अक्खड़ बना रहा। देश में कृष्णप्पा ने ऐसी मिसाल स्थापित कर दी है कि जो जनता में अप्रिय बनने का हौसला नहीं रखता, वह राजनैतिक नेता भी नहीं बन सकता।

इस घटना से धर्मान्ध मुसलमानों द्वारा कृष्णप्पा हिंदुओं का चमचा, पियक्कड़ वग़ैरह कहा जाकर लांछित हुआ। उधर हिंदुओं की नजर में संदेहास्पद आदमी रहमान था। वह कृष्णप्पा को अपना सगा भाई मानने लगा।

आज कृष्णप्पा से मिलने आने वाले रहमान ने अपनी टोपी को जाँघों पर रखकर विना किसी उतार-चढ़ाव के बड़ी नरमी के साथ राजनैतिक स्थिति का व्यौरा प्रस्तुत किया था। उसके अनुसार देश के सारे मुसलमान, जो प्रधानमंत्री के पक्ष में हैं, दरअसल मुख्यमंत्री के विरोधी दल के साथ हैं। कुछ ही दिनों के भीतर देश-भर में सत्तारूढ़ दल में फूट पड़ने वाली है। तव असेम्वली में प्रधानमंत्री के पक्षधर लोगों की संख्या अधिक होगी। मौजूदा मुख्यमंत्री हमारी मदद के विना कुर्सी पर टिके नहीं रह पायेंगे। अगर हमारा दल मदद भी करेगा तो प्रधानमंत्री के गुट से भी इनके सदस्यों की संख्या सिर्फ़ पांच ज्यादा होगी। इसलिए सत्ता को पकड़े रखने के लिए काफ़ी पैसा वहाना पड़ेगा।

"तव हमारे लिए कैसी कार्रवाई करना उचित रहेगा? साहव को चीफ़ वनाने के लिए वीरण्णा काफ़ी पैसा वहा रहा है। लूट का पैसा है, वहाने दीजिये। आप उधर से आँखें मींचे रहिये।" आगे अँग्रेजी में वोला, "मुल्क का सवाल अहम है। प्रधानमंत्री तानाशाही के रास्ते पर हैं। उस दल वाले भी हमारी मदद की तलव कर रहे हैं। भले ही हमारा दल छोटा हो, लेकिन लोग जानते हैं कि गौड़ाजी की ऑल इंडिया इमेज है। वे सोशलिज्म की वात करते हैं, इसलिए हमारे दल के कुछ लोगों की रुझान उनकी ओर है। लेकिन मौजूदा मुख्यमंत्री वहुत कमजोर हो चुके हैं। उनकी मदद करने से गौड़ाजी के नायकत्व में मंत्रिमंडल के लिए सपोर्ट पाना मुमकिन हो सकेगा। अगले चुनाव तक के लिए वे भी राजी हो जायेंगे। वैसे वे पाजी हैं। प्रधानमंत्री के दल में शामिल होने के लिए वे भी छिपे-छिपे कोशिश कर रहे हैं। लेकिन उनके प्रतिद्वन्द्वी ऐसा चाहते नहीं। अव हमारे सामने अहम सवाल यह है कि पांच लोगों को अपनी ओर कैसे पकड़े रखें? इस पृष्ठभूमि में गौड़ाजी का अभिनंदन-समारोह महत्व का है। मुख्यमंत्री उस दिन वोलेंगे। उसके वाद असेम्वली वैठेगी। उस दिन सारा फ़ैसला हो

जाना चाहिए। किसी उलझन में न पड़कर गौडा साहब आराम करें। आपके नायकत्व में मन्त्रिमंडल बनाने की बात सुनकर युवा लोगों में लगभग दस लोगों की, जो प्रधानमंत्री के दल में शामिल हुए हैं, इधर आने की संभावना है। इसीलिए लगता है कि यह पाजी मुख्यमंत्री राज्यपाल के पास जाकर यह कहने के लिए तैयार था कि अगर हमारा दल सरकार रचायेगा तो वह मदद करने के लिए तैयार है। हस्ताक्षर-संग्रह का काम तो कभी का शुरू है। हर कोई सत्ताधारी पक्ष के फूट जाने की ही ताक में है...।"

"दरअसल मुझे यह सब बड़ा घिनौना लगता है, रहमान !"

"घिन करने से कैसे चलेगा, साहब !" अंग्रेज़ी से रहमान कन्नड़ पर उतर आया। जब भी अपनी बात में वह ममत्वरापन लाना चाहता तो रहमान अंग्रेज़ी से कन्नड़ पर उतर आया करता था।

"फिर ऐसी हालत में किस बात की सिद्धि कर लेना संभव है ?"

"अगले चुनाव तक प्रधानमंत्री के गुट के हाथ में सत्ता न जाने पाये, हमारा यही उद्देश्य होगा। अगर सत्ता चली भी गयी तो समझ लीजिये कि सौ साल तक सत्ता उनके हाथों में अटल रहेगी। इसके बदले आप नायक बनेंगे तो प्रधानमंत्री का गुट प्रबल नहीं बन पायेगा। गौडा साहब, मेरा कहा मानिये। आप सत्ता में आते ही सबसे पहले लैंड-सीलिंग कीजिये। दूसरी बात, भूमिहीन मजदूरों के लिए मिनिमम मजदूरी निर्धारित कर दीजिये। यह बात हमारा पाजी भी जानता है। हमारी मदद पाकर खुद की कुर्सी टिकाये रखने की कोशिश में दिखायी देता है। हमारे वीरण्णा इन सबका बंदोबस्त कर देंगे। फिलहाल आप निश्चित होकर सेहत सुधार लीजिये। बाक़ी का सारा काम हम पर छोड़ दीजिये। अब सत्ता को हथियाने में ही होशियारी है। मैंने नागराज को मनाया है। हम सबकी ख्वाहिश है कि आप बड़े बनकर ही रहें।"

"ठीक है, रहमान ! लेकिन मन्त्रिमंडल में तीस-पैंतीस घूसों को शामिल करना पड़ेगा।"

"इंतज़ार कीजिये, साहब। दल बदलने दें। पाजी के गुट वालों को नाक रगड़वाने लायक बना देंगे। वे यही चाहते हैं कि उनका प्रतिस्पर्धी

इस घटना से धर्मान्ध मुसलमानों द्वारा कृष्णप्पा हिंदुओं का चमचा, पियक्कड़ वग़ैरह कहा जाकर लांछित हुआ। उधर हिंदुओं की नज़र में संदेहास्पद आदमी रहमान था। वह कृष्णप्पा को अपना सगा भाई मानने लगा।

आज कृष्णप्पा से मिलने आने वाले रहमान ने अपनी टोपी को जाँघों पर रखकर विना किसी उतार-चढ़ाव के बड़ी नरमी के साथ राजनैतिक स्थिति का व्यौरा प्रस्तुत किया था। उसके अनुसार देश के सारे मुसल-मान, जो प्रधानमंत्री के पक्ष में हैं, दरअसल मुख्यमंत्री के विरोधी दल के साथ हैं। कुछ ही दिनों के भीतर देश-भर में सत्तारूढ़ दल में फूट पड़ने वाली है। तब असेम्वली में प्रधानमंत्री के पक्षधर लोगों की संख्या अधिक होगी। मौजूदा मुख्यमंत्री हमारी मदद के विना कुर्सी पर टिके नहीं रह पायेंगे। अगर हमारा दल मदद भी करेगा तो प्रधानमंत्री के गुट से भी इनके सदस्यों की संख्या सिर्फ़ पाँच ज्यादा होगी। इसलिए सत्ता को पकड़े रखने के लिए काफ़ी पैसा वहाना पड़ेगा।

"तव हमारे लिए कैसी कारंवाई करना उचित रहेगा? साहव को चीफ़ वनाने के लिए वीरण्णा काफ़ी पैसा वहा रहा है। लूट का पैसा है, वहाने दीजिये। आप उधर से आँखें मींचे रहिये।" आगे अँग्रेज़ी में वोला, "मुल्क का सवाल अहम है। प्रधानमंत्री तानाशाही के रास्ते पर हैं। उस दल वाले भी हमारी मदद की तलव कर रहे हैं। भले ही हमारा दल छोटा हो, लेकिन लोग जानते हैं कि गौड़ाजी की ऑल इंडिया इमेज है। वे सोश-लिज्म की वात करते हैं, इसलिए हमारे दल के कुछ लोगों का रुझान उनकी ओर है। लेकिन मौजूदा मुख्यमंत्री वहुत कमजोर हो चुके हैं। उनकी मदद करने से गौड़ाजी के नायकत्व में मंत्रिमंडल के लिए सपोर्ट पाना मुमकिन हो सकेगा। अगले चुनाव तक के लिए वे भी राजी हो जायेंगे। वैसे वे पाजी हैं। प्रधानमंत्री के दल में शामिल होने के लिए वे भी छिपे-छिपे कोशिश कर रहे हैं। लेकिन उनके प्रतिद्वन्द्वी ऐसा चाहते नहीं। अब हमारे सामने अहम सवाल यह है कि पाँच लोगों को अपनी ओर कैसे पकड़े रखें? इस पृष्ठभूमि में गौड़ाजी का अभिनंदन-समारोह महत्व का है। मुख्यमंत्री उस दिन वोलेंगे। उसके वाद असेम्वली वैठेगी। उस दिन सारा फ़ैसला हो

था, वह चेक के जरिए भेज दिया। अपने लिए सिर्फ़ दस हज़ार ही रखे हैं।"

रसोईघर से आती हुई कृष्णप्पा की माँ को देखकर महेश्वरय्या उठ खड़े हुए।

"कैसे हैं?" शारदम्मा फ़र्श पर बैठ गयी। रुक्मिणियम्मा की मौत का ब्योरा बताया।

"अब घोड़े की सगति छोड़ दी। धारवाड के निकट एक झोंपड़ी और कुछ बाग हैं। वहीं जाकर रहूँगा।"

ज्योति का ड्राफ्ट कृष्णप्पा के सामने वाली मेज पर रखा। वे बहुत थके हुए-से लगते थे। कृष्णप्पा जानता था कि अपनी उदारता की प्रशंसा सुनना उन्हें भाता नहीं।

"कृष्णप्पा, सुना है कि गाँव में तुम्हारा अभिनंदन होने वाला है। उसके पहले दिन वहाँ मेरी हाज़िरी रहेगी। चलेगा न?"

महेश्वरय्या उठ खड़े हुए। "चलो नागेश, चलेंगे।" किसी और के बोलने से पहले ही वह वहाँ से निकल पड़े।

सहसा सीता उठी। जल्दी से दरवाज़े तक जाकर महेश्वरय्या को हाँक लगायी। आँसू पोंछते हुए बोली, "मेरे लिए पैसे का महत्व नहीं। मेरा सुहाग बना रहे, बस। मुझे यह पैसा नहीं चाहिए। वापिस ले लीजिये।"

उसकी आवाज की प्रामाणिकता को ताड़कर महेश्वरय्या बोले, "तुम्हारा पति बहुत बड़ा आदमी है, माँ! उन्हें आगे बढ़ने दो। मेरा पैसा और उसका पैसा अलग नहीं। रख लो।"

"बड़े आदमी की पत्नी बनने का कष्ट आप क्या जानें! क्या जानते नहीं कि सभी लोग मुझे कितना ओछा समझते हैं?"

सीता ने सुबक-सुबककर रोना शुरू किया तो दरवाज़े के पास आकर महेश्वरय्या ने कहा, "तुम्हारे कष्ट का अहसास मुझे है। जानने के लिए कुछ समय दो, बस।"

नागेश ऑटो-रिक्शा ले आया तो धारवाड़ की बस पकड़ने के लिए वह उसमें चले गये।

मुख्यमंत्री न बनने पाये। अच्छा, तो अब मैं चलूं, साहब !"

प्यार से कृष्णप्पा का हाथ दबाकर रहमान चला गया।



महेश्वरय्या का चेहरा शांत था, लेकिन नागेश में उत्तेजना भरी हुई थी। क्या उसको ही बताना होगा, या खुद महेश्वरय्या ही बतायेंगे? इस पसोपेश में वह खड़ा रहा। महेश्वरय्या ने रसोईघर से सीतम्मा को बुलाया। "क्या बात है?" कहते हुए वह बाहर आयी। उसके हाथ में दस हज़ार का ड्राफ़्ट थमाते हुए महेश्वरय्या बोले, "घर बनवाने के लिए।"

खड़ी हुई सीता कुर्सी में धँस गयी। वह उधेड़बुन में पड़ गयी।

"घोड़े से पचास हज़ार मिला। इतनी बड़ी रक़म इस ढलती उम्र में कैसे ख़र्च कर पाऊंगा? जब कभी मैं बेंगलूर आऊँ तो ठहरने के लिए कोई घर तो चाहिए न! नागेश ने बताया था कि तुम्हारा एक प्लाट है।" फिर वह कृष्णप्पा की ओर मुड़ा, "नागेश ने बताया कि वीरण्णा पैसे वापिस नहीं लेंगे। इसलिए उनके होस्टल के नाम यह पंद्रह हज़ार लिखा है।" उसने दूसरा ड्राफ़्ट टेबिल पर रखा।

"नागेश, सिगरेट पीने का मन कर रहा है। एक दे दो भैया !"

नागेश ने अपना विल्स सिगरेट निकालकर दिया। सिगरेट जलाकर महेश्वरय्या ने पूछा, "सुना है कि गौरी आयी है। कहां है वह?" फिर पीछे मुड़कर गौरी को देखा। प्रणाम किया। गौरी को देखकर उनकी आंखें चमक उठीं।

नागेश अपने को रोक नहीं सका, "देखिये सर, कितना ही मना करने पर भी माने नहीं। मुझे ढाई हज़ार दिया है। आपकी नर्स को शादी के तोहफ़े के रूप में ढाई हज़ार का ड्राफ़्ट दिया है। दस हज़ार का जो कर्ज़ा

था, वह चेक के जरिए भेज दिया। अपने लिए सिर्फ दस हज़ार ही रखे हैं।"

रसोईघर से आती हुई कृष्णप्पा की माँ को देखकर महेश्वरय्या उठ खड़े हुए।

"कैसे हैं?" शारदम्मा फ़र्श पर बैठ गयी। रुक्मिणियम्मा की मौत का ब्यौरा बताया।

"अब घोड़े की संगति छोड़ दो। धारवाड के निकट एक झोंपड़ी और कुछ बाग हैं। वहीं जाकर रहूँगा।"

ज्योति का ड्राफ़्ट कृष्णप्पा के सामने वाली मेज पर रखा। वे बहुत थके हुए-से लगते थे। कृष्णप्पा जानता था कि अपनी उदारता की प्रशंसा सुनना उन्हें भाता नहीं।

"कृष्णप्पा, सुना है कि गाँव में तुम्हारा अभिनंदन होने वाला है। उसके पहले दिन वहाँ मेरी हाज़िरी रहेगी। चलेगा न?"

महेश्वरय्या उठ खड़े हुए। "चलो नागेश, चलेंगे।" किसी और के बोलने से पहले ही वह वहाँ से निकल पड़े।

सहसा सीता उठी। जल्दी से दरवाज़े तक जाकर महेश्वरय्या को हाँक लगायी। आँसू पोंछते हुए बोली, "मेरे लिए पैसे का महत्व नहीं। मेरा सुहाग बना रहे, बस। मुझे यह पैसा नहीं चाहिए। वापिस ले लीजिये।"

उसकी आवाज़ की प्रामाणिकता को ताड़कर महेश्वरय्या बोले, "तुम्हारा पति बहुत बड़ा आदमी है, माँ! उन्हें आगे बढ़ने दो। मेरा पैसा और उसका पैसा अलग नहीं। रख लो।"

"बड़े आदमी की पत्नी बनने का कष्ट आप क्या जानें! क्या जानती नहीं कि सभी लोग मुझे कितना ओछा समझते हैं?"

सीता ने सुबक-सुबककर रोना शुरू किया तो दरवाज़े के पास आकर महेश्वरय्या ने कहा, "तुम्हारे कष्ट का अहसास मुझे है। जानने के लिए कुछ समय दो, बस।"

नागेश ऑटो-रिक्शा ले आया तो धारवाड़ की बस पकड़ने के लिए वह उसमें चले गये।



सीता दरवाजे पर खड़ी-खड़ी महेश्वरय्या की दिशा को ही ताक रही थी
तो गौरी ने कृष्णप्पा से अँग्रेज़ी में कहा, "महेश्वरय्या ने जो किया वह
अनफ़ेअर है। अपनी जेनरासिटी के ज़रिए उन्होंने आपकी पत्नी को कम
किया है।"

उधेड़बुन में जवाब देते न बना तो कृष्णप्पा कुछ पल के लिए चुप
बैठा रहा। फिर बोला, "इसे पता न पाकर वह तड़प उठेगी। पर कभी-
कभी मुझे आशंका भी होती है कि वह तड़प सकती है! प्रसूति करवाने
जब माँ आयी थी, तब मैंने उसे एक साड़ी दिलवाने के लिए कहा था।
उतना भी नहीं कर पायी। बहुत कंजूस औरत है—पैसों के मामले में भी
और स्पिरिट में भी।"

इतनी सहजता से अपनी पत्नी की निंदा एक परायी औरत के सामने
करने का खुद कृष्णप्पा को आश्चर्य हुआ था, पर उससे बढ़कर गौरी को
हुआ। कुछ तुनककर वह बोली, "आप जिस औरत को इतना घटिया सम
झते हैं, फिर क्यों उसके साथ हैं? अपने दंभ को बढ़ाने के लिए ही आप
आपने अपने से कुछ घटिया औरत ढूँढ़कर शादी की है!"

कृष्णप्पा को गौरी की बात पर शॉक लगा। मुँह की खाकर कृष्ण
बैठा रहा। सीता भी बिना आँख उठाये सीधे रसोईघर में चली ग
थाली लगाने में अपनी सास की मदद करने लगी। बच्ची को जागते
उसे सुलाने के लिए गौरी उठ खड़ी हुई।



शहर से लगभग दस मील की दूरी पर वीरण्णा के फ़ार्म में यह गेस्ट-हाउस था। गेस्ट-हाउस के पीछे जो शिला-खंड थे, उन्ही से सँवरा लैंडस्केपिक बाग था। जरा आगे बढ़ें तो नींबू, संतरा, सपोटा, अनार, अमरूद, जामुन, शहतूत, कटहल, आम आदि हर जाति के फलों के पेड़ थे। गेस्ट-हाउस के सामने अंगूर की बगिया थी। खपरैल की छत वाले अत्याधुनिक ढंग से सजे घर की दोनों बग़ल में रंग-बिरंगी सबी नीची बबू की झाड़ियाँ थीं। फलों की बगिया की बग़ल में स्विमिंग-पूल था। घुड़सवारी के शौकीन लोगों के लिए वीरण्णा ने एक खूबसूरत सुडौल सफ़ेद घोड़ा पाल रखा था। घर के सामने ही कँटीले घेरे के अंदर दो हरिण घास चर रहे थे। इस घेरे के पार दो बड़े नीडों में मोरों का एक झुंड रहता था। इस प्रकार देहाती और शहरी सौन्दर्य-सुख देने वाले गेस्ट-हाउस को पहली ही बार नहीं देखा था। लेकिन अबकी बार इस गेस्ट-हाउस के निर्मल वातावरण से वह खिल उठा।

कृष्णप्पा के साथ उसकी माँ, गौरी देशपांडे और नागेश ही आये थे। छुट्टियों में ही सीता का यहाँ आ पाना संभव था। इसलिए तुमकूर से उसकी विधवा माँ को बुलाकर उसके साथ रहने की व्यवस्था की गयी थी। सभी जानते थे कि कृष्णप्पा की मानसिक शांति के लिए यह आवश्यक है। वीरण्णा ने कहा था कि स्कूल के बाद हर दूसरे दिन बच्ची को वह लिवा लायेगा।

बेशक कृष्णप्पा तनहाई के लिए यहाँ आया था। पुराने वाले घर में आये दिन मिलने आने वाले लोगों का ताँता लगा रहता था। यहाँ [illegible] अभाव में उकताहट होने लगी। इस मरणासन्न हालत में भी मिलने के

लिए आने वाले लोगों के झुंड को देखकर शायद उसके दिल को तसल्ली मिला करती थी। उसके लिए यहाँ अवकाश बहुत कम था। कृष्णप्पा को अपनी ढलती उम्र में भी, जबकि स्वास्थ्य और शक्ति दोनों जवाब देने लगे थे, वीरण्णा के ज़रिए इज्जत, मेहरबानी, सुविधा-सुश्रूषा—सब-कुछ उपलब्ध होने लगे थे। फलस्वरूप उसमें जिजीविषा की कामना अभी प्रबल थी। इस बात को याद कर कृष्णप्पा को बड़ा खेद हुआ। ऐसी सुख-सुविधा, जन-बल, अपनी परवरिश करने वाली भ्रष्टाचारी व्यवस्था और अपनी जिजीविषा—इनके बीच परस्पर गहरा संबंध है। इसे देखकर कृष्णप्पा चौंक गया। मुख्यमंत्री-पद के लिए इकार करते हुए वह शायद इस कामना को पक्का करने लगा था। उस पद पर खुद को लाने के लिए बाक़ी सब लोग दाँवपेंच खेल रहे थे। इसमें अपनी प्रमुख भूमिका होने का मजा लेते हुए प्राणशक्ति और भी चुस्त होने की उतावली करने लगी थी। नागराज को उसने असेम्बली की सदस्यता से जो त्यागपत्र लिखकर दिया था, वह उसकी जेब में ही था। महेश्वरय्या की भविष्यवाणी भी हमेशा याद आती। इसी व्यवस्था के सहारे मुख्यमंत्री बनने की लालसा क्या वास्तविक है? अथवा इन सबका त्याग करके भ्रष्टाचार के स्रोतों से दूर रहकर मौत की देहलीज़ पर भी जनहित तथा अपने आभ्यंतर हित की सिद्धि का आकर्षण वास्तविक है? वैरागी से जवाब पाने लायक़ प्रश्न न पूछ पाने से जो हार हुई थी, वह घटना याद आती है। आज फिर उसी पसोपेश में वह फँसा है।

शायद कोई प्रश्न होता ही नहीं। सारी दुविधा मिथ्या है। जब हम अपने-आप से पूछने लगते हैं कि ऐसे करूँ कि वैसे करूँ, तब लगता है कि हमारी गहरी वांछा दोनों दिशाओं में समान शक्ति के साथ हिलोरें लेने लगी है। दोनों में से जब कोई एक दिशा हमारी प्राण-शक्ति को आकर्षित करने लगती है तो पसोपेश सच्चा नहीं होता। वह एक लालच होती है, चुलबुलाहट होती है। अपने-आप को सुंदर दिखायी देने का व्यामोह होता है।

वीरण्णा जिस माहौल को हासिल करा रहे हैं, वह अगर वास्तव में अप्रिय होता तो कृष्णप्पा हरगिज़ उसकी पकड़ में नहीं आता। इस बात को याद कर गरम साँस निकलती है। फिर टीस भी होने लगती है। नागराज

उसका त्यागपत्र डाक में डालेगा नहीं, इस भरोसे पर उसने वह त्यागपत्र नहीं लिखा था। उसी के फ़ैसले पर छोड़ दिया था। वह ढोंग नहीं था। इस विचार-क्रम के साथ कृष्णप्पा के मन में फिर से खलबली मच गयी।



इस फार्म में शिफ्ट करने के बाद कृष्णप्पा की माँ की धूमधाम का क्या कहना ! बड़े सम्भ्रम के साथ साड़ी का आँचल खोंसकर वह टहलने लगती है। कृष्णप्पा को लगता है कि अगर वह ऐसी किसी जगह का मालिक होता तो माँ निहाल हो उठती। इस बात पर उसे हँसी आयी। खुद माँ ही बड़ी हांडी में दूध दुहती। कहीं परिंदों का साया न पड़े या किसी की नज़र न लगे, इसलिए हांड़ी को आँचल में छिपाकर कृष्णप्पा के सामने आकर भेदिये के अंदाज़ में बोली, "यह क्या बला है, बेटा !"

कृष्णप्पा ने प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा।

"अभी तो दो-तीन हांड़ी दूध थन में ही रह गया है, बेटा ! हाथ सुन्न पड़ने लगे। इसलिए नौकर दुहने लगा है।"

फेनिल दूध कृष्णप्पा को एक बार दिखाकर फिर ढाँक लिया।

"गरम करके दूँगी। पी लेना। हमारे घर में कावेरी थी न। याद है—तू उसके थन में ही मुँह लगाकर पिया करता था? बहुत सीधी थी बेचारी। कभी लात तक नहीं मारी। उसी की नस्ल की गऊ मैं आज भी दुहती हूँ। एक सेर से ज्यादा दूध नहीं दुहती। उसमें से आधा जोयिसजी को देती हूँ। भगवान के मस्तक पर ब्राह्मण देवता उँडेलें, इस विचार से...।"

नहाने के बाद पैंट और अचकन पहनकर गौरी बाहर बाल सुखाने के लिए बैठी रहती है। माँ का ध्यान उस ओर जाता है। गौरी को सिगरेट पीते देखकर माँ मुँह टेढ़ा करती है। कृष्णप्पा मुसकराते हुए मज़ाक करते

है, "तम्बाकू ?"

"ख़त्म हो गया है। नागेश के हाथ मँगवाना।" ख़ुश होकर वह गौरी को बुलाती है, "वड़े वनाये हैं। नाश्ते के लिए आओ।"

पिछली रात सदाशिव नगर वाले घर में दाल पीसकर घोल तैयार किया था। उसमें से कुछ वहू के लिए छोड़ आयी थी। वाक़ी का आज वड़े सवेरे ही याद से कार में साथ लायी थी। उसे केले के पत्तल में पकाया था। नारियल की चटनी के साथ अपने वेटे, गौरी और नागेश को परोसती है। वेटे की पसंद का—रुक्मिणियम्मा ने मरने से पहले जो डालकर रखा था—कैरियों का अचार और उसका रस पत्तल पर परोसती हुई वेटे से पूछती है, "किस पेड़ की कैरी है, भला ? है कुछ याद ?"

कृष्णप्पा अपने परिचित सभी पेड़ों को याद कर लेता है। हुलियूर की नदी के पास एक पेड़ है; जोयिसजी के घर के सिरे वाली पहाड़ी पर एक है; ढलान के कगार पर, जहाँ घेरे में काफ़ी ढलान थी और ढोर चराने वाले दिनों में उसे काफ़ी दहला देती थी, वहाँ पर भी एक पेड़ है। इन तीनों पेड़ों की कैरियाँ अचार के लिए मशहूर थीं। सालों वीतने पर भी अचार ख़राव नहीं होता था। दवाने पर पिचकता नहीं। चवाने से 'कट्क्' करता है। तीनों का ज़ायका अलग। दो-दो वार चवाकर याद करने की चेष्टा करने लगा। माँ उकड़ूँ वैठकर, उतावले मन से शरारत के साथ—अचार की कैरियों की तरह ही झुर्रियों से भरे चेहरे से—कृष्णप्पा का मुँह ताकने लगी। कृष्णप्पा ने अंदाज़ से वताया, "नदी के पास वाला है न ?"

ख़ुशी से माँ का चेहरा खिल उठा।

दोपहर के समय आकर वीरण्णा ने पूछा, "क्या वात है, वुला भेजा था ?"

वीरण्णा को कृष्णप्पा ने वैठने के लिए कहा। होंठों में सिगरेट अटकाकर उसे सुलगाने के लिए कहा। उसके मन को उद्वेग से भरा देखकर वीरण्णा धीरज के साथ इंतज़ार करने लगा।

"वीरण्णा, तुमसे एक वात पूछनी है। कृपया वुरा मत मानना।"

'पूछिये, गौड़ाजी।"

"मुझे मुख्यमंत्री वनाने के लिए तुम्हें क्या दाम मिल रहा है ?"

"गौडाजी, जानता हूँ कि आप बड़े वफादार हैं। चालाक भी हैं। राजनीति में यह सब चलता ही है।"

"हाँ, जानता हूँ। लेकिन यह मेरी राजनीति नहीं।"

"उसे भी जानता हूँ, गौडाजी। लेकिन देश की हालत बड़ी मंजीदा है। तानाशाह को रोकने का कोई दूसरा मार्ग ही नहीं। इस खतरे के टल जाने के बाद चाहे अपनी राजनीति चला लीजिये।"

"क्या मैं समझूं कि इसमें तुम्हारा कोई स्वार्थ नहीं ?"

वीरण्णा आहत हुआ।

"गौडाजी, मैंने आपमें एक बात देखी है। आपका स्वभाव बड़ा शक्की है। आपके बारे में शिकायत सुनने में भी आयी है कि आप पास-पड़ोस वालों को बढ़ने न देने वाले वट-वृक्ष की तरह हैं। मैं जानता हूँ कि हमसाया लोगों में आप जैसी योग्यता नहीं।"

"यह मेरे सवाल का जवाब नहीं हुआ।"

"मैं एक व्यापारी हूँ, गौडाजी ! क्या आप मुझे अपना वृत्ति-धर्म छोड़ने के लिए कहते हैं ?"

"लेकिन तुम्हारा मददगार बनने के लिए लोगों ने मुझे नहीं चुना।"

"हे भगवान ! आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं। क्या मैं एक इन्सान नहीं हूँ ? क्या मुझे भी अभिमान नहीं ? आपको उस कुर्सी पर, साल-भर के लिए ही सही, देखने की इच्छा है मुझे। मेरे लिए आप कुछ मत कीजिये। कसम खाकर कहता हूँ, किसी काम के लिए भी मैं आपके पास नहीं आऊँगा। अब जो पाजी बैठा है, *क्या वह मेरा मनचाहा काम* करके नहीं दे रहा है ?"

सोचा था कि उसकी बात से वीरण्णा बेहद दुखी होकर चला जायेगा। लेकिन अंदाजा गलत निकला। रस-भरे लहजे में वीरण्णा ने बातें की थीं। कृष्णप्पा भी *मँजा हुआ राजनीतिज्ञ* था। इसलिए वीरण्णा के ढोंगपन की थाह लेने की चाह में कहा, "जब तक मैं चीफ बना रहूँगा, तुम्हें ठेका नहीं मिलेगा।"

"नहीं चाहिए।" निरायास वीरण्णा ने कहा। "क्या मैं जानता नहीं हूँ कि आप देंगे नहीं ? मैंने काफी पैसा कमाया है, गौडा साहब ! अब आप

जैसे एक महान व्यक्ति को उस कुर्सी पर बिठाने में ही मेरी तृप्ति है। इसे समझने की कोशिश किये बिना अगर आप ओछापन देखेंगे तो मुझे दुख होगा।"

"देखिये, मेरी सेहत अच्छी नहीं। कभी-कभी आशंका होने लगती है कि कहीं मैं औरों की सहानुभूति पाने के लिए इस बीमारी का उपयोग तो नहीं कर रहा हूँ।"

"छोड़िये साहब ! मेरा कहना सिर्फ़ इतना ही है कि आपको उस पाजी के साथ सत्ता को बाँट लेना पड़ेगा। इसलिए आपके लिए मन की सारी योजनाएँ अभी कारगर करना संभव नहीं हो सकेगा। लेकिन दो-एक अमल में ला भी सकते हैं। आप तो मँजे हुए राजनीतिज्ञ हैं। बैठे-बैठे जो भी बन सके, करते जाइये। अगले चुनाव तक और भी अच्छी तरह जड़ जमा लीजिये।"

"मुझे अगुआ बनाने से उधर से दस-एक लोग इधर आयेंगे—यह बात क्या सच है?"

"वरना वह पाजी क्यों आपका नाम सुझाने जाता? अब भी वह भीतर-ही-भीतर प्रधानमंत्री के पक्ष में मिलने की कोशिश कर रहा है।"

कृष्णप्पा ने सिगरेट बुझाया। वीरण्णा उठकर बोले, "विश्वास आ गया न ? अब मैं चलता हूँ। किसी चीज की ज़रूरत हो तो कहला भेजियें।"

इस वार्तालाप का कृष्णप्पा ने किसी से ज़िक्र नहीं किया। वह सामान्यतया चुस्त रहने लगा। दूसरे दिन ज्योति आयी। गौरी की मदद से कृष्णप्पा को गरम पानी से भरे हौज में उतारा ! पानी में बाईं भुजा और बाईं टाँग निरायास हिलते देखकर कृष्णप्पा को ख़ुशी हुई। जल-चिकित्सा में गौरी प्रवीण थी। ज्योति को भेज दिया। इसके बाद ज्योति केवल सवेरे की शौच में मदद करने मात्र के लिए ही आती रही।

अपने सामने कच्छा और बनियान उतारते हुए कृष्णप्पा को हिचकते देख गौरी हँस पड़ी। कृष्णप्पा शरमा गया। दूसरे दिन बनियान उतारने के लिए राज़ी हुआ।

गौरी के हाथ जब उसकी टाँगों पर खेलने लगे तो वह सिर्फ़ चिकित्सक के स्पर्श-जैसा नहीं लगा। गौरी में भी उस स्पर्श की चाह को पहचानकर

कृष्णप्पा रोमांचित हो उठा। बदन में गरमी दौड़ी। बीमारी के बाद पहली बार ऐसा अनुभव पाकर वह उलझन में पड़ गया।

कृष्णप्पा को पानी के हौज से निकालकर गौरी व्हील-चेयर पर बिठाती और बाहर सहन में ले जाती। कृष्णप्पा उसे पैंट में देखकर अधिक निहाल होता था, इसलिए अब गौरी पैंट और टॉप पहनकर रूमाल से बाल बाँधे रखती। कृष्णप्पा को सहन में बिठाकर उसे व्यायाम करने में मदद करती। उसकी पसन्द के उपन्यास पढ़कर सुनाती। अपने चरवाहे जीवन की घटनाएँ कृष्णप्पा मनोरंजक शैली में सुनाता। जब वह पीपल के पेड़ के नीचे बैठा रहता था, तब सामने वाले अमरूद के पेड़ पर मेहमान बनकर जो परिंदे आते, उनका वर्णन करता। सवेरे के काम से अगर छुट्टी मिलती तो माँ भी वहाँ आकर बैठती। एक बार जब गौरी किसी काम से उठकर चली गयी, तब माँ ने पूछा, "तूने इसी से शादी क्यों नहीं की?"

इस प्रश्न पर कृष्णप्पा चौंक गया। माँ भूली नहीं थी। फिर मायूस होकर कहा, "हमारे घराने में कितने ही लोगों ने दो-दो बीवियाँ रखी हैं? इसमें क्या ग़लती है?"

"माँ, गौरी के सामने कहीं ऐसी बातें न कर बैठना। समझी!" कृष्णप्पा ने डाँटते हुए कहा।

"मैं क्यों कहूँगी, बेटा? क्या तू बड़ा नहीं है? भीतर-ही-भीतर नाहक घुटने के बदले, चाहती हूँ, इससे शादी कर ले।"

माँ की सीधी-सी बात उसके दिल को लग गयी। लेकिन उसके बिना गौरी की अलग ज़िंदगी है—इसका अहसास होने के कारण कृष्णप्पा ने उस दिशा में अपने विचारों को बहने नहीं दिया।

उँगलियाँ अब रबर की गेंद दबा सकती हैं। धीरे-धीरे पाँव उठाना भी संभव होने लगा है। गौरी कह रही थी, एक माह के अन्दर क्रचों पर चल पाना भी संभव हो सकेगा। उसकी छुट्टी सिर्फ़ एक माह के लिए ही थी। कृष्णप्पा को इस बात का ख़ौफ़ था कि छुट्टी ख़त्म होते ही वह चली जायेगी। इसलिए गौरी भी अपने जाने की बात नहीं छेड़ती थी।

सवेरा सुन्दर और आरामदेह होता है। रात में नक्षत्र टिमटिमा कर साफ़ नीले आकाश की शोभा बढ़ाते हैं। कभी-कभी जब गौरी और कृष्णप्पा

वातों में डूबे रहते हैं तो मोर अपने पंख फैलाकर 'तकथैई' नाच हैं मानो उनमें आवेश भरा हो। माँ तो सिर्फ़ गाय, दूध, फल की करती है। दिन में एक वार तो जरूर कुढ़ती है कि कचौरी के लिए हल नहीं। वह अपनी कुढ़न से कृष्णप्पा के मुँह में लार टपकाती है। ड़ी संजीदगी के साथ नागेश टेबिल के सामने वैठकर चुस्त भाषा में ष्णप्पा की जीवनी लिखता है। वह जो लिखता है, उसे कृष्णप्पा को पढ़-कर सुनाता है। उसे सुनकर कृष्णप्पा लजा जाता है।

कृष्णप्पा अपने दिल की वात गौरी को दो-एक वाक्यों में कहना चाहता है। वह उसकी रिहर्सल करता है, 'गौरी, मैं तुमसे प्यार करता था। लेकिन वारंगल थाने में जो नरक-यातना सहनी पड़ी, उससे कहने का साहस नहीं हो पाया था।'

इतना कहने से मानो कुछ भी नहीं कहा—इस सोच से वह चुप रह जाता है। गौरी अधेड़ उम्र की प्रौढ़ महिला है। फिर भी कृष्णप्पा को लगता है मानो अपनी सारी पंखुड़ियों को वन्द किये कली हो। धीरे-धीरे दोनों ने अपने पिछले दिनों की वातें करनी छोड़ दीं।

एक दिन वंबू की झाड़ी के नीचे कृष्णप्पा चुप्पी साधे वैठा था। गौरी भी कुछ पढ़ रही थी। माँ रसोईघर में 'पत्रडं' वना रही थी। सहसा कृष्णप्पा ने गाना शुरू किया। गौरी विस्मय से कृष्णप्पा का गाना सुनती रही। कृष्णप्पा के चेहरे पर, जहाँ कहीं-कहीं पके हुए क्राप और दाढ़ी थ शांति पाकर गौरी को खुशी हुई। उसने पास ही की लम्वी हरी घास अं नन्हें फूलों को तोड़ा। कृष्णप्पा का गाना रुकने के वाद वह खुद हल आवाज़ में गाने लगी। कृष्णप्पा की पसन्द का कवीर का भजन।

एक दिन कृष्णप्पा की व्हील-चेयर को उसने स्विमिंग-पूल के रोका और अपने सारे कपड़े उतारकर विकनी में खड़ी हो गयी। इस सहजता से उसे कपड़े उतारते देखकर कृष्णप्पा भौंचक्क रह गया। पर खड़ी होकर, दोनों वाँहें फैलाकर, अपने सुडौल शरीर को त कमान की तरह पल-भर टिकाकर उसने पानी में छलांग मारी। ग़ायव होकर, फिर काले वाल, पीठ, पतली कमर, भारी नितम क़दमों के रूप में धीरे-धीरे हरकत करती नज़र आयी। कृष्णप्पा

वदन कल्पना में ही उसकी देह का संचालन करने लगा। कृष्णप्पा बचपन में बड़ा अच्छा तैराक था। अब गौरी की खुली बाहुओं के साथ बाँह बनकर, उसके हरकत करते पाँवों में पाँव बनकर सुधि खोये रहा। पल-भर के लिए भूल ही गया कि उसके बदन का आधा हिस्सा जड़ीभूत है। पानी से निकल-कर गौरी उसके पास आयी। उसकी चिकनी कसी हुई त्वचा पर पानी की बूँदें चमक रही थीं। बालों से पानी टपक रहा था। गौरी के बदन की ठंडक को अपनी ही समझकर कृष्णप्पा सिहर उठा। वह दहल गया कि कहीं गौरी की चेतनापूर्ण देह उसकी जड़ीभूत देह से छू न जाये। डाह में उसने आँखें बन्द कर लीं। गौरी के गीले हाथ जब उसके गालों और गरदन को सहलाने लगे तो चौंककर कृष्णप्पा ने आँखें खोलीं। "तुम्हारा क्या फिर बाथ में बैठने को जी चाहता है?" गौरी ने पूछा। 'आप' से 'तुम' पर उतर आयी गौरी के लिए कृष्णप्पा को रोमांच हुआ। चिकनी में व्हील-चेयर ठेलते हुए उसके कमरे में ले गयी। कमरे के किवाड़ बन्द कर लिये। हौज़ में गरम पानी भरकर कृष्णप्पा के कपड़े उतारे। आज तक वो कृष्णप्पा की अपरिचित थी, पर अब वह गहरी आवाज़ में बोली, "सभी उतारूँगी।" उसका कच्छा उतारने को हाथ बढ़ाया। घबराकर कृष्णप्पा ने रोकने की चेष्टा की, लेकिन मजबूर होकर चुप रहना पड़ा। अब गौरी को अपनी रोग-ग्रस्त देह से घिन होते नहीं पाया तो उसके प्रति कृतज्ञ हुआ। गौरी की आँखें आवेग से भरी हुई लगती थीं मानो उन्हें कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। बड़ी कुशलता से गौरी की देह ने उसकी देह को आग़ोश में लेकर पानी में उतार दिया। पानी में उसकी देह हलकी बन गयी थी, उसे भी गौरी की हलकी देह ने लपेट लिया। कृष्णप्पा की दृष्टि धुँधली हो गयी।

बड़ी देर तक गौरी कृष्णप्पा से लिपटी रही। फिर उठकर एक मुलायम सफ़ेद तौलिया हौज़ के पास बिछाया। कृष्णप्पा को उठाकर उस पर सुलाया और ख़ुद भी उसके साथ लिपटकर सो गयी। अपने होंठ, स्तन, जाँघों को कृष्णप्पा की देह में सटाते हुए दबाने लगी।

"मुझसे अब बनता नहीं, गौरी!" गहरी पर पराई आवाज़ में कृष्णप्पा हैरानी से बोला।

गौरी मूकता का अथाह सागर बनी थी। वह अँखुआने वाले बीज की

अपने गरम सद्य अँधेरे में छिपाये रखने वाली माटी की तरह थी। उसकी उँगलियाँ कृष्णप्पा की सारी देह पर खेलती रहीं। सोतों को सहलाकर जगाने की तरह हर जोड़ को टटोलती रही। उसकी पलकें ऐसे मुँदी थीं मानो तन्मय समाधि में हों। कृष्णप्पा के पेट, जाँघ, बगल, भुजा, गालों पर मुलायम दबाव डालते हुए अपनी गरम चूती हुई योनि को रगड़ती रही। उसके होंठ कृष्णप्पा के सारे बदन को काटते हुए ऊपर से नीचे उतरे। उसकी साँसें कृष्णप्पा की देह के जोड़ों में यों गुदगुदाते हुए मँडराती रहीं मानो उसको अहसास कराना चाहती थीं कि उसकी भी आँखें हैं, कान हैं, नाक है, पीठ है, पेट है, शिश्न है। सारी देह जैसे-जैसे गरमाती गयी, अँकुआती गयी, टप्पा खाने लगी तो वह उद्रेकित होकर बाँह पसारे चित सो गया। गौरी ऊपर चढ़ आयी। उसकी धीमी लय आलाप जैसी थी। कृष्णप्पा की आँखों में आँसू उमड़कर बहने लगे। 'माँ' की कराह निकली। धीरे से उस पर अपनी देह टिकाकर गौरी सो गयी। कृष्णप्पा गहरी नींद सोया। जब आँखें खुलीं तो वह हैरत में पड़ गया कि कहीं यह सपना तो नहीं था। फिर अपने को तौलिए पर सोये हुए और गौरी को बगल में नंगे सिगरेट पीते हुए देखा। गौरी का चेहरा देखा—यह कहीं उसकी दया की चिकित्सा तो नहीं ?

माँ बगल वाले कमरे में सोती थी। शाम को जब गौरी और कृष्णप्पा अपने हाथों से हरिणों को चारा खिला रहे थे, तब वह आयी। बताया कि वह गौरी के कमरे में सोयेगी और गौरी उसके कमरे में चली आये। जवाब की प्रतीक्षा किये बिना वह चली गयी। मुसकराते हुए कृष्णप्पा ने गौरी की ओर देखा।

रात में गौरी कृष्णप्पा की बगल में सोयी। उसकी देह की गरमी में कृष्णप्पा गहरी नींद सोया। सवेरे जब ज्योति आयी तो लगा कि कृष्णप्पा में हुए परिवर्तन को वह ताड़ गयी थी।



सभी की अपेक्षा के अनुरूप देश-भर में सत्ताधारी दल में फूट पड़ गयी। रहमान और नागराज कृष्णप्पा से मिलने आये। नागराज परेशान नज़र आता था। उसने कहा कि प्रधानमंत्री की तानाशाही के विरुद्ध राज्य में मुख्यमंत्री को सीमित समर्थन देना उचित होगा। विभाजित दल ने उनके नायकत्व में ही मंत्रिमंडल की पुनर्रचना की राज्यपाल से अपील की थी। रहमान ने पूरे एक घंटे तक मिलान करके दिखाया कि इस ओर पाँच सदस्य ज़्यादा हैं। प्रधानमंत्री के गुट वाले चन्द्रय्या ने वक्तव्य दिया था कि मुख्यमंत्री के गुट वाले कई लोग उनकी ओर आ गये हैं। एक पन्ने पर वक्तव्य और दूसरे पन्ने पर खंडन छापकर अखबारों ने सनसनी मचायी थी।

बेरुखी से नागराज एक वक्तव्य तैयार करके कृष्णप्पा के हस्ताक्षर के लिए ले आया था। उसे पढ़ा। उसमें कहा गया था कि उनका दल मौजूदा मंत्रिमंडल का समर्थन करता है। कृष्णप्पा ने हस्ताक्षर किये।

रहमान बोला, "मुख्यमंत्री के दल में पाँच लोग उधर शामिल हो जायेंगे। तब उनके गुट को हमारे लोगों का समर्थन पाने के लिए आपको सी० एम० बनाना पड़ेगा। इन्तज़ार करेंगे।"

"डिस्गस्टिंग !"

नागराज ने चारमीनार का सिगरेट सुलगाया, "देश में पहले ही अराजकता है। ख़बर है कि रायचूर में लोग हैज़े के शिकार हो रहे हैं। आये दिन डकैतियाँ, औरतों पर अत्याचार की ख़बरें आ रही हैं। और हम लोग सरकार बनाने के ख़्वाब देख रहे हैं।"

रहमान की इस राजनैतिक चर्चा में रुचि नहीं थी। कृष्णप्पा के मस्ति-

मंडल में ट्रांसपोर्ट-मंत्री बनने के मंसूबे शायद उसने पहले ही बांध रखे थे।

जिस दिन कृष्णप्पा का वक्तव्य छपा, उसके दूसरे दिन 'चिंगारी' में एक और कहानी छपी थी कि कृष्णप्पा पूरी तरह भ्रष्टाचार का गुलाम बन गया है। लिखा था कि वीरण्णा के फ़ार्म में वह विलासी जीवन में डूबा है। इधर देश में आग भड़क रही है, उधर उसकी काम-वासना की तृप्ति के लिए वीरण्णा ने दिल्ली से एक तवायफ़ को बुलवाया है। खबर में उसे फटकारा गया था कि जो पहले कभी क्रांतिकारी था, उसने आज अपनी देह की शुश्रूषा के लिए सारे मूल्यों का तर्पण कर दिया है। इस पत्रिका को, जो रजिस्ट्री डाक द्वारा आयी थी, गौरी की नज़र बचाकर कृष्णप्पा ने नागेश को जला डालने के लिए कहा।

गौरी की नंगी देह से लिपटकर कृष्णप्पा ने अपने मन की खलबली भूलने की चेष्टा की। लाख चेष्टा करने पर लगा कि अब वह वापिस लौट नहीं सकेगा। साथ-ही-साथ मौजूदा राजनीति में भी डूब न सकेगा। आये दिन छपने वाले दल-बदल के वक्तव्य और उसके दूसरे दिन खंडन की बात पढ़कर चिढ़ होती थी।

इसी में व्यस्त रहने के कारण वीरण्णा फ़ार्म की ओर आते नहीं थे। कृष्णप्पा के दल के लोग मात्र बार-बार आते रहते। नागराज को छोड़कर बाक़ी सभी लोगों ने अब पहले से भी ज्यादा कृष्णप्पा की तारीफ़ करना शुरू कर दिया था। कृष्णप्पा को यक़ीन हो गया कि भविष्य में एक भी सच्चा मित्र नहीं रहेगा। मानो अब उसकी निजी ज़िन्दगी का अन्त हो गया। इस सोच में गहरी सांस छोड़कर तथा अपनी देह को गौरी की उँगलियों के हवाले करके वह सो जाता।

पर गौरी इन दिनों अधिकाधिक खुश नज़र आती थी। वह फ़ार्म में चुपचाप कहीं भी टहलती रहे, कृष्णप्पा का मन उसी में अटका रहता। उसका विश्वास बढ़ता जा रहा था कि गौरी अपनी गहरी परतों के केन्द्र में कहीं उसे पाक-साफ़ बनाये रखकर परवरिश कर रही है। उसके प्राणों की चिन्तामणि की जो रक्षा करने वाली है, उसे दिल्ली जाना ही पड़ेगा। उसे रोज़ी कमानी पड़ेगी। अपने को उसकी जितनी ज़रूरत है, शायद उतनी उसे अपनी नहीं होगी। कृष्णप्पा इन भावनाओं से तड़प उठता है

कि उसकी देह की हालत दरके मटके की भाँति हो गयी है। सोचता है कि इस गंदी राजनीति से निवृत्त होकर उसने जो त्यागपत्र लिख रखा है, उसे पोस्ट कर अपने गाँव चला जाये। मन में इच्छा होती है कि गाँव की निरन्तरता जताने वाली दुपहरी में पीपल के नीचे बैठकर, नदी के कलकल निनाद के साथ, मवेशियों के गले की घंटियों की आवाज सुनते हुए, सामने वाले अमरूद के पेड़ पर आ बसने वाले पक्षियों को देखता रहे। इच्छा होती है कि लम्बी पूँछ वाला, सुनहरे रंग के पंखों वाला एक अनजाना परिन्दा—जो कभी इसी भाँति इन्तज़ार करते समय दिखायी पड़ा था, फिर से दिखायी पड़े। बीती बातें लौटेंगी नहीं—इस अहसास से मन डाँवा-डोल होने लगता है।

सहसा एक दिन हाई स्कूल का सहपाठी और [illegible] हनुमनायक आ धमका। बच्चों की गप्पें सुनते बैठा था कृष्णप्पा। भीतर आते हुए हनुमनायक को तपाक से पचायती सुरों में आड़े हाथों लिया, "क्यों नहीं आया रे, सुअर, इतने दिनों से?"

हनुमनायक ने बैग को, जो वह गाँव से लेता आया था, [illegible] पर धरकर कृष्णप्पा के सामने बढ़ाते हुए आत्मीय आवाज़ में [illegible] कर कहा, "इस बैग को कबूल करें। आपके इस घर के [illegible] तैयार किया है।" वह [illegible] खड़ा हो गया।

"अब आगे अपना नेता तो नहीं चल सकेगा। बिचारा!" [illegible] दिखाया।

"माँ समझा रह रहा है।" वह [illegible]।

[illegible] कृष्णप्पा [illegible]। [illegible] कृष्णप्पा को इस तरह हँसते हुए नहीं देखा था। हनुमनायक [illegible] कृष्णप्पा को [illegible]।

भी पान पर चूना लगाने लगी।

हनुमनायक को देखकर कृष्णप्पा को खुशी हुई थी। कृष्णप्पा जब तैरते हुए डूबने लगा था तो हनुमनायक ने जान की बाजी लगाकर उसे बचाया था। यह हनुमनायक, जो कभी-कभार आया करता था, कृष्णप्पा को फिर से लड़कपन की याद दिलाता। भटकैया प्राणी। माँ-बाप, भाई-बहन कोई नहीं। पढ़ाई छोड़कर रामलीला मंडली में भर्ती हुआ था। हँसोड़ का पार्ट करते हुए भड़वा भटकता रहता था। उसके लिए न भूत है, न भविष्य। जहाँ डेरा पड़ा, वही हाट-शहर अमुक-तमुक के घर की परवाह नहीं। सीधा जाकर कह देता, "गौड़ा साहब, लो, मैं आ गया।" और वहाँ से बेरोक-टोक रसोईघर में चला जाता है। औरतों के साथ ठिठोली करते हुए उन्हें हँसाता है। गाँव-भर का चक्कर काटते रहने के कारण औरतों की साजिश में हाथ बँटाता कि किस जवान लड़की का किस जवान लड़के के साथ गठ-बन्धन किया जा सकता है। वर-वधू की खोजबीन में खुद घर वालों से पहले ही उनकी नब्ज़ देखकर इधर से उधर और उधर से इधर भागदौड़ करने लगता है। रसोईघर से गुसलखाना या सुपारी पकाने वाले चूल्हे के पास जाता है। वहाँ कुत्ते-बिल्ली की बोलियाँ बोलकर या चढ़ाई चढ़ने वाली लारी की आवाज़ करके बच्चों को हँसाता है। एक बार उसे अपने जैसा ही कोई हँसोड़ मिला था। उससे एक पाद के लिए एक नारियल की शर्त लगी थी और लगातार उठते-बैठते हुए पाद-पाद कर पूरे सौ नारियल ऐंठ लिये थे। जो हँसोड़ नारियल हार चुका था, उसे बाद में पता चला कि पादने की आवाज़ पीछे से नहीं बल्कि मुँह से आती रही।

शाम के समय उसे थोड़ी-सी ताड़ी या शराब मिल जाये तो क्या बात है! अघा जायेगा। जब भोजन करके सभी लोग बैठते हैं तो उनके सामने नक़ल उतारता है कि गाँव में कौन कैसा बोलता है। उसके आने से औरत-बच्चों में मानो बहार आ जाती है। जन्म-मरण, शादी-ब्याह जैसे अवसरों पर हर कहीं हनुमनायक की हाज़िरी रहती है।

"यही हनुमनायक है। इसका नाम वही है, जो यह पार्ट करता है।" कृष्णप्पा ने गौरी देशपांडे से उसका परिचय कराया। हनुमनायक को जब पता चला कि वहाँ सभी आत्मीय लोग ही हैं तो उसने फिर अपनी दुम



हनुमनायक के आगमन से जो खुशी हुई थी, वह बहुत समय तक टिकी नहीं। दूसरे ही दिन अख़बारों में ऐसी सनसनीखेज ख़बर आयी कि सहसा देश की राजनीति में कई परिवर्तन हुए और कृष्णप्पा दुविधा में फंस गया।

यह ख़बर पढ़ने से पहले कृष्णप्पा सवेरे की गुनगुनी धूप सेंकते हुए बंबू की झाड़ी के पास बैठा था। ज्योति उस दिन छुट्टी पर थी। वह आराम के साथ गौरी से अपनी शादी की चर्चा करते बैठी थी। बच्ची के लिए हनुमनायक एक लट्टू छीलते हुए बयालीस के आन्दोलन की एक घटना याद दिला रहा था। सारे बच्चे स्कूल के दरवाज़े पर सोये थे कि तभी हिटलरी मूंछों वाले हेडमास्टर साहब अपनी ही बेटी का—जो वहाँ की छात्रा थी—पोंहचा पकड़कर सभी को कुचलते हुए अन्दर ले गये थे। उसकी नक़ल उतारी। उस समय उस लड़की का लहँगा उठाकर उसने देखा था। उसे आँख फाड़कर बताते देख कृष्णप्पा हँसने लगा था। तभी नागेश अख़बार ले आया।

चन्द्रय्या के वक्तव्य के अनुसार एक बहुत ही हसीन लड़की शाम समय बैंक का काम करके सिनेमा देखकर लौट रही थी। पुलिस की प गाड़ी उसके पास आकर रुक गयी। थानेदार ने गाड़ी से उतरकर अके जाती हुई लड़की से शक के तहत पूछताछ की और वैन में बिठाकर गया। थाने में उन्होंने जब उसे बन्द कर रखा था, तब दो नौजवान उ रक्षा का बहाना बनाकर आये और मुचलका लिखकर दिया। अहस लड़की को वे कार में बिठाकर ले गये। रोती हुई लड़की को धीरज हुए एक होटल में ले गये। इससे लड़की भयभीत होकर घर पहुँचा

प्रार्थना करने लगी। उन लड़कों ने अपना परिचय देकर अपना इरादा सुनाया और उसके साथ जबरदस्ती की। उस लड़की का बाप रिटायर्ड अफ़सर था। ग़रीब होने पर भी जब लड़की उनके प्रलोभन से तनिक भी नहीं ललचायी तो उन जवान लड़कों ने कमरे का दरवाज़ा बन्द करके बलात्कार किया। फिर उसे कार में बिठाकर उसकी गली के नुक्कड़ के पास उतारकर चले गये।

माँ-बाप ने इतनी देर से घर लौटी लड़की को डाँटकर पूछा, लेकिन उसने मुँह नहीं खोला। दिन निकलने पर देखा तो 'फालिडाल' (कीटनाशक दवा) पीकर वह मर गयी थी। मरने से पहले उसने एक चिट्ठी लिख रखी थी। उसके साथ जो कुछ गुज़रा था, संक्षेप में वह सभी चिट्ठी में लिखा हुआ था। साथ ही यह भी कि उसकी वजह से उसकी बहनों की शादी न रुके, इसलिए वह मर रही है।

रपट का सारांश इतना ही था। लेकिन इस चिट्ठी ने कई सवालों को खड़ा किया। लड़की के पिता का बयान था कि पुलिस वालों ने इस चिट्ठी को हथिया लिया है। पुलिस ने स्पष्टीकरण दिया कि ऐसी कोई चिट्ठी थी ही नहीं। पुलिस का कहना था कि उस लड़की का थाने पर आना, दो नौजवानों द्वारा मुचलका लिखकर छुड़वा ले जाना वग़ैरा की कोई सूचना नहीं है। चन्द्रय्या ने, जोकि प्रधानमंत्री के दल का नेता था, अपने वक्तव्य में कहा था कि लड़की के पिता से जो कुछ समाचार मिला है उसके अनुसार उन दो नौजवानों में एक मुख्यमंत्री का बेटा था और दूसरा वीरण्णा का बेटा। यह बात आत्महत्या करने वाली लड़की ललिता ने चिट्ठी में लिखी थी। लेकिन मुख्यमंत्री ने उस चिट्ठी को ही उड़वा दिया है। चन्द्रय्या ने यह भी कहा था कि उन जवानों द्वारा जो भूरे रंग की फिएट कार का इस्तेमाल किया गया था, वह कृष्णप्पा गौड़ा के नाम से रजिस्टर हुई है।

"नागेश! रहमान और नागराज को बुला ला।"

कृष्णप्पा का हलक़ सूख रहा था। गौरी ने आकर बेचैनी का कारण पूछा। कृष्णप्पा ने उसके हाथ में अख़बार थमा दिया। गौरी के पढ़ने के बाद उसे कहा, "इसे पढ़ने से पहले मुझे मुख्यमंत्री बनने की चाह थी

मेरी ढलती जिजीविषा को उससे उत्तेजना मिल रही थी। अब लग रहा है कि मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

"चन्द्रय्या का बयान झूठ भी तो हो सकता है!"

गौरी ने कृष्णप्पा की तसल्ली के लिए ऐसा कहा था, वरना उसके मुख्यमंत्री बनने के संबंध में कभी कोई रुचि नहीं दिखायी थी।

कृष्णप्पा ने ऐसे सिर हिलाया मानो अब उसे किसी प्रकार की तसल्ली की जरूरत नहीं।

असहाय अवस्था में वारंगल थाने के दरवाज़े पर आर्तता से लात मार-मारकर वह थक गया था। वह बात अब याद आयी।

गौरी घास के तिनके को चबाते खड़ी रही। बदले हुए माहौल में हनुमनायक हक्का-बक्का-सा खड़ा था। जो लट्टू छील रहा था, उसे ज्यों-का-त्यों पकड़े हुए—घुग्घू की तरह।



रहमान और नागराज आ गये थे। सिर्फ़ रहमान बोल रहा था। नागराज सिगरेट के कश खींचता हुआ सिर पर हाथ रखे बैठा था। रहमान मुख्यमंत्री और वीरण्णा से मिलकर आया था। दोनों ने कहा था कि उनके बेटे मासूम हैं। फिर भी रहमान को शक था। उन लड़कों ने यह हरकत की है या नहीं, यह बात मौजूदा हालत में इर्रिलेवेंट है। अहम बात यह है कि चन्द्रय्या किस दाँवपेंच के लिए उसका इस्तेमाल कर रहा है! राज्य-भर में वह लोगों का आह्वान कर रहा है कि मौजूदा सरकार को बरख़ास्त करने के लिए वे राज्यपाल पर दबाव डालें। प्रधानमंत्री के कठपुतले राज्यपाल के लिए, मौजूदा सरकार को बरख़ास्त कर, असेम्बली सस्पेंड करके, उस दल के शासकों को इस दल में शामिल होने के लिए

जरूरी हालात का निर्माण करने का अच्छा चाम था। ख़बर है कि इनी बहाने पांच हरामज़ादे चन्द्रय्या के पक्ष में शामिल होने का वक्तव्य देने आ रहे हैं। मुख्यमन्त्री हर हालत में कुर्सी से चिपके रहने की ताक में था। पाजी को अब पता चल रहा है कि काम कितना कठिन है! रहमान ने व्यवस्था की है कि कृष्णप्पा गौडा को मुख्यमन्त्री बनाने की मांग पर राज्य-भर में युवकों के जुलूस निकलें। वीरण्णा भी भागदौड़ कर रहे हैं। अब वे बँगलूर में नहीं हैं। चन्द्रय्या के पक्ष में छह मुस्लिम सदस्य हैं जिनके मुखिया के लिए ट्रान्सपोर्ट-मन्त्री की मांग है। उनके यहां जाकर रहमान ने कहा है, 'हमारे मन्त्रिमण्डल में तुम ही वह महकमा ले लो। मुझे नहीं चाहिए।' गौडाजी के प्रति उनकी भी श्रद्धा है। अपने पांच सदस्यों के साथ अगर वह आयेगा तो इधर मेजारिटी होगी। हम अपने पाजी पर दबाव डाल रहे हैं कि कल तक अपना इस्तीफ़ा देकर आपका नाम सुझा दे, वगैरह-वगैरह।

नागराज ने कहा, "कॉलिज के लड़के हड़ताल कर रहे हैं—इस मुख्य-मन्त्री को बरख़ास्त करने की मांग पर। लॉ एंड ऑर्डर की स्थिति और भी बिगड़ने की उम्मीद है। पुलिस-थानों पर लड़के पथराव करने लगे हैं। फ़ायरिंग की भी सम्भावना है।"

कृष्णप्पा ने नागराज से पूछा, "वीरण्णा और मुख्यमन्त्री के वैरी ने पुलिस की मदद से अगर वाक़ई ऐसा किया हो तो...?"

"वह इर्रिलेवेंट, गौड़ा साहब! मान लो कि किया है। चन्द्रय्या का बेटा भी कर सकता है। सत्तारूढ़ लोगों की रक्षा के लिए ही तो यह पुलिस होती है। इसमें क्या आश्चर्य है?"

कृष्णप्पा की त्योरियां चढ़ गयीं, "तुम सिनिक की तरह बोलने लगे हो, नागराज! हम जिस चीज़ में हाथ डालें, क्या वह सभी पॉलिटिक्स ही हो? डिसगस्टिंग!"

"नो! मैं आब्जेक्टिव रियलिटी की बात कर रहा हूँ। पुलिस होती ही है व्यवस्था की रक्षा के लिए। रेप, डकैती, काला-बाज़ारी—सभी इस व्यवस्था के नैसर्गिक अंग हैं।"

"तब हम क्यों सत्ता में आयें?"

"मैंने पहले ही बताया है कि मुझे उसमें सन्देह है। व्यवस्था को पूरी तरह फ़ासिस्ट होने से रोक पाना सम्भव है—इस बात का मुझे भी भ्रम है। इसीलिए आपका समर्थन कर रहा हूँ।"

"क्या तुम मानते हो कि अब जो पुलिस-एट्रोसिटीज़ हैं, उन्हें कम किया जा सकता है?"

"थोड़ा-बहुत हो सकता है। लेकिन उसका क्लास-कैरेक्टर बदल पाना आपके लिए संभव नहीं हो सकेगा।"

कृष्णप्पा को किरकिरी हुई।

ऊबकर रहमान अख़बार पढ़ने लगा। लहर में आकर नागराज ने दूसरा सिगरेट जलाया। फिर कहा, "जब तक वर्ग का सम्पूर्ण नाश नहीं होता, तब तक स्टेट रहेगा ही। स्टेट को पुलिस की ज़रूरत होती है...।"

"मतलब हुआ कि जिस लड़की ने आत्महत्या की है—उससे दुखी होना, उसका विरोध करना...।"

कृष्णप्पा इतना भावाविष्ट हुआ कि वह वाक्य भी पूरा नहीं कर पाया। इसे देखकर नागराज ने नरमी से कहा, "येस! करना होगा। लेकिन पार्लियामेंटरी राजनीति की रियालिटी यह है कि ऐसा करना चन्द्रय्या के हाथ मजबूत करना होगा। बस! व्यवस्था खून भी करती है और उसके विरोध में आन्दोलन भी करती है।" भावावेश में नागराज बोलता जा रहा था, "इन सारी बातों के सच होने पर भी आप दलितों के बारे में जो फ़ील करते हैं और आपकी धारणा है कि अभी कुछ किया जा सकता है—इसीलिए मैं आपके साथ हूँ...।"

"मेरे लिए प्यार अहम है। उसे खोकर क्रान्ति कैसे की जा सकेगी? और करने से लाभ भी क्या?"

सहसा अपनी इन बातों से खुद कृष्णप्पा ही चौंक गया। उसकी देह इस आशंका से कांपने लगी कि कहीं उसकी बात शिष्टाचार जैसी तो नहीं! शायद उसके उद्वेग का असर नागराज पर भी हुआ था। वह संजीदा होकर मूक बना रहा।



उस दिन कृष्णप्पा यों निश्चल बैठा था मानो उसकी सारी देह में लकवे का अटैक हुआ हो। उसे देखकर गौरी परेशान हो गयी। उसे कुर्सी से उतारकर नीचे जमीन पर बिठाया। इन दिनों वह रेंगने लगा था। गौरी ने उसे रेंगने के लिए कहा। वह जानती थी कि इस कसरत से उसकी देह चुस्त बनेगी। बच्चे की तरह कृष्णप्पा दालान में रेंगता रहा। बाएँ हाथ में हनुमनायक की दी हुई छड़ी लेकर गेंद को ठेलते हुए उसने खुद ही एक नया खेल ईजाद कर लिया। गौरी भी कुछ गम्भीर सोच में डूबी हुई-सी लगी। अनुरोध करने पर उसने बताया :

"आपकी पत्नी से बातें करने का मन हो रहा है।"

"क्या बातें करोगी ?"

"क्या तुम्हें लगता नहीं कि हम उससे फ़रेब कर रहे हैं ?"

गौरी सोचती हुई खड़ी रही।

"मुझे तुम चाहिए। लेकिन मैं काम करती हूँ दिल्ली में। बहुत कन्फ्यूजन हो रहा है।"

"गौरी, तुम जितना दोगी उतना ही पा लूँगा। उससे अधिक मागूँगा नहीं। मैं किसी भी क्षण मर सकता हूँ।"

"सीता को तुम्हारी जरूरत है न ?"

"है ! उसने मेरी सुश्रूषा भी की है। उसकी नजर में बहुत अच्छी हो की है।"

"लेकिन लगता है कि तुम एक-दूसरे को बरबाद कर रहे हो।"

गौरी ने उसके ही मुँह की बात छीन ली थी।

"हाँ लगता तो है कि मैं ही उसे अधिक बरबाद कर रहा हूँ।"

कृष्णप्पा को महसूस हुआ कि गौरी के पास होने की वजह से वह यह कह सका। नरम पड़ते हुए गौरी का चेहरा देखने लगा। वह कृष्णप्पा बारे में सोचती हुई नजर नहीं आयी। कठोर सत्य को जानने के अंदाज पूछा, "तब क्या करना ठीक रहेगा?"

"देखो गौरी, अब मैं बच्चों की तरह रेंगना सीख रहा हूँ। फिर लाठी के सहारे, लँगड़ाते हुए चलना सीखूंगा। सब-कुछ पहले की तरह शुरू करना है। महेश्वरय्या मुझे जहाँ से उठाकर ले गये थे न—उस पेड़ के नीचे फिर जा बैठूंगा।"

दुखी होने के बावजूद गौरी हँस पड़ी।

"क्या तुम अपने-आप को आजाद समझते हो? आज के राजनैतिक खेल में तुम सिर्फ़ एक मोहरा बन गये हो।" गौरी उसकी बाईं टाँग दबाती हुई बोली।

लेकिन कृष्णप्पा का अंदाजा था कि गौरी शायद सीता से मिलने की बात सोच रही होगी। वह बोला, "बिना हिंसा के हम कुछ भी नहीं कर सकते, गौरी!"

"हाँ!" गौरी ने विषाद के साथ बात जारी रखी, "छुट्टियाँ ख़त्म होते ही क्या मैं चली जाऊँ? जब-जब तुम चाहोगे, आती रहूँगी...।" वह ऐसे बोली मानो कृष्णप्पा की जरूरतें जानती हो। खुलासा करने की याचना उसकी बात से झलक रही थी। इसे कृष्णप्पा ताड़ गया।

"गौरी, लगता है कि हम साबुत बचेंगे ही नहीं।" बड़ी यातना के स कृष्णप्पा ने अपनी मौजूदा हालत बयान करने की चेष्टा की। सीने पर रखकर दिल की ओर इशारा करके बोला, "यहाँ भी मुझसे इंटिग्रिटी स नहीं हो पा रही है।"

फिर आगे की ओर बाँह फैलाकर राजनैतिक दुनिया की ओर इ करके बोला, "और यहाँ भी इंटिग्रिटी संभव नहीं हो पा रही।"

यह कहकर लम्बी साँस छोड़ी मानो दिल का भार कम हुआ बोला, "फ़िलहाल मेरी कोशिश सिर्फ़ इतनी ही रहेगी कि मैं इस सहारे खड़ा हो सकूं।"

कृष्णप्पा की हर बात को हक़ीकत बनाने के लहजे में गौरी घुटनों पर ठुड्डी टिकाये बैठी थी। जांघों पर लाठी और लाठी पर दाहिना हाथ टिकाये देह का सारा भार उस पर लादे कृष्णप्पा बोला, "मेरी अभी दो ख़्वाहिश हैं। मन चाहता है कि पीपल के नीचे बैठकर समय की निरन्तरता का अनुभव करूँ। कभी-कभार दिखायी पड़ने वाले उस पक्षी को देखकर जो हैरत उन दिनों होती थी, उसे फिर से अनुभव करने को जी चाहता है। ढोर चराना छोड़कर उस पक्षी को पकड़ने के लिए पीछे-पीछे भाग निकलता था। वह जंगल में लुक-छिप करते हुए पेड़ों पर फुदकने लगता था। जब मैं उसका पीछा करता तो न जाने वह कहाँ ओझल हो जाता था। आज भी पीछा करने को मन करता है, लेकिन यह संभव नहीं। उसे ताकते रहने को मन करता है। अपनी यह ख़्वाहिश सिर्फ़ तुम्हारे और महेश्वरय्या के सामने ही कह पाना संभव है। दूसरी एक ख़्वाहिश भी है। उसमें और इसमें मुझे कोई फ़र्क़ दिखायी नहीं पड़ता। लेकिन मैं इसे कैसे बयान करूँ कि यह तुम्हें हकीकत लगे? कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। इस देश में हम सभी किनारे से लगे हुए लोग हैं। इन लोगों की सुविधाएँ बढ़ाने की राजनीति आज तक चलती रही। अब मुझे महसूस होने लगा है कि हमें जो ओछापन घेरे रहता है, इस राजनीति से उसका छुटकारा संभव नहीं। इस बारे में मैं अण्णाजी के साथ बहुत चर्चा किया करता था कि हमारी दैनंदिनी कैसे चमक सकती है? हमारे इतिहास में ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने कभी किनारा देखा ही नहीं है। ऐसे लोगों का अगर क्रोध भड़काना संभव हो जाये तो क्या वह क्रोध समाज के इस ओछेपन को जलाकर राख नहीं बना देगा? यह ख़्वाहिश अभी बची है।"

ये बातें निरायास अपने मुँह से निकलते देख उसे आश्चर्य हुआ। विश्वास करने की अपनी चाह और उसकी संभावना के प्रति दहल—इन दोनों को गौरी में देखकर कृष्णप्पा को अब ज़्यादा बातों की आवश्यकता महसूस नहीं हुई।

अपनी जेब में रखा त्यागपत्र गौरी के हाथ में देते हुए कहा, "इसे डाक में डाल आओ। फिर रहमान को फ़ोन करके बता दो कि तत्काल असेम्बली-

दस्यों को बुला ले।"

नागेश को बुलाकर कहा कि वह फ़ौरन सीता को बैंक से बुला लाये।

बहुत ही जरूरी बातें करनी हैं।

लाठी से गेंद ठेलते हुए रेंगने लगा।